प्रकाशक—

हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय

प्रयाग

मुद्रक—

पंडित राम मनोहर पाँडे,

सरस्वती प्रिन्टिङ्ग प्रेस,

इलाहाबाद।

वक्तव्य

१९२४ ईसवी में जब प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग का कार्य आरंभ हुआ था, उस समय सेनापति कृत 'कवित्त रत्नाकर' भी एम० ए० के पाठ्यक्रम में था। मुद्रित संस्करण के अभाव में उस समय इसकी हस्तलिखित पोथियों को जमा करके पढ़ाई का प्रबन्ध करना पड़ा था। उसी समय यह मालूम हुआ था कि भरतपुर आदि स्थानों में घूम कर कई हस्तलिखित पोथियों से तुलना करके तैयार की हुई कवित्त रत्नाकर की एक पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के अँग्रेजी विभाग के अध्यापक पं० शिवाधार पांडे जी के पास है। उन्होंने हम हिन्दी विभाग के लोगों की सहायता के लिये इस की एक प्रतिलिपि कराके देने की कृपा भी की थी। लगभग इसी समय पं० कृष्णविहारी मिश्र ने 'साहित्य-समालोचक' में इसका खंडशः प्रकाशित करना प्रारंभ किया था, किन्तु कुछ दिनों में 'समालोचक' ही बन्द हो गया। मुद्रित संस्करण के अभाव के कारण अन्त में इसे पाठ्यक्रम से हटा देना पड़ा।

सन् १९३४ में जब मैं यूरोप जा रहा था, तब एक दिन पं० शिवाधार पांडे ने कवित्त रत्नाकर संबन्धी समस्त सामग्री मुझे प्रकाशनार्थ सौंप दी। परीक्षा करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि पांडे जी ने मूल पोथी तैयार करने में अत्यन्त परिश्रम किया है किन्तु अनेक अंशों का परीक्षण फिर से भरतपुर की उन मूल पोथियों की सहायता से करना आवश्यक है जिनका उपयोग स्वयं पांडे जी ने किया था। अतः मैं इस समस्त सामग्री को अपने स्थानापन्न पं० देवीप्रसाद शुक्ल जी तथा उस वर्ष के यूनीवर्सिटी रिसर्च स्कालर पं० राजनाथ पांडे एम० ए० को सौंप गया। पं० राजनाथ ने उत्साह के साथ काम को हाथ में लिया, एक बार वे स्वयं इसी कार्य के लिये भरतपुर गये भी, किन्तु कई बार दीर्घकाल के लिये बीमार पड़ जाने के कारण एक वर्ष के अन्त में भी काम विशेष आगे नहीं बढ़ा सके।

नवम्बर १९३५ में लौटने पर मैंने यह अधूरा कार्य उस वर्ष के रिसर्च स्कालर पं० उमाशंकर शुक्ल एम० ए० के सिपुर्द किया। हमारे नये रिसर्च स्कालर ने इस कार्य को पूरा करने में पूर्ण परिश्रम किया तथा मनोयोग दिया। 'कवित्त रत्नाकर' का प्रस्तुत प्रकाशित संस्करण वास्तव में इन के ही निरन्तर अध्यवसाय का फलस्वरूप है। मूल ग्रन्थ के संपादन का कार्य पूर्ण हो जाने पर मैंने पं० उमाशंकर शुक्ल को टिप्पणी तथा एक विस्तृत भूमिका भी लिखने की सलाह दी। ये भी प्रस्तुत ग्रन्थ के अंश हैं और विश्वास है कि हिन्दी के विद्यार्थी तथा प्रेमीगण ग्रन्थ के इन अंशों को अत्यन्त उपयोगी पावेंगे। पं० उमाशंकर शुक्ल ने यह कार्य पं० देवीप्रसाद

शुक्ल जी के अनवरत निरीक्षण में किया है। 'शब्द-सागर' आदि ग्रन्थों से सहायता लेने के अतिरिक्त हिन्दी के अनेक विद्वानों से परामर्श लेने में भी इन्हें कभी संकोच नहीं हुआ। इस संबन्ध में हिन्दी के धुरंधर विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्हों ने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक गुत्थियों को सुलझाने में ग्रन्थ-संपादक की विशेष सहायता की। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा पं० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी कुछ अर्थ संबन्धी कठिनाइयों के सुलझाने में सहायता की है। हम लोग इन सज्जनों की कृपा के आभारी हैं। विशेष धन्यवाद के पात्र पं० शिवाधार पांडे जी हैं, जिनकी सामग्री के आधार पर ही इस कार्य की नींव प्रारंभ हुई। सच तो यह है कि वर्तमान संस्करण का मूलाधार उनकी ही तैयार की हुई प्रति है यद्यपि उसमें कितने अधिक परिवर्तन हुये हैं इसका निर्देश करना दुस्तर है।

ग्रंथ के तैयार हो जाने पर प्रकाशन की समस्या सामने आई। प्रयाग विश्वविद्यालय के वायस चांसलर पं० इक़बाल नरायण गुर्टू जी के आदेश से, विशेषतया विश्वविद्यालय की ओर से सहायता दिलाने के आश्वासन के सहारे, हम लोगों ने ग्रंथ को प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् की ओर से ही मुद्रित तथा प्रकाशित करने का निश्चय किया। परिषद् की ओर से 'परिषद् निबंधावली' भाग १, २ तथा गल्पमाला भाग १ प्रकाशित हो चुके हैं इनके अतिरिक्त 'कौमुदी' नाम की एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। 'कवित्त रत्नाकर' का प्रकाशन इन सब में अधिक बड़ी आयोजना थी अतः इस के निर्विघ्न समाप्त होने से मुझे विशेष संतोष है।

मिश्रबंधुओं के अनुसार सेनापति हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि थे। नवरत्नों के बाद मिश्रबंधुओं ने सेनापति को ही रक्खा है और सेनापति श्रेणी में कुछ इने गिने ही हिन्दी कवि आते हैं। वास्तव में यह खेद और लज्जा की बात थी कि हिन्दी के इस प्रथम श्रेणी के कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। मुझे इस बात का हर्ष है कि इस कमी को पूरा करने में प्रयाग विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग माध्यम हो सका है। 'कवित्त रत्नाकर' का यह संस्करण हिन्दी ग्रंथों के संपादन के कुछ ऊँचे आदर्शों को लेकर हिन्दी जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इसको परखने का भार हिन्दी प्रेमियों पर निर्भर है। इस ग्रंथ की छपाई आदि का सारा कार्य श्रीयुत् रामकुमार वर्मा के निरीक्षण में हुआ है।

धीरेन्द्र वर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

मार्गशीर्ष, सं० १९९३।

विषय-सूची

विषय   पृष्ठ

भूमिका

१—कवि-परिचय ... ... (१)

सूचना

कृपया शब्दों का निम्न-लिखित शुद्ध रूप पढ़ें :—

पृष्ठ	५४	पंक्ति	३	डारी	पृष्ठ	१०६	पंक्ति	११	अँगूठी
,,	७१	,,	७	बसंत	,,	१६४	,,	४	आकाश
,,	७६	,,	११	उछरै	,,	१६८	,,	१३	गति
,,	७६	,,	२०	परयौ है	,,	१९१		११	समान
,,	७९	,,	१९	जित-तित	,,	२०२	,,	२७	कहते
,,	८७	,,	७	पसारि	,,	२०६	,,	२७	जाती
,,	९८	,,	१८	बढ़ि					

चौथा तरंग २६८
पाँचवीं तरंग २७९

शुक्ल जी के अनवरत निरीक्षण में किया है। 'शब्द-सागर' आदि ग्रन्थों से सहायता लेने के अतिरिक्त हिन्दी के अनेक विद्वानों से परामर्श लेने में भी इन्हें कभी संकोच नहीं हुआ। इस संबन्ध में हिन्दी के धुरंधर विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्हों ने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक गुत्थियों को सुलझाने में ग्रन्थ-संपादक की विशेष सहायता की। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा पं० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी कुछ अर्थ संबन्धी कठिनाइयों के सुलझाने में सहायता

मार्गशीर्ष, सं० १९९३।

धीरेन्द्र वर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय-सूची

विषय ... पृष्ठ

भूमिका

१—कवि-परिचय ... ... (१)
२—रस-परिपाक ... ... (६)
३—भक्ति-भावना ... ... (१८)
४—ऋतु-वर्णन ... ... (२६)
५—श्लेष-वर्णन ... ... (३४)
६—भाषा ... ... (५०)
७—हस्तलिखित प्रतियाँ ... ... (५४)
८—संपादन-सिद्धान्त ... ... (५७)

कवित्त रत्नाकर

पहली तरंग—श्लेष वर्णन १
दूसरी तरंग—शृंगार वर्णन ४०
तीसरी तरंग—ऋतु वर्णन ७०
चौथी तरंग—रामायण वर्णन ९३
पाँचवीं तरंग—रामरसायन वर्णन १२४

परिशिष्ट १५५

टिप्पणी

पहली तरंग १६१
दूसरी तरंग २४७
तीसरी तरंग २५६
चौथी तरंग २६८
पाँचवीं तरंग २७९

भूमिका

१—कवि-परिचय

हिन्दी साहित्य के प्राचीन कवियों में से बहुत थोड़े ऐसे हैं जिनके जीवन के संबंध में पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री पाई जाती हो। प्रायः अधिकांश कवियों की जीवनियों के साथ अनेक किंवदंतियें प्रचलित हो गई हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि किसी कवि ने स्वयं अपने विषय में कुछ भी लिख दिया है तो वह हमारे लिए बहुमूल्य है। कविवर सेनापति ने अपना वंश-परिचय 'कवित्त रत्नाकर' के प्रारंभ में दे दिया है। उसके तथा अन्य अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर जो दो-एक बातें कवि के संबंध में ज्ञात हो सकी हैं उन्हें यहाँ दिया जाता है।

सेनापति के वास्तविक नाम से हम अनभिज्ञ हैं। 'सेनापति' तो स्पष्ट ही उनका उपनाम था जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी कविता में किया है। सेनापति ने दीक्षित कुल में जन्म लिया था। उनके पिता का नाम गंगाधर तथा पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। उनका जन्म अनूपशहर में हुआ था जो बुलंद-शहर जिले का एक प्रसिद्ध क़स्बा है। सेनापति ने लिखा है कि उनके पिता ने अनूपशहर पाया था; किंतु किसने उन्हें अनूपशहर दिया था इसका कोई उल्लेख नहीं है—

दीछित परसराम, दादौ है बिदित नाम,
जिन कीने जज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर की समान जाकौं,
गंगा तीर बसत अनूप जिन पाई है॥
महा जानि मनि, बिद्या दान हू कौं चिंतामनि,
हीरामनि दीछित तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कबि कान दै सुनत कविताई है* ॥

अनूपशहर में बड़गुज्जर राजाओं का शासन था। हिन्दू बड़गुज्जर राजाओं के प्रधान अनीराय थे जिन्होंने अनूपशहर बसाया था। संभवतः

* पहली तरंग, छंद ४।

सेनापति के पिता का संबंध इनके दरबार से रहा होगा और स्वभावतः सेनापति भी अपने पिता के साथ इनके यहाँ आया जाया करते होंगे। किंतु सेनापति की रचनाओं में इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है। खेद है कि इतिहास में अनीराय का कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। अनीराय मुसलमान बादशाहों के सहायक थे। इतिहास में केवल इस बात का उल्लेख मिलता है कि ये एक बार जहाँगीर के साथ शिकार पर गए हुए थे। वहाँ चीते ने जहाँगीर पर आक्रमण किया। अनीराय ने बड़ी तत्परता के साथ उसकी रक्षा की। बादशाह इनकी वीरता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पुरस्कार स्वरूप इन्हें अनूपशहर का परगना दिया था*। यदि अनीराय के संबंध में कुछ अधिक ज्ञात हो सके तो संभवतः सेनापति की जीवनी पर कुछ नया प्रकाश पड़े।

'कवित्त रत्नाकर' की पहली तरंग के एक कवित्त में सेनापति ने सूर्यबली नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा की है जो ब्रज प्रदेश का राजा जान पड़ता है—

सूर बली बीर जसुमति कौं उज्यारौ लाल
चित्त कौं करत चैन बैनहिं सुनाइ कै।
सेनापति सदा सुर मनी कौं बसीकरन
पूरन कर्‌यौ है काम सब कौं सहाइ कै॥
नगन सघन धरै गाइन कौं सुख करै
ऐसौ तैं अचल छत्र धर्‌यौ है उचाइ कै।
नीके निज ब्रज गिरिधर जिमि महाराज
राख्यौ है मुसलमान धार तैं बचाइ कै†॥

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'सूर बली बीर' के स्थान पर 'सूर बल बीर' पाठ पाया जाता है। इस पाठ के अनुसार इस राजा का नाम बलबीर अथवा वीरबल रहा होगा।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सेनापति का संबंध मुसलमानी दरबार से था‡। 'रामरसायन' के एक छंद से इस कथन की पुष्टि भी होती है। सेनापति कहते हैं—

---

* दे० बुलंदशहर गज़ेटियर (पृ० १४८)।

† दे० पहली तरंग, छंद ५६।

‡ दे० मिश्रबंधु-विनोद, भाग २, पृ० ४४२।

केतौ करौ कोई, पैयै करम लिख्यौई, तातैं
दूसरी न होई, उर सोई ठहराइयै।
आधी तैं सरस गई बीति कै बरस, अब
दुज्जन दरस बीच न रस बढ़ाइयै॥
चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित, सेना-
पति ह्वै सुचित राजा राम गुन गाइयै।
चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै* ॥

इससे स्पष्ट है कि कवि को मुसलमानों की दासता से विरक्ति हो गई थी। धन-लिप्सा तथा अन्यान्य प्रलोभनों से वे बचना चाहते थे। किंतु किस मुसलमान शासक के यहाँ ये नौकर थे, इसका कुछ पता नहीं चलता। जहाँगीर के शासन-काल में बुलंदशहर के अधिकांश बड़गुज्जर राजाओं ने मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लिया था†। छतारी, दानपुर, धरमपुर आदि के वर्तमान शासक इन्हीं बड़गुज्जर राजाओं के वंशज हैं। संभव है इनमें से किसी रियासत से सेनापति का संबंध रहा हो। सुनते हैं कि अशरफ़ ख़ान लालखानी ने अपनी आत्म-कथा फ़ारसी में लिखी है जिसमें बड़गुज्जर राजाओं का इतिहास पाया जाता है। संभव है इस पुस्तक में सेनापति का कहीं ज़िक्र आया हो।

सेनापति की रचनाओं से स्पष्ट है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। साहित्यिक परंपरा से वे भली-भाँति परिचित जान पड़ते हैं। यद्यपि उन्होंने रीति कालीन परिपाटी पर रचना नहीं की है फिर भी रीति-युग की प्रवृत्तियों की छाप उनकी रचनाओं में प्रचुरता से पाई जाती है। 'कवित्त रत्नाकर' में ऐसे बहुत से छंद मिलेंगे जो विभिन्न साहित्यिक अंगों के उदाहरण से जान पड़ते हैं। पहली तथा दूसरी तरंग पढ़ने से इस कथन की विशेष रूप से पुष्टि हो जाती है।

सेनापति को अपनी कविता सुरक्षित रखने की विशेष इच्छा थी। वे कहते हैं कि लोग भावापहरण ही नहीं करते वरन् समूचा कवित्त उड़ा देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि 'कवित्त रत्नाकर' को उन्होंने किसी राजा को समर्पित किया था और उससे इस बात की प्रार्थना की थी कि वह उनकी कविता को सुरक्षित रक्खे—

---

* दे० पाँचवीं तरंग, छंद ३३।

† दे० बुलंदशहर गज़ेटियर, पृष्ठ ७६।

बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातैं सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौं।
लीजियौ बचाइ ज्यौं चुरावै नाहिं कोई सौंपी
वित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं* ॥

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चोरी हो जाने के भय से उन्होंने प्रधानतया कवित्तों में ही अपनी रचना की है क्योंकि सवैया आदि अन्य छंदों में उनका नाम सुगमता से न आ सकता था† ।

अपने काव्य को सुरक्षित रखने की उत्कट इच्छा के साथ ही सेनापति ने अन्य कवियों के भावों को अपने काव्य में अधिक प्रश्रय नहीं दिया है। वैसे तो साहित्यिक क्षेत्र में प्रचलित साधारण भाव तथा उक्तियाँ उनके काव्य में भी पाई जाती हैं किंतु उन्होंने दूसरों के भावापहरण का प्रयत्न नहीं किया है। वास्तव में सेनापति स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे। इसी से दूसरों की कही हुई बातों के दोहराने को वे हेय दृष्टि से देखते थे। पाँचवीं तरंग के कई कवित्तों से उनकी स्वाभिमानी प्रकृति का परिचय मिलता है। वे आत्मसम्मान को ही संपत्ति समझते थे। सांसारिक सुखों की चिंता में मग्न रहना, उनको देख कर ललचाना आदि उन्हें पसन्द न था। कष्ट पड़ने पर भी तुच्छ व्यक्तियों से कुछ याचना करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। समाज में समादृत होना ही उनके लिए सब कुछ था।

सोचत न कौहू, मन लोचत न बार बार,
मोचत न धीरज, रहत मोद घन है।
आदर के भूखे, रूखे रूख सौं अधिक रूखे,
दूखे दुरजन सौं न डारत बचन हैं‡ ॥

---

* दे० पहली तरंग, छंद १० ।

† दे० मिश्रबंधु-विनोद, भाग २, पृ० ४४१ ।

‡ दे० पाँचवीं तरंग, छंद ४ ।

इस भावना की थोड़ी झलक भक्ति के क्षेत्र में भी पाई जाती है। एक स्थल पर वे अपने उपास्य देव से कहते हैं कि यदि तुम यह कहो कि मैं अपने कर्मों द्वारा ही इस भवसागर से पार हो सकूँगा तो फिर मैं ही ब्रह्म हूँ; तुम्हें सृष्टि-कर्त्ता मानना व्यर्थ है—

आपने करम करि हौं ही निबहौंगौ, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के* ? ।

सेनापति प्रधानतया राम के भक्त थे यद्यपि उनकी रचनाओं में कृष्ण तथा शिव संबंधी छंद भी पाए जाते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में लिखा हुआ है कि "इन महाराज ने वृंदावन में क्षेत्र-सन्यास लेकर सारी वयस वहीं व्यतीत की"। अन्तसाक्ष्य द्वारा इस कथन की थोड़ी पुष्टि भी होती है—

सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
बृंदाबन सीमा तैं न बाहिर निकसिबौ।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैंन-कंजन की,
माल गरे गुंजन को, कुंजन कौं बसिबौ† ॥

सेनापति की जन्म-तिथि तथा मृत्यु-तिथि के विषय में कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। 'कवित्त रत्नाकर' सं० १७०६ में लिखा गया था। उसके विचारों तथा भावों से इतना तो निश्चित सा है कि कवि उसके लिखने के समय तक वृद्ध हो चुका था, यद्यपि उसके कुछ छंद ऐसे भी हैं जो सं० १७०६ से पहले के लिखे हुए जान पड़ते हैं। संभवतः विक्रम की १७ वीं शताब्दी के द्वितीय चरण के अन्त के लगभग इनका जन्म हुआ होगा। इनकी मृत्यु १८ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानी जा सकती है।

सेनापति के लिखे हुए दो ग्रन्थ बतलाए जाते हैं—१ 'काव्य कल्पद्रुम' २ 'कवित्त रत्नाकर'। 'काव्य कल्पद्रुम' हमारे देखने में नहीं आया अतएव उसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। दूसरा ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' है। यह एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें पाँच तरंगें हैं। पहली तरंग में ९६ कवित्त हैं। कुछ प्रारंभिक कवित्तों को छोड़ कर इसके समस्त कवित्त श्लिष्ट हैं। दूसरी तरंग में

* पाँचवीं तरंग, छंद २१।

† पाँचवीं तरंग, छंद २१।

शृंगार संबंधी ७४ छंद पाए जाते हैं जिनमें से केवल एक छप्पय है तथा अवशिष्ट कवित्त हैं। तीसरी तरंग में ऋतु-वर्णन संबंधी ६२ छंद हैं; ८ कुंडलियाँ हैं तथा शेष कवित्त। चौथी तरंग के ७६ छंदों में राम-कथा संबंधी रचना पाई जाती है। इसमें ६ छप्पय तथा अवशिष्ट कवित्त हैं। पाँचवीं तरंग में भक्ति संबंधी ८६ छंद पाए जाते हैं जिनमें से १२ छंद चित्रकाव्य के हैं। कुछ छंद ऐसे भी हैं जो कई तरंगों में समान रूप से पाए जाते हैं। पुनरावृत्ति वाले छंदों को छोड़ देने पर 'कवित्त रत्नाकर' में कुल मिला कर ३८४ छंद पाए जाते हैं। वैसे छंदों की पूर्ण संख्या ३९४ है।

२—रस-परिपाक

यों तो केशवदास के पहले भी रीति संबंधी कई ग्रंथ बन चुके थे, किंतु हिन्दी साहित्य में काव्य-शास्त्र की प्रथम विशद विवेचना करने वाले आचार्य वे ही थे। उन्होंने दंडी कृत 'काव्यादर्श' तथा रुय्यक कृत 'अलंकारसर्वस्व' के आधार पर विभिन्न साहित्यिक सिद्धान्तों की विस्तृत समीक्षा की तथा अपने स्वतंत्र मतों का भी प्रतिपादन किया। उनकी अलंकार विषयक पुस्तक 'कविप्रिया' संवत् १६५८ में लिखी गई थी। परंतु विद्वानों ने रीति काल का प्रारंभ केशवदास के समय से नहीं माना है, क्योंकि जिन सिद्धान्तों को लेकर वे हिन्दी साहित्य में आए थे उनका प्रचार न हो सका। उनका 'अलंकार' शब्द बहुत व्यापक है। उसके अन्तर्गत शब्दालंकार तथा अर्थालंकार ही नहीं, वरन् वे समस्त गुण आ जाते हैं जिनसे काव्य अलंकृत होता है। हिन्दी के अन्य आचार्यों ने 'अलंकार' के इस व्यापक अर्थ को नहीं स्वीकार किया। हिन्दी साहित्य में संस्कृत के रस-संप्रदाय का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसी से रीति काल का प्रारंभ चिन्तामणि के समय से माना जाता है, जिन्होंने जयदेव कृत चंद्रालोक तथा अप्पय दीक्षित कृत 'कुवलयानंद' को आदर्श माना है। चिन्तामणि का रचना-काल विक्रम की १७ वीं शताब्दी के अन्त में माना जाता है।

सेनापति का रचना-काल रीति काल के प्रारंभ में पड़ता है। उन्होंने सं० १७०६ में अपनी फुटकर रचनाओं को 'कवित्त रत्नाकर' में संगृहीत किया। 'कवित्त रत्नाकर' संग्रह ग्रंथ है, अतः उसकी कुछ रचनाएँ १७०६ से पहले की भी होंगी। उसमें रीति काल का प्रभाव प्रचुरता से पाया जाता है, यद्यपि उसमें

रीति कालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया गया है अर्थात् भाव, विभाव अनुभाव आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया गया है। संभव है सेनापति की दूसरी प्रसिद्ध कृति 'काव्य कल्पद्रुम' में इस परिपाटी का अनुसरण किया गया हो।

'कवित्त रत्नाकर' के प्रारंभ में सेनापति कहते हैं कि हमारे काव्य में अनुपम रस-ध्वनि ('असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि') वर्तमान है—

सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है* ।

कुछ चित्रकाव्य संबंधी रचना 'कवित्त रत्नाकर' के अन्त में पाई जाती है। ध्वनि-वाद के अनुसार चित्रकाव्य तथा कूट आदि शब्द-कौतुक प्रधान रचनाएँ भी काव्य के अन्तर्गत आ जाती हैं यद्यपि उन्हें सबसे निकृष्ट स्थान दिया गया है। इस मत के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता था कि सेनापति ध्वनि-संप्रदाय के अनुयायी थे। किंतु 'कवित्त रत्नाकर' पढ़ने से यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है। सेनापति पर ध्वनि-संप्रदाय का कोई विशेष प्रभाव नहीं था। ध्वनि-वाद में व्यंजना शक्ति ही सब कुछ है, पर सेनापति ने उसका बहुत कम उपयोग किया है। ऊपर उद्धृत पंक्ति में रस-ध्वनि इसलिए कह दिया गया है कि ध्वनि के विशाल प्रासाद के अन्तर्गत 'विवक्षित वाच्य ध्वनि' के दो भेदों में से 'असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य' में रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि भी आ जाते हैं। सेनापति पर अलंकारों का प्रभाव अधिक है। वे रस-संप्रदाय से भी प्रभावित हुए हैं, किंतु बहुत नहीं। अलंकारों की प्रधानता के कारण उनका ध्यान रसोत्कर्ष पर अधिक देर तक नहीं ठहरता है। उनके लिए अलंकार वर्णन-शैलियाँ नहीं, वरन् वर्ण्य-वस्तु हैं। स्वयं कवि ने 'कवित्त रत्नाकर' की पहली तरंग में अपनी श्लिष्ट रचनाओं को संगृहीत किया है और उसका नाम 'श्लेष वर्णन' रक्खा है।

'कवित्त रत्नाकर' में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शान्त रस संबंधी रचनाएँ पाई जाती हैं। स्वभावतः अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का अधिक विस्तार पाया जाता है। शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं। 'कवित्त रत्नाकर' में स्वाभाविक सौंदर्य के वर्णन थोड़े होते हुए भी सजीव हुए हैं। ऐसे वर्णनों में कवि ने मौलिकता से काम लिया है। सौंदर्य-वर्णन का एक उदाहरण देखिए—

---

* पहली तरंग, छंद ७।

लाल मनरंजन के मिलिबे कौं मंजन कै,
चौकी बैठि बार सुखवति वर नारी है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार बिन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है॥
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै द्दगन जिय उपमा विचारी है।
ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
परबीन गाइन की ज्यौं अलापचारी है* ॥

प्राचीन शैली के गायक किसी गीत के प्रारंभ करने के पहले प्रायः उस राग के स्वरूप का चित्रण करते हैं जिसका गीत वे गाना चाहते हैं। इसे 'अलाप' कहते हैं और इसमें न तो गीत के कोई शब्द ही रहते हैं और न ताल का ही कोई प्रतिबंध रहता है। नायिका केवल मात्र अपने शरीर के सौंदर्य से ऐसे शोभित हो रही है जैसे ताल तथा गीत आदि से रहित किसी गायक की अलाप सुन्दर जान पड़ती है। दोनों की समता इसी में है कि दोनों कृत्रिम सौंदर्य से रहित हैं। उनका सौंदर्य उन्हीं का है। वह किसी वाह्य उपकरण पर अवलंबित नहीं है।

आलंबन विभाव का वर्णन भिन्न प्रकार की नायिकाओं के रूप में अधिक मिलता है। कवि ने रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ भेदों को चुन कर उन पर थोड़े से कवित्त लिखे हैं। अवस्था की दृष्टि से 'मुग्धा' पर कुछ छंद पाए जाते हैं और उनमें से दो-एक अत्यंत सुन्दर बन पड़े हैं—

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई
सोभा मंद पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई,
ताही छबि करि ससि आभा पात पातकी॥
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्वल विमल दुति पैयै गात गात की।
सैसव-निसा अथौत जोबन-दिन उदौत,
बीच बाल बधू झाँई पाई परभात की† ॥

---

* दूसरी तरंग, छंद ५४।

† दूसरी तरंग, छंद २६।

"काम भूप सोवत सो जागत है" कह कर वय:संधि को बड़ी ही उत्तमता से व्यंजित किया गया है, साथ ही प्रभात के रूपक के विचार से भी वह नितांत उपयुक्त है।

'खंडिता' के वर्णनों में कुछ कवियों ने महावर आदि के वर्णन के साथ साथ दन्त-क्षत, नख-क्षत आदि का वर्णन भी बड़े समारोह के साथ किया है। सेनापति ने भी एक कवित्त में ऐसी ही तत्कालीन अभिरुचि का परिचय दिया है—

बिन हीं जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हौ।
करि डारी छाती घोर घाइन सौं राती-राती
मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ॥
पौढ़ौ बलि सेज, करौं औषद की रेज बेगि,
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौ।
कीने कौन हाल! वह बाघिनि है बाल! ताहि
कोसति हौं लाल जिन फारि फारि खाए हौ* ॥

कहाँ तो शृंगार रस के आलंबन विभाव का वर्णन और कहाँ 'बाघिनि' तथा मल्हम-पट्टी की चर्चा! वचन-वक्रता बड़ी सुन्दर होती है, किंतु वह "फारि फारि खाए" बिना भी प्रदर्शित की जा सकती थी। 'खंडिता' के अन्य उदाहरणों में अधिक सहृदयता से काम लिया गया है।

'वचन-विदग्धा' के वर्णन में कभी कभी व्यंजना से अपूर्व सहायता मिलती है, पर सेनापति ने इसके वर्णन में प्राय: श्लेषालंकार से सहायता ली है। इसके कुछ उदाहरण पहली तरंग में पाए जाते हैं† और उनमें शाब्दिक क्रीड़ा की ही प्रधानता पाई जाती है। किसी किसी छंद में 'अश्लीलत्व' दोष भी आ गया है। 'अश्लीलत्व' के संबंध में यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वह सेनापति के 'शृंगार वर्णन' में बहुत कम पाया जाता है। वह केवल पहली तरंग में ही कतिपय स्थलों पर देखा जाता है। कवि वहाँ पर श्लेष लिखने में तत्पर

---

* दूसरी तरंग छंद ३४।

† पहली तरंग, छंद ७१, ७८, ८१।

दिखलाई पड़ता है अतएव उसे अन्य किसी बात की चिंता नहीं रहती है। कहीं कहीं श्लेष का मोह इतना प्रबल हो जाता है कि उसे भद्दी से भद्दी बात कह देने में भी संकोच नहीं होता है*। ऐसी ही भद्दी तथा रसाभासपूर्ण उक्तियों को देख कर आज कल कुछ शिक्षित तथा शिष्ट किंतु साहित्य से अधिक परिचित न रहने वाले व्यक्ति शृंगार रस को उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते हैं। इनमें से कोई कोई तो कुछ उग्रता के साथ उसका विरोध भी करते हैं।

रीति काल के अन्य कवियों की भाँति सेनापति ने भी 'परकीया' का ही विशेष चित्रण किया है, किंतु वे 'स्वकीया' की महत्ता को भी स्वीकार करते थे। 'रामायण वर्णन' में उन्होंने राम के एक नारी-व्रत पर बहुत जोर दिया है और बड़े उत्साह के साथ 'दाम्पत्य रति' का चित्रण किया है। दूसरी तरंग में भी जहाँ कहीं उसे चित्रित किया गया है, वहाँ अपूर्व सफलता मिली है। 'प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका' के इस वर्णन में 'स्वकीया' की सुकुमार भावना को देखिए—

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं
कही प्रानपति यह अति अनुचित है†॥

भारतीय महिलाओं के ऐसे ही आदर्शों पर हिन्दू समाज को आज भी गर्व है।

उद्दीपन विभाव की दृष्टि से नख-शिख वर्णन पर कुछ छंद पाए जाते हैं। इनमें बहुधा परंपरा से प्रचलित उपमानों द्वारा ही काम चलाया गया है। केशों का वर्णन सेनापति इस प्रकार करते हैं—

---

* पहली तरंग, छंद ६४।

† दूसरी तरंग, छंद ३६।

कालिंदी की धार निरधार है अधर, गन
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
इंद्रनील कीरति कराई नाहिं ए सहैं॥
एड़िन लगत सेना हिय के हरष-कर,
देखत हरत रति-कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अँधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे, तेरे केस हैं*॥

सेनापति का ध्यान संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार की ओर अधिक है। उनका विरह-वर्णन प्रधानतया प्रवास-हेतुक तथा विरह-हेतुक है। ईर्षा-हेतुक वियोग का वर्णन भी पाया जाता है। सेनापति के विरह-वर्णन में विरही की विकलता का अत्युक्तिपूर्ण चित्रण अधिक नहीं किया गया है। लंबी उड़ान वाले कवित्त थोड़े ही हैं। विरह-जनित उद्विग्नता का एक चित्र देखिए :—

जौतैं प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतैं,
बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल-नैंनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है॥
कागहिं उड़ावै, कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है§॥

विरह-व्यथा को उद्दीप्त करने के लिए कवि ने ऋतु-वर्णन से विशेष सहायता ली है, यद्यपि संयोग शृंगार की सुखद परिस्थितियों के अंकित करने में भी उससे काम लिया गया है। परंतु विभिन्न ऋतुओं के वर्णनों द्वारा विरह-पीड़ा

---

* दूसरी तरंग, छंद ७।

§ दूसरी तरंग, छंद ६१।

का आधिक्य चित्रित करने में उसे विशेष सफलता नहीं मिली है। कवि ने विरही को विभिन्न ऋतुओं के बीच बिठा तो दिया है, पर उसको प्रभावित होने की अधिक शक्ति नहीं प्रदान की है।

सेनापति के विरह-वर्णन में संचारियों का भी आधिक्य नहीं मिलता। इस त्रुटि के कारण वह बहुत हलका पड़ जाता है। किंतु कवि ने जिन भावों का समावेश किया है उन्हें सरलता तथा स्वाभाविकता से निबाहा है। निम्नलिखित कवित्त में 'वितर्क' से पुष्ट 'विषाद' की शान्ति करा कर 'हर्ष' की सुन्दर व्यंजना की गई है—

कौनें बिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की॥
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वैहैं,
जा दिन बदन-छबि देखौं नँद-लाल की॥
सेनापति जीवन-अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की॥
इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाँई ब्रज-बाल की* ॥

लोगों का विश्वास है कि स्त्रियों की बाँई आँख फड़कना शुभ है। इससे प्रायः यह अनुमान किया जाता है कि या तो अपना कोई स्वजन आने वाला है अथवा वह आँख फड़कने वाले व्यक्ति की याद कर रहा है। इसी विश्वास के आधार पर कवि ने 'हर्ष' की व्यंजना की है। जिस परिस्थिति में उसने इस भाव का उदय दिखलाया है उससे इस भाव में विशेष चमत्कार आ गया है। खेद है कि ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं।

विरह-वर्णन में विरहियों की मानसिक स्थिति के सूक्ष्म विश्लेषण की बड़ी आवश्यकता होती है। विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर विरही क्या सोचता है, दुखी व्यक्तियों को देख कर वह किस प्रकार सहज ही में सहानुभूति प्रकट करने लगता है, संसार की साधारण से साधारण घटनाओं को वह किस रूप में लेता है आदि अनेक विषयों की ओर कवि को दृष्टि दौड़ानी पड़ती है। पर इस क्षेत्र में सेनापति की जानकारी सीमित दिखलाई पड़ती है। उन्होंने विरह-काल की साधा-

* दूसरी तरंग, छंद ६८।

रण स्थितियों का ही परिचय दिया है। इस कारण उनका विरह-वर्णन स्वाभाविक होने पर भी अपूर्ण ही कहा जायगा। उनकी अलंकार-प्रियता के कारण भी उनके विरह-वर्णन को क्षति पहुँची है। कवि अनुप्रासादि के लिए उपयुक्त शब्दों के खोजने में पड़ जाता है और फलतः भावोत्कर्ष दिखलाने की ओर उसका ध्यान कम जाता है।

भाव-व्यंजना में सबसे आवश्यक बात यह है कि जिस भाव का वर्णन किया जा रहा हो उससे कवि अच्छी तरह से परिचित हो। कल्पना के सहारे वह अधिक दूर नहीं जा सकता। मानव-हृदय के जिन भावों से कवि स्वयं परिचित होता है उन्हीं के चित्रण में उसे पूरी सफलता मिल सकती है। सेनापति को मानव-जीवन की सुकुमार भावनाओं से उतना अनुराग न था जितना उत्साहपूर्ण वीरोल्लास से। उनकी इस प्रवृत्ति का परिचय उनके 'रामायण वर्णन' को देखने पर मिल सकता है। राम-कथा में मानव-जीवन से संबंधित अनेक भावनाओं का भांडार पाया जाता है। उसके संपूर्ण अंगों को सफलता-पूर्वक वर्णित करने में महाकवि ही सफल हुए हैं। राम-कथा की विशदता की ओर सेनापति का भी ध्यान गया था—

एती राम-कथा, ताहि कैसे कै बखानैं नर,
जातैं ए बिमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
सेनापति यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं॥

सेनापति ने राम-कथा से मुख्यतया निम्नलिखित स्थलों का वर्णन किया है—सीता-स्वयंवर, परशुराम-मिलन, मारीच-बध, हनूमान का लंका जाना, सेतु बाँधने का आयोजन, हनूमान तथा राक्षसों का युद्ध, अंगद का रावण के पास जाना, राम-रावण युद्ध तथा सीता की अग्नि-परीक्षा। इस नामावली को देखने से यह विदित होता है कि कवि ने प्रधानतया वीरोत्साह वाले स्थल ही चुने हैं। भरत से संबंधित कथा का वह कोई विवरण नहीं देता। वन-गमन दशरथ की मृत्यु, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, लक्ष्मण के शक्ति लगना आदि स्थलों को तो उसने बिलकुल ही छोड़ दिया है। 'शोक' का कवि पर कोई प्रभाव न था अतः उसने शोक वाले स्थलों को नहीं चुना। यदि उस पर इस स्थायी-भाव का कुछ भी प्रभाव होता तो वह कम से कम दो-चार छंद तो इस विषय

* चौथी तरंग छंद ६।

पर अवश्य ही लिखता। वस्तुस्थिति यह है कि उसका ध्यान राम, रावण, हनूमान आदि के शौर्य तथा पराक्रम की ओर ही रहता है। जहाँ इनके वर्णन से कुछ अवकाश मिलता है वहाँ वह भक्ति-भाव से प्रेरित होकर राम का गुण-गान करने लगता है।

वीर रस के चित्रण में बहुधा कवियों ने युद्धों के विशद वर्णनों से काम चलाया है। किंतु तोपों की गड़गड़ाहट तथा तलवारों की छपछपाहट में वीर रस की वैसी व्यंजना नहीं होती जितनी वीरोचित उत्साह के प्रदर्शन में। सेनापति को हम युद्ध के वर्णन करने में उतना तत्पर नहीं पाते हैं जितना युद्ध की तैयारी के वर्णन करने में। राम का सेना एकत्रित करना, हनूमान को सीता की खोज में भेजना, सेतु बाँधने का आयोजन करना आदि विषयों के वर्णनों की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। इसी कारण उसकी रचनाओं में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

राम-रावण-युद्ध के वर्णन में धर्म-भाव के कारण प्रायः राम का उत्कर्ष अधिक प्रदर्शित कर दिया जाता है और रावण की वीरता पर थोड़ा बहुत कह कर संतोष कर लिया जाता है। व्यवहारिक दृष्टि से यह कुछ अस्वाभाविक लगने लगता है। वीरों का उत्साह अपने प्रतिपक्षी की असीम शक्ति को देख कर और भी बढ़ जाता है, न कि उसकी हीनता देख कर। सेनापति की कविता में यह त्रुटि कम पाई जाती है। उन्होंने राम तथा रावण का समान उत्कर्ष वर्णित किया है। इसी से उनके वर्णनों में अधिक सजीवता आ सकी है। उदाहरणार्थ कवि ने कर्मवीर राम को जिस परिस्थिति में चित्रित किया है वह द्रष्टव्य है—

इत बेद-बंदी बीर बानी सौं बिरद बोलैं,
उत सिद्ध-विद्याधर गाइ रिझावत हैं।
इत सुर-राज, उत ठाढ़े हैं असुर-राज,
सीस दिगपाल, भुवपाल नवावत हैं॥
सेनापति इत महाबली साखामृग-राज,
सिंधुराज बीच गिरि-राज गिरावत हैं।
तहाँ महाराजा राम हाथ लै धनुष बान,
सागर के बाँधिबे कौं ब्यौंत बतावत हैं*॥

* चौथी तरंग, छंद ४६।

राम-रावण-युद्ध के वर्णन करते समय भी इसी पद्धति से काम लिया गया है—

बीर रस मद माते, रन तैं न होत हाँते,
दूहू के निदान अभिमान चाप बान कौं।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
हिय हरषत जुद्ध करत बखान कौं॥
सेनापति सिंह सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं* ॥

युद्ध-स्थल में लड़ते हुए वीरों की मुद्रा चित्रित कर देने से युद्ध का वास्तविक चित्र सामने खड़ा हो जाता है। युद्ध करते हुए राम की इस मुद्रा को देखिए—

काढ़त निषंग तैं, न साधत सरासन मैं,
खैंचत, चलावत, न बान पेखियत है।
स्रवन मैं हाथ, कुंडलाकृति धनुष बीच,
सुंदर बदन इकचक लेखियत है॥
सेनापति कोप ओप ऐन हैं अरुन नैंन,
संबर-दलन मैंन तैं बिसेखियत है।
रह्यौ नत ह्वै कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
चित्र कैसौ लिख्यौ राजा राम देखियत† है॥

सेनापति ने राम की दान-वीरता पर भी दो छंद लिखे हैं। एक कवित्त में एक सुन्दर युक्ति द्वारा उसका वर्णन किया गया है—

रावन कौं बीर, सेनापति रघुबीर जू की,
आयौ है सरन, छाँड़ि ताही मद-अंध कौं।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन दीन-बंध कौं॥

---

* चौथी तरंग, छंद ४८।
† चौथी तरंग, छंद ६०।

देखौ दान-वीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानैं सत्यसंध कौं।
लंका दसकंधर की दीनी है बिभीषन कौं,
संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकंध कौं† ॥

राम ने रावण की लंका को विभीषण को दे दिया, एक दान तो यही हो गया। किंतु उन्होंने इसी दान द्वारा एक दूसरा दान भी दे दिया। विभीषण को लंका का अधिपति बना देने से रावण को विभीषण की चिंता हो गई। उसके जीते ही उसका भाई लंकाधीश बन गया और उसे यह फ़िक्र बढ़ गई कि अब विभीषण से भी सामना करना पड़ेगा।

ऊपर जो कवित्त उदाहरण स्वरूप दिए गए हैं उन्हें देखने से यह पता चलेगा कि कवि ने कर्णकटु शब्दों की भरमार करने का प्रयत्न नहीं किया है। सेनापति के अन्य कवित्तों में भी यही विशेषता पाई जाती है। शब्दों के द्वित्व रूप रखने का आग्रह केवल छप्पयों में पाया जाता है, जो अपभ्रंश काल की परंपरा-पालन के अनुरोध से है। शब्दों के कर्णकटु रूप प्रयुक्त न करने पर भी सेनापति के कवित्त ओज गुण से पूर्ण हैं। वास्तव में ओज आदि गुण रस के स्वाभाविक धर्म हैं और जहाँ कहीं रस होगा वहाँ ये स्वतः वर्तमान होंगे। आचार्यों का मत है कि इनकी रस के साथ अचल स्थिति होती है†। अतएव शब्दों को विकृत करके ओज गुण लाने का प्रयत्न व्यर्थ ही है।

'उत्साह' में मर्यादा का भाव सर्वदा वर्तमान रहता है। वीरों की वीरता अपनी सीमा उल्लंघन नहीं करती—

बज्र हू दलत, महा कालै संहरत, जारि
भसम करत प्रलै काल के अनल कौं।
झंझा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल, थल करैं जल कौं ॥

---

† ये रसस्याङ्गिनो धर्म्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥
—काव्य प्रकाश (अष्टम उल्लास, श्लोक १)

* चौथी तरंग, छंद ४०।

पब्बै मेरु-मंदर कौं फोरि चकचूर करैं,
कीरति कितीक, हनैं दानव के दल कौं।
सेनापति ऐसे राम-बान तऊ बिप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं* ॥

किंतु 'क्रोध' में मर्यादा का यह भाव विलीन हो जाता है। क्रोध से भरे परशुराम जी पैर छूते हुए दशरथ की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते। वे तो अपने गुरू के धनुष तोड़ने वाले को नष्ट करने की धमकी दे रहे हैं :—

भीज्यौ है रुधिर भार, भीम, घनघोर धार,
जाकौं सत कोटि हू तैं कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि कै निच्छत्रिय करी है छिति
बार इकईस, तेज-पुंज कौं अधार है॥
सेनापति कहत कहाँ हैं रघुबीर कहौ?
छोह भर्‌यौ लोह करिबे कौं निरधार है।
परत पगनि दसरथ कौं न गनि, आयौ
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार हैं† ॥

भयानक रस का चित्रण दो तीन जगह किया गया है। निम्नलिखित दृश्य धनुष-भंग के अवसर का है—

हहरि गयौ हरि हिए, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
ध्रुव नरिंद थरहर्‌यौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय॥
अक्खि पिक्खि नहिं सकइ सेस नक्खिन लग्गिय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल॥
उद्दंड चंड भुजदंड भरि, धनुष राम करषत प्रबल।
टुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि, लुट्टिय दिगंत दिग्गज बिकल‡ ॥

दो एक स्थलों को छोड़ कर 'कवित्त रत्नाकर' में हास्य रस का अभाव है। उपर्युक्त प्रधान रसों के अतिरिक्त शान्त रस का परिपाक बहुत सुन्दर हुआ है। अगले अध्याय में इस पर विचार किया गया है।

---

* चौथी तरंग, छंद २८।

† चौथी तरंग, छंद २६।

‡ चौथी तरंग, छंद १६।

३—भक्ति-भावना

हिन्दू धर्म की व्यापकता प्रसिद्ध है। उसके अन्तर्गत एक ओर तो मस्तिष्क को संतुष्ट करने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म दार्शनिक विचारावली पाई जाती है, दूसरी ओर लोक-धर्म का वह विधान पाया जाता है जिसके द्वारा संसार का काम चलता है। हिन्दू धर्म की व्यापकता, मुख्यतया, इन्हीं दोनों के समन्वय के फल-स्वरूप है। साधारण हिन्दू जनता की शान्तिप्रियता ने भी इस ओर विशेष सहायता पहुँचाई है। लड़ाई झगड़ा उसे अधिक प्रिय नहीं रहा है। धार्मिक विषयों में तो यह शान्तिप्रियता प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिन्दू धर्म के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में लड़ाई झगड़े का वातावरण नहीं रहा है। शैवों और वैष्णवों के झगड़े इतिहास में प्रसिद्ध ही हैं। आधुनिक समय में भी जहाँ इन संप्रदायों के केन्द्र हैं वहाँ कभी कभी सांप्रदायिक प्रतिद्वंद्विता का उग्र रूप देखने को मिल जाता है किंतु यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो यह विदित होता है कि यह प्रतिद्वंद्विता मठाधीशों, महन्तों तथा उनके चेले-चपाटियों और कुछ थोड़े से अनुयायियों तक ही सीमित रही है और रहती है। साधारण जनता में इन विद्वेषपूर्ण भावनाओं का प्रचार नहीं हो पाता है। भगवान् एक हैं और वह अपने भक्तों के दुःखों को दूर करने के लिए अनेक रूपों में अवतरित होते हैं—साधारण जनता के संतोष के लिए यह सीधी-सादी विचार-धारा पर्याप्त है। यह प्रवृत्ति आज की नहीं है, प्राचीन समय से चली आ रही है और इसके कारण ही व्यवहारिक जीवन में धर्म का वह व्यापक स्वरूप चल पड़ा था जो 'सनातन धर्म' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके अन्तर्गत हिन्दू धर्म में पाए जाने वाले सभी मतों तथा सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। फलतः आज कल किसी साधारण हिन्दू गृहस्थ के व्यवहारिक जीवन को देख कर सहसा यह बता देना कठिन हो जायगा कि वह शैव है, या वैष्णव है अथवा शाक्त है। आज रामनवमी, जन्माष्टमी, दुर्गाष्टमी तथा शिवरात्रि, सभी घरों में समान उत्साह से मनाई जा रही हैं।

हमारे समाज में जब कभी कुछ लोगों में एकांगी प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है तभी विचारशील महापुरुषों ने उसका विरोध किया है। विक्रम की १७ वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी ने धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित एकांगिता का तिरस्कार किया था। उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा हिन्दू समाज का

ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। उनके तिरस्कार का जो मंगलमय प्रभाव समाज पर पड़ा है उससे हम सभी परिचित हैं। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्होंने 'कृष्ण गीतावली' लिखी। शिव को तो उन्होंने राम-कथा का एक आवश्यक अंग ही बना दिया।

सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति भी गोस्वामी जी की परंपरा में आते हैं। वे राम के उत्कट भक्त थे, पर कृष्ण तथा शिव से भी उन्हें विशेष स्नेह था और तदनुसार उन्होंने उनका भी गुण-गान किया है। वैष्णव भक्त कवियों की भाँति सेनापति भी तीर्थ-सेवन, गंगा-स्नान आदि विषयों पर आस्था रखते थे, यद्यपि भक्ति के क्षेत्र में वे इन बातों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझते थे। किंतु इन साम्यों को देख कर यह न समझना चाहिए कि सेनापति की रचना पर 'रामचरित मानस' का कोई विशेष प्रभाव पाया जाता है। एक तो सेनापति के 'रामायण वर्णन' में कथा का कोई विशेष विस्तार मिलता ही नहीं है, दूसरे जहाँ कहीं कुछ घटनाओं का वर्णन पाया भी जाता है वहाँ वे 'मानस' के आधार पर न होकर वाल्मीकि रामायण पर ही अवलंबित हैं। उदाहरणार्थ परशुराम-आगमन का वर्णन स्वयंवर के समय न होकर, अयोध्या लौटते समय ही किया गया है।

जहाँ तक राम के नारायणत्व का संबंध है, सेनापति गोस्वामी जी की कोटि में आते हैं। उन्होंने रामावतार के लोकोपकारी गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। जैसा कि दिखलाया जा चुका है राम के पराक्रम का वर्णन भी उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। पर उन्होंने राम के असीम सौंदर्य के चित्रण करने का प्रयत्न कम किया है—केवल प्रसंग-वश कुछ छंद यत्र तत्र लिख दिए हैं। वे राम के वीरत्व तथा उनकी भक्तवत्सलता से ही विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं और इन्हीं के वर्णन करने में वे दत्तचित्त रहे हैं। सेनापति में न तो गोस्वामी जी की सी सर्वांगीण प्रतिभा थी और न मानव-जीवन से उनका उतना घनिष्ठ परिचय ही था। अतएव यदि गोस्वामी जी की भक्ति-भावना के सामने सेनापति के भक्ति संबंधी उद्‌गार उतने व्यापक एवं मार्मिक न जचें तो कोई आश्चर्य नहीं। किंतु भगवान् के जिस स्वरूप को लेकर सेनापति चले हैं उसके प्रति उनके हृदय में सच्चा अनुराग था और वे उसकी अभिव्यक्ति करने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। निम्नलिखित विवरण द्वारा इस कथन की सत्यता प्रकट हो जायगी।

जीवन की नश्वरता का सच्चा अनुभव हुए बिना सांसारिकों का ईश्वरोन्मुख होना संभव नहीं है। जब मनुष्य को यह अनुभव होने लगता है कि जीवन एक क्षणिक घटना है और थोड़े ही समय में सारा खेल समाप्त होने वाला है तब उसे परमार्थ की चिंता होती है—

कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
　　लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पींजरा मैं, सेना-
　　पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं॥
चितहिं चिताउ, भूलि काहू न सताउ, आउ
　　लोहे कैसौ ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेह देह करि कै पुनीत करि लेह देह,
　　जीभै अवलेह देह सुरसरि नीर कौं*॥

जीवन वास्तव में है ही कितना? उसे लोहे का ताव ही समझना चाहिए क्योंकि वह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा और तब कुछ करते न बनेगा। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि इस कठिनता से प्राप्त किए हुए लोहे के ताव से लाभ उठाया जाय और सत्कर्मों द्वारा परमार्थ-साधन किया जाय।

संसार की अनित्यता से क्षुब्ध होकर जब भक्त भगवान् के लोकोपकारी स्वरूप की ओर देखता है तो उसके हृदय में अपूर्व आशा का संचार होने लगता है। वह जिधर आँख उठा कर देखता है उधर ही उसे भगवान् की असीम करुणा दिखलाई पड़ती है। वह जब देखता है कि भगवान् में ऐसी भक्तवत्सलता है कि दीन दुखियों को कष्ट होते ही वे उसके निवारण के लिए तत्पर दिखलाई देते हैं तब उसका चित्त स्थिर हो जाता है और उसे यह आश्वासन मिलने लगता है कि उसकी रक्षा करने वाला भी विद्यमान है—

अरि करि आँकुस बिदार्‌यौ हरिनाकुस है,
　　दास कौं सदा कुसल, देत जे हरष हैं।
कुलिस करेरे, तोरा तमक तरेरे, दुख
　　दलत दरेरे कै, हरत कलमष हैं॥

---

* पाँचवीं तरंग, छंद १२।

सेनापति नर होत ताही तैं निडर, डर
तातैं तू न कर, बर करुना वरष हैं।
अति अनियारे, चंद-कला से उजारे, तेई
मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख हैं* ॥

परमार्थ-साधन करने के लिए लोग अनेक प्रकार के उपाय किया करते हैं। कोई तीर्थ-सेवन करता है, कोई बाल्यकाल से हीं घर-द्वार छोड़ कर पंचाग्नि तप किया करता है, कोई सुखों को त्याग कर अष्टांग-योग साधन करता है। किंतु भक्त क्या करता है? सेनापति कहते हैं कि हम तो सुख की नींद सोते हैं, क्योंकि सांसारिक कष्ट तो हमें छू तक नहीं जाते। हमारे दुःखों का अनुभव हमें न होकर राम को होता है :—

कोई परलोक सोक भीत अति वीतराग,
तीरथ के तीर बसि पी रहत नीर ही।
कोई तपकाल बाल ही तैं तजि गेह-नेह,
आगि करि आस-पास जारत सरीर ही ॥
कोई छाँड़ि भोग, जोग धारना सौं मन जीति,
प्रीति सुख-दुख हू मैं साधत समीर ही।
सोवै सुख सेनापति सीतापति के प्रताप,
जाकी सब लागै पीर ताही रघुवीर ही† ॥

भक्तों को इस विचार से जितना सुख तथा धैर्य प्राप्त होता है उतना किसी दूसरी बात से नहीं। भक्त हृदय मीरा ने भी अपने काव्य में इसी प्रकार की भावना प्रकट की है :—

हरि तुम हरौ जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुम बढ़ायौ चीर ॥
दास मीरा लाल गिरिधर दुख जहाँ तहँ पीर ॥

भक्त के ऊपर कोई कष्ट पड़ा नहीं कि भगवान् को उस कष्ट की पीड़ा का अनुभव होने लगा। उसे थोड़ी देर भी पीड़ित होने देना उन्हें मंज़ूर नहीं।

---

* पाँचवीं तरंग, छंद ३६।

† पाँचवीं तरंग, छंद १६।

भगवान् की भक्तवत्सलता तथा विशालता का अनुभव हो जाने पर जब भक्त अपनी ओर देखता है तो उसका हृदय आत्मग्लानि तथा पश्चाताप से भर जाता है। कहाँ भगवान् इतने महान् और कहाँ हम इतने नीच! उसे इस बात पर आश्चर्य होने लगता है कि हम भक्त कहलाए कैसे? भगवान् ने हमें 'सेवक' का पद क्या सोच कर दिया :—

गिरत गहत बाँह, घाम मैं करत छाँह,
पालत बिपत्ति माँह, कृपा-रस भीनौ है।
तन कौं बसन देत, भूख मैं असन, प्यासे
पानी हेतु सन बिन माँगे आनि दीनौ है॥
चौकी तुही देत अति हेतु कै गरुड़-केतु!
हौं तौ सुख सोवत न सेवा परबीनौ है।
आलस की निधि, बुधि बाल, सु जगतपति!
सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है* ॥

'रामरसायन' में दैन्य की यह भावना प्रायः सर्वत्र ही पाई जाती है। केवल एक कवित्त ऐसा है जहाँ इस भावना का अभाव पाया जाता है और भक्त तार्किकों के रूप में देखा जाता है। वह भगवान् से कहता है कि यदि यही बात निश्चित रही कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है तब तो हम स्वयं ब्रह्म ठहरते हैं, तुम्हारा ब्रह्मत्व किस बात में रहा :—

तुम करतार जन रच्छा के करन हार,
पुजवन हार मनोरथ चित चाहे के।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,
हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के॥
जौ कौहू कहौ कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के।
आपने करम करि हौं ही निबहौंगौ, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के? ‡ ॥

---

* पाँचवीं तरंग, छंद २४।

‡ पाँचवीं तरंग, छंद २६।

इस कवित्त पर विचार करते समय सेनापति की प्रकृति पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। वे स्वभाव से गर्विष्ठ थे जैसा कि उनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। 'रामरसायन' में ही ऐसे छंद पाए जाते हैं जिनसे कवि की स्वाभिमानी प्रकृति लक्षित होती है। भक्ति के क्षेत्र में यह गर्व बहुत कुछ दब गया है, केवल दो-एक स्थलों पर उसका थोड़ा सा आभास मिल जाता है।

'रामरसायन' में एक अन्य प्रकार की कठिनाई भी उपस्थित होती है। एक कवित्त में कवि मूर्त्ति-पूजा का खंडन करता हुआ दिखलाई पड़ता है। वह दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाने का उपदेश देता है, क्योंकि पुष्पों से ढकी हुई प्रतिमा को भगवान् मानना भ्रम है। वह 'निरंजन' से परिचय प्राप्त करने का उपदेश देता है:—

धातु, सिला, दार निरधार प्रतिमा कौं सार,
सो न करतार तू बिचार बैठि गेह रे।
राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है,
जीभ कौं निरंतर जपाउ तू हरे हरे!॥
मंजन बिमल सेनापति मन-रंजन तू,
जानि कै निरंजन परम पद लेह रे।
कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है बीच देहरे? कहा है बीच देह रे* ?॥

किंतु इन विचारों को स्वयं सेनापति का नहीं कहा जा सकता। यह तो देश-काल का प्रभाव है जिससे प्रभावित होकर कवि उक्त कवित्त लिख गया है। सेनापति के समय में निर्गुण भक्ति का काफ़ी प्रचार था। गोस्वामी जी ने लोगों में फैली हुई इस विचार-धारा का स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया है। वे भगवद्भक्ति की चरम सीमा तक पहुँच गए थे, अतः उनके काव्य में निर्गुण-संप्रदाय का रंग चढ़ना असंभव था। किंतु साधारण स्थिति के वैष्णवों का इन भावनाओं से कभी कभी प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था। यही नहीं, प्रेम-साधना के उच्च आसन पर बैठी हुई मीरा की ओर भी थोड़ा ध्यान दीजिए। वे अपनी टूटी-फूटी शब्दावली में अपने प्रेम की पीर व्यंजित किया करती हैं। पर कभी कभी 'सुन्नमहलिया', 'अनहद', 'करताल' आदि हठयोग की बातों को भी कह जाती हैं। किंतु

* पाँचवी तरंग, छंद ३१।

जिन्होंने मीरा के काव्य को पढ़ा है वे यही कहेंगे कि मीरा के भोले-भाले हृदय से इन भावनाओं का कोई संबंध न था। देश-काल के प्रभाव के कारण ही उनके काव्य में इस प्रकार के कुछ नाम मिल जाया करते हैं।

'रामरसायन' के अन्य कवित्तों को देखने से भी यह बात बिलकुल निश्चित हो जाती है कि सेनापति का ध्यान सगुण भगवान् की भक्ति करना था, न कि 'निरंजन' को जानना। उन्होंने निर्गुण-सगुण का विवाद ही नहीं उठाया। 'रामरसायन' के पहले ही कवित्त में भगवान् के निर्गुण तथा सगुण स्वरूपों को चुपचाप स्वीकार कर लिया गया है—

दृगन सौं देखै बिस्वरूप है अनूप जाकौं,
बुद्धि सौं बिचारै निराकार निरधार है* ।

शिव के तो सेनापति बड़े भक्त थे। उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ उनका वर्णन किया है। उनके शीघ्र ही संतुष्ट हो जाने वाले गुणों पर वे मुग्ध हो गए हैं—

सोहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौं, सदा कर त्रिसूल है॥
कहा भटकत ! अटकत क्यौं न तासौं मन ?
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल-फूल है† ॥

वे कहते हैं—

बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है‡ ।

'रामरसायन' में गंगा-वर्णन संबंधी लगभग पन्द्रह सोलह छन्द पाए जाते हैं। वैसे तो गंगा-वर्णन प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से भी किया जा सकता है,

---

* पाँचवीं तरंग, छंद १।

† पाँचवीं तरंग, छंद ४९।

‡ पाँचवीं तरंग, छंद ४४।

किंतु सेनापति कृत गंगा-वर्णन गंगा की प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, वरन् भक्ति-भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है। अतएव यह वर्णन शान्त रस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत माना जायगा।

राम के चरणों से गंगा निकली हैं अतः यदि कोई व्यक्ति गंगा-जल को स्पर्श करता है तो वह राम के चरणों को भी छूता है—

राम-पद-संगिनी, तरंगिनी है गंगा, तातैं
याहि पकरे तैं पाइ राम के पकरियैं*।

कवि ने गंगा-माहात्म्य का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ा कर किया है और सुन्दर उक्तियों द्वारा गंगा की बड़ाई की है—

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै,
ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समैं।
ब्याधि कें अरंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं॥
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जौ पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं†॥

शिव ने गंगा को सिर पर धारण किया यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो उनकी बुरी गति हो गई होती। उनका आधा शरीर तो पार्वती जी के क़ब्जे में है, बाक़ी बचा आधा। यदि विचार कर देखिए तो वह व्याधियों का भांडार हो रहा है—कंठ में काल से भी विकराल विष, हृदय पर सर्पों की माला तथा मस्तक पर त्रिलोचन स्थित है। इन भयंकर वस्तुओं के होते हुए भी शिव जी की जो रक्षा हो सकी है वह सुधा से सहस्रगुने प्रभाव वाले गंगा-जल के कारण ही है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सेनापति की भक्ति-भावना में हृदय की तल्लीनता है और अनुभूतियों की सचाई है। अपनी भक्ति-भावना के कारण वे जीवन की उस स्थिति तक पहुँच गए थे जहाँ सांसारिक यातनाएँ मनुष्य के लिए कोई महत्त्व नहीं रखतीं और हृदय शान्त हो जाता है।

---

* पाँचवीं तरंग, छंद ५५।

† पाँचवीं तरंग, छंद ६०।

इसी से वे कलिकाल से कहते हैं कि तू मेरा क्या अपकार कर सकता है? काल भी मुझे नष्ट नहीं कर सकता है। भगवान् के दरबार में मेरी पैठ हो गई है। स्वयं राम मुझे अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि मुझे उनकी सेवा करते हुए काफ़ी समय हो चुका है; सीता रानी भी मुझे जानती हैं और लक्ष्मण का मुझ पर अनुराग है; अब विभीषण तथा हनूमान आदि वीर मेरे सामने गर्व नहीं करते, प्रत्युत् मुझे 'बड़ी सरकार' का नौकर समझ कर मेरा आदर करते हैं। जब मैं ऐसे उच्च पद पर पहुँच गया हूँ तो तेरी चिंता मुझे क्यों हो—

मोहिं महाराज आप नीके पहिचानैं, रानी
जानकीयौ जानैं, हेतु लछन कुमार को।
बिभीषन, हनूमान, तजि अभिमान, मेरौ
करैं सनमान जानि बड़ी सरकार को॥
ए रे कलिकाल! मोहिं कालौ न निदरि सकै,
तू तौ मति मूढ़ अति कायर गँवार को?।
सेनापति निरधार, पाइपोस-बरदार,
हौं तौ राजा रामचंद जू के दरबार को* ॥

४—ऋतु-वर्णन

रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत विभाव को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जो ठीक ही है। विभाव के संयोग से ही हृदय में वासना रूप में स्थित रति आदि स्थायीभाव जागरित होते हैं। विभाव दो प्रकार के कहे गए हैं—१ आलंबन, जो हृदय में किसी भाव-विशेष को प्रवर्तित करते हैं २ उद्दीपन, जो उत्थित मनोविकार को उद्दीप्त करते हैं। शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं। उसके उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत कुछ बातें ऐसी मानी गई हैं जो पात्रगत हैं (जैसे नायक अथवा नायिका के अंग-प्रत्यंग, उनकी मनमोहक चेष्टाएँ, उनकी वेष-भूषा आदि) तथा कुछ ऐसी हैं जो पात्रों से बहिर्गत हैं। आचार्यों ने इसी दूसरे प्रकार के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति के विशाल सौंदर्य में से वन, उपवन, सरोवर, षट्ऋतु आदि कुछ प्रमुख रूपों को स्थान दिया है। इस संकुचित दृष्टिकोण के कारण रस-निरूपण-पद्धति में प्रकृति के उन स्वतंत्र वर्णनों

---

* पाँचवीं तरंग, छंद २३।

का समावेश न हो सका जिनमें वह स्वयं आलंबन के रूप में दिखलाई पड़ती थी। प्रकृति को उद्दीपन के रूप में चित्रित करने की चाल रीति-ग्रंथों के अधिकाधिक प्रचार के साथ दिन दिन बढ़ती ही गई।

हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने संस्कृत के रीति-ग्रंथों को पैत्रिक संपत्ति के रूप में पाया था और उन्होंने जहाँ उन ग्रंथों की अन्य सभी बातों को अपनाया वहीं प्रकृति-विषयक उपर्युक्त दृष्टिकोण को भी यथावत् रहने दिया। उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आशा करना भी व्यर्थ ही है, क्योंकि हिन्दी साहित्य में रीति-सिद्धान्तों का कोई महत्त्वपूर्ण विकास नहीं हुआ। अधिकांश कवियों ने संस्कृत-ग्रंथों में पाई जाने वाली बातों को ही दोहराया है। विषय के विकास की बात तो बहुत दूर रही, बहुत से ग्रंथों में विषय की स्पष्टता तक पर ध्यान नहीं दिया गया। ऐसी परिस्थिति में प्रकृति को जो स्थान संस्कृत-साहित्यकारों ने दे दिया था उसी का प्रचार हिन्दी साहित्य में भी होता रहा।

अपनी स्थिति के अनुरूप सांसारिक वस्तुओं को देखना मानव-समाज के लिए नितांत स्वाभाविक है। बहुधा देखा जाता है कि जब हमारा हृदय क्रोध आदि प्रबल मनोवेगों से आक्रांत रहता है तो साधारण बात पर भी हम रुष्ट हो जाते हैं। हँसमुख व्यक्ति प्रायः सभी को प्रिय होते हैं; किंतु क्रोध से भरे हुए मनुष्य के लिए ऐसे व्यक्ति कुछ भी आकर्षण नहीं रखते। कभी कभी तो उसे ऐसे व्यक्तियों की हँसी असह्य हो जाती है। विस्तृत जल-राशि को लिए हुए वेग से बहती हुई गंगा की धारा को देख कर कौन ऐसा व्यक्ति है जिसका हृदय हर्षान्वित न होता हो? किंतु बाढ़ में बहता हुआ व्यक्ति उसे कालस्वरूप ही देखता है। ग्रीष्म की प्रचंड गरमी के पश्चात् वर्षाऋतु का आगमन सभी को सुखद होता है; किंतु जिस दिन अनवरत वृष्टि के कारण किसी व्यक्ति का मकान गिर जाता है तब तो सहसा उसके मुख से यही निकल पड़ता है कि "आज तो बड़ा दुर्दिन है"। तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार विभिन्न सांसारिक घटनाओं से प्रभावित हुआ करता है और तदनुसार ही अपने को सुखी अथवा दुखी समझने लगता है। यह तो हुई व्यवहारिक जीवन की बात। काव्य में भी इस प्रकार की भावनाओं का वर्णन किया जाना स्वाभाविक ही है। परंतु थोड़ा सा विचार करने पर यह निर्विवाद हो जायगा कि काव्य में इस सिद्धान्त को बहुत दूर तक नहीं ले जाया जा सकता है। संसार हमारे सुख तथा

दुःख से थोड़ी सहानुभूति प्रकट करे यह तो संभव है किंतु हमारी भावनाओं से उसकी भावनाओं का तादात्म्य हो जाय यह आवश्यक नहीं। जिन कारणों से हमें सुख अथवा दुःख का अनुभव हो रहा है, संभव है दूसरों के लिए उनका कोई अस्तित्व ही न हो। अतएव काव्य को इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें केवल हमारी ही नहीं वरन् साधारणतया मानव-समाज के उपभोग की सामग्री वर्तमान हो। इसी को ध्यान में रख कर संस्कृत-साहित्यकारों ने 'साधारणीकरण' के सिद्धान्त पर बहुत ज़ोर दिया है जिसका अभिप्राय यही है कि काव्य में वर्णित वस्तु का समावेश इस ढंग से होना चाहिए जिससे कि वह सर्व-साधारण के उपभोग के योग्य बन जाय। कवि को अपने संकुचित व्यक्तिगत वातावरण से ऊँचे उठ कर सारे संसार की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही उसकी कविता में ऐसे गुण आ सकेंगे जिनके कारण वह लोक-प्रिय हो सकेगी।

इस विशाल तथा व्यापक दृष्टिकोण को हम हिन्दी के कुछ भक्त कवियों में पाते हैं। प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी कहीं कहीं इसी दृष्टि-विस्तार की झलक मिल जाती है, यद्यपि धर्म-भाव के कारण वह बहुत स्पष्ट रूप में नहीं पाई जाती है। हिन्दी के कुछ शृंगारी कवियों की रचनाओं में प्रकृति और भी संकुचित रूप में दृष्टि-गोचर होती है। नायक-नायिका के क्रिया-कलापों से ही इन कवियों का विशेष संबंध रहता था। अतएव केलि-कुंज, पुष्प-वाटिका, चंद्रोदय, शीतल मंद समीर तथा विभिन्न ऋतुओं के स्थूल स्वरूपों तक ही इनकी दृष्टि जाती थी और वह भी नायक-नायिका के मन में उत्थित भावों को उद्दीप्त करने के विचार से। इन कवियों की दृष्टि के अनुसार यदि शीतल समीर चलती है तो विरही जनों को जलाने के लिए, पुष्प खिलते हैं तो किसी नायिका के केशपाश को सजाने के लिए और कोयल बोलती है तो नायिका को प्रियतम का स्मरण दिलाने के लिए।

प्रचलित परंपरा के अनुसार सेनापति ने भी प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में ही किया है। उनके बारहमासे के अधिकांश कवित्त उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखे गए हैं। किंतु उनकी ऋतु संबंधी रचना को भली प्रकार देखने से यह विदित होता है कि प्रकृति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था, यद्यपि परंपरा तथा साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण वह बहुत संकुचित

दिखलाई पड़ता है। कई स्थलों पर प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित होकर कवि उनके चित्रण करने का उद्योग करता है पर परंपरा के कारण उद्दीपन की भावना अज्ञात रूप से आ जाती है—

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ
जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
बिमल अकास, होत बारिज बिकास, सेना-
पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं॥
छिति न गरद, मानौं रँगे हैं हरद सालि
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद, मिट्यौ खंजन दरद, रितु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं* ॥

कवि यहाँ पर शरदऋतु के मनमोहक स्वरूप से प्रभावित है। स्वच्छ आकाश, फूला हुआ कास तथा हल्दी के से रंग में रँगे हुए जड़हन धानों को देख कर वह मुग्ध हो गया है। 'हरि पीय' का स्मरण तो परंपरा के अनुरोध से हुआ है और कवि ने उसका ज़िक्र यों ही कर दिया है। वास्तव में उसका ध्यान शरदागम की ओर ही है।

सेनापति कृत बारहमासे में सभी जगह उद्दीपन का पुट पाया जाता हो ऐसी बात नहीं है। ऐसे भी छंद पाए जाते हैं जिनमें कवि प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण करने में संलग्न है। सेनापति ग्रीष्मऋतु से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। भारतवासियों के लिए यह अत्यंत स्वाभाविक भी है क्योंकि पश्चिमी देशों की अपेक्षा यहाँ ग्रीष्म की प्रखरता बहुत अधिक रहती है। देखिए यहाँ पर कवि ने कैसी काव्योचित भावुकता के साथ ग्रीष्म का वर्णन किया है—

बृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है।

---

* तीसरी तरंग, छंद ३७।

सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका बिषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है* ॥

दोपहर ढलने पर अर्थात् दो बजे के लगभग कभी कभी हवा एकदम बन्द हो जाया करती है। उस समय की उमस से सारा संसार व्याकुल हो जाता है। इसी को लक्ष्य करके कवि कल्पना करता है कि मानो पवन भी, ग्रीष्म के भीषण ताप से त्रस्त होकर, किसी स्थान में बैठ कर, थोड़ा विश्राम कर रहा है। ऐसे सुन्दर वर्णन शृंगारी कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलेंगे। बहुधा होता यह है कि ऋतु अथवा अन्य किसी प्राकृतिक दृश्य के चित्रण करने के लिए जहाँ उन्होंने क़लम उठाई वहीं एक सिरे से वस्तुओं के नाम गिनाना प्रारंभ कर दिया। जो जितनी वस्तुओं को गिना सका उसने अपने को उतना ही कृतकृत्य समझा। 'कविप्रिया' में केशवदास ने वस्तुओं के वर्णन करने के लिए अनेक 'सूत्र' बताए हैं। यदि तालाब का वर्णन करना है तो निम्नलिखित वस्तुओं का वर्णन कर दीजिए—

"ललित लहर, बग, पुष्प, पशु, सुरभि समीर, तमाल।
करभ केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल॥" (कविप्रिया)

इसी प्रकार सरिता, वाटिका, आश्रम, ग्राम तथा ऋतुओं के संबंध में भी कुछ थोड़े से नाम गिना दिए गए हैं और उनके वर्णन करने का उपदेश दिया गया है। किंतु कदाचित् कवि-कर्म इतना सरल नहीं है जितना उक्त सूत्र देखने से प्रतीत होगा। यदि कुछ बातों को गिना देने से ही किसी दृश्य का वर्णन हो जाता तो कविता करना नितांत सरल व्यापार हो गया होता। किसी दृश्य के चित्रण करने के लिए केवल 'अर्थ-ग्रहण' करा देने से काम नहीं चलता, उसका 'बिंब-ग्रहण' कराना अत्यंत आवश्यक है†। कवि को वर्ण्य-वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं का अधिकाधिक संख्या में परिगणन कराना भी अनिवार्य नहीं कहा जा सकता। यदि कवि चाहे तो वह कुछ मुख्य-मुख्य बातों

* तीसरी तरंग, छंद ११।

† देखिए आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित "काव्य में प्राकृतिक दृश्य" शीर्षक लेख ('गद्य-मुक्ताहार', पृष्ठ १२८)।

को चुन कर उन्हीं के द्वारा अपना काम चला सकता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि कवि जो वस्तुएँ किसी दृश्य के वर्णन करने के लिए चुनता है वे ऐसी होनी चाहिएँ कि जिनके द्वारा उस दृश्य का पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण हो जाय। उदाहरणार्थ क्वाँर की वर्षा का यह चित्र लीजिए—

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं सृंग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन कार के* ॥

यहाँ पर कवि ने क्वाँर को वर्षा के संबंध में तीन-चार प्रमुख बातों की ओर संकेत किया है। क्वाँर के मेघ प्रायः अधिक विशाल नहीं होते। वर्षाऋतु के मेघों के समान न तो वे दीर्घाकार होते हैं और न उनका वर्ण ही बहुत काला होता है। उनमें शुभ्रता ही प्रधान रूप से दिखलाई देती है। इसी से कवि ने बादलों का वर्ण स्फटिक, पहल तथा चाँदी आदि का सा कहा है। क्वाँर की वर्षा अधिकतर थोड़े समय तक ही होती है। वर्षा की सी कई दिनों तक चलने वाली झड़ी जरा कम देखने में आती है। दूसरे चरण में रक्खा हुआ 'छिन' शब्द इसी ओर संकेत कर रहा है। उत्तरीय भारत में वर्षाऋतु में तो प्रायः पुरवा हवा ही चलती है। कभी कभी उत्तरीय वायु भी चला करती है। किंतु क्वाँर में हवा का यह रुख़ बदल जाया करता है और पछुवा हवाएँ चला करती हैं। इसी बात पर ध्यान रख कर कवि ने बादलों को पूरब की ओर भागता हुआ चित्रित किया है। कहना न होगा कि इन छोटी किंतु महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश करके कवि ने वास्तव में क्वाँर की वर्षा का स्वरूप खड़ा कर दिया है। यदि श्रावण मास की वर्षा के चित्र से इसका मिलान कीजिए तो भेद और भी स्पष्ट हो जायगा—

---

* तीसरी तरंग, छंद ३८।

गगन-अँगन घनाघन तैं सघन तम,
सेनापति नैंक हू न नैंन मटकत हैं।
दीप की दमक, जीगनान की झमक छाँड़ि
चपला चमक और सौं न अटकत हैं।।
रवि गयौ दबि मानौं ससि सोऊ धसि गयौ,
तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत हैं।
मानौं महा तिमिर तैं भूलि परी बाट, तातैं
रवि ससि तारे कहूँ भूले भटकत हैं* ।।

ऋतु-वर्णन में वास्तविकता का यह स्वरूप हिन्दी साहित्य में बहुत कम कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सेनापति ने प्रकृति का निरीक्षण किया था। काव्य-ग्रंथों में पाए जाने वाले ऋतु-वर्णनों के आधार पर ही उन्होंने अपना बारहमासा नहीं लिखा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सेनापति का ऋतु-वर्णन सामाजिक परिस्थिति से बहुत प्रभावित है। हिन्दी साहित्य की अन्य ऋतु संबंधी रचनाओं के संबंध में भी यह बात बहुत कुछ सच है। रीति काल के कवियों में से बहुतों का संबंध राज-दरबारों से रहा करता था। राजसी ठाट-बाट के दृश्य नित्य ही उनकी आँखों के सामने रहते थे। समाज में ये ही दृश्य भौतिक सुख के आदर्श माने जाते होंगे और साधारण जनता में इनके अनुकरण करने की चाल भी खूब रही होगी। स्वभावतः कविगण अपनी रचनाओं में इन्हीं आदर्श मानी जाने वाली बातों का चित्रण भी करते रहते थे। व्यवहारिक दृष्टि से भी राजवैभव आदि का चित्रण करना उनके लिए आवश्यक होता होगा क्योंकि अपने संरक्षक को प्रसन्न करना उनके लिए अत्यंत आवश्यक था। इसी लिए सेनापति के ऋतु-वर्णन में प्रत्येक ऋतु में राज-महलों की स्थिति-विशेष के वर्णन पाए जाते हैं। जेठ के निकट आते ही खसखानों और तहखानों की मरम्मत होने लगती है, ग्रीष्म की ताप से बचने के लिए शीतोपचार के उपायों की फ़िक्र होती है—

* तीसरी तरंग, छंद २१।

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति बिबिध जल-जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं॥
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं* ॥

इसी प्रकार अगहन मास में 'प्रभु' लोगों के उपभोग की सामग्री का वर्णन पाया जाता है—

प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है।
ओढ़िबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौ घाम है॥
धूप कौं अगर, सेनापति सौंधौ सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अंतर कौ धाम है।
आए अगहन, हिम-पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है† ॥

किंतु कवि की दृष्टि सदा बड़े बड़े रंगीन दुशालों तथा गरम हम्मामों तक ही सीमित नहीं रही है; कभी कभी आग जला कर अलाव तापते हुए साधारण स्थिति के मनुष्यों पर भी पड़ गई है—

सीत कौ प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै॥

---

* तीसरी तरंग, छंद १०।
† तीसरी तरंग, छंद ४३।

धूम नैंन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै।
मानौं भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै*॥

मानव-जीवन की विभिन्न स्थितियों में प्रवेश करके उनका सहृदयता-पूर्वक अनुभव करना ही सच्ची भावुकता है और बिना इस प्रकार की भावुकता के काव्य का वह सार्वभौम रूप खड़ा हो नहीं हो सकता जिसमें मनुष्य-मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाली शक्ति संचित रहती है। साधारण ग्राम-वासियों के लिए राजमहलों के से शाल-दुशाले कहाँ? लकड़ी अथवा कंडे आदि की धुआँ देती हुई अग्नि ही उनके लिए बहुत है। धुएँ के लगने से उनके नेत्रों से पानी बहता जाता है, फिर भी सर्दी के कारण वे आग पर गिरे पड़ रहे हैं। अलाव के चारों ओर हाथ फैला कर बैठे हुए व्यक्ति की दृष्टि से अन्तिम चरण की उत्प्रेक्षा भी बहुत ही उपयुक्त हुई है। 'गरम भौन कोनन मैं जाइ कै रही है'—कितना सच्चा निरीक्षण है।

सेनापति के ऋतु-वर्णन में ऋतुओं के उत्कर्ष को वर्णित करने की चेष्टा विशेष रूप से पाई जाती है। ऐसे वर्णन अलंकार-प्रधान हो गए हैं। अतएव अलंकारों पर विचार करते समय ही उन पर भी थोड़ा विचार किया जा सकेगा।

५—श्लेष-वर्णन

हिन्दी साहित्य में श्लेष प्रधानतया शब्दालंकार के रूप में ही पाया जाता है। सेनापति ने भी शब्द-श्लेष की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। अर्थ-श्लेष का एक भी उदाहरण 'कवित्त रत्नाकर' में नहीं पाया जाता। सेनापति को शब्द-श्लेष इतना प्रिय था कि उन्होंने 'कवित्त रत्नाकर' की पहली तरंग में ही अपनी श्लिष्ट रचनाओं को रक्खा है।

किसी भी श्लिष्ट छंद को पढ़ते समय हम सर्व-प्रथम यह जानना चाहते हैं कि कवि ने किन दो बातों का वर्णन किया है। इस बात को जाने बिना श्लिष्ट छंदों के पढ़ने में कुछ भी आनंद नहीं आ सकता है। प्रायः प्रत्येक श्लिष्ट छंद में

---

* तीसरी तरंग, छंद ४९।

कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिन्हें हम उस छंद की 'कुंजी' कह सकते हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा उसके दोनों पक्षों का पता चलता है। इस दृष्टि से 'कवित्त रत्नाकर' के श्लिष्ट छंदों को हम कई रूपों में पाते हैं। सेनापति की श्लिष्ट रचनाओं के वास्तविक स्वरूप को मनोगत करने के लिए यह आवश्यक है कि इन विभिन्न स्वरूपों से कुछ परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

वर्णन-शैली के विचार से पहली तरंग के लगभग आधे कवित्त ऐसे हैं जिनमें अर्थालंकारों का मेल अनिवार्य रूप से पाया जाता है। अर्थालंकारों में भी समता-सूचक अलंकार ही प्रचुरता से पाए जाते हैं। कवि ने इन समता-सूचक अलंकारों को बहुधा अन्तिम चरण में रक्खा है, और ये ही वास्तव में श्लिष्ट कवित्तों की 'कुंजी' हैं, क्योंकि इनके द्वारा व्यक्त किए गए उपमेय तथा उपमान उन कवित्तों के दोनों पक्षों को बतलाते हैं। इन में उपमेय तो प्रधान रूप से नायिका ही है, किंतु उपमान बड़े विचित्र रक्खे गए हैं। उदाहरणार्थ एक जगह नायिका कामदेव की पगड़ी के समान कही गई है —

पैयै भली घरी तन सुख सब गुन भरी
नूतन अनूप मिहीं रूप की निकाई है।
आछी चुनि आई कैयौ पेंचन सौं पाई प्यारी
ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यौंत्यौं मूड़हिं चढ़ाई है॥
पूरी गज गति बरदार है सरस अति
उपमा सुमति सेनापति वनि आई है।
प्रीति सौं बाँधै बनाइ राखै छवि थिरकाइ
काम की सी पाग बिधि कामिनी बनाई है*॥

इसी प्रकार कहीं वह कामदेव की वाटिका के समान है तो कहीं मोहर के समान; कहीं फूलों की अथवा नवग्रहों की माला है तो कहीं कान में पहनने की लौंग। यदि सेनापति ने बीसवीं शताब्दी में कविता की होती तो उन्हें, संभवतः, उनकी नायिका या तो बंब बरसाते हुए किसी हवाई जहाज़ के समान जान पड़ती अथवा सायंकाल के समय बिजली की रोशनी में जगमगाती हुई किसी बाज़ार के रूप में दिखलाई पड़ती। उपर्युक्त प्रकार के उपमानों के संयोग से कई कवित्त बड़े ही बेढंगे हो गए हैं। ऐसे कवित्तों में बहुधा हुआ यह है कि उनके कुछ शब्द

* पहली तरंग, छंद १७।

एक पक्ष में ठीक लग पाते हैं तथा कुछ केवल दूसरे पक्ष में। उपमेय तथा उपमान में किसी प्रकार का साम्य न होने के कारण ऐसे शब्द बहुत कम मिलते हैं जो दोनों पक्षों में अच्छी तरह लग जाते हों। फलतः शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उन्हें किसी भाँति दोनों पक्षों में लगाने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी के कुछ प्राचीन कवियों की रचनाओं में चमत्कार-प्रदर्शन की यह असाधारण प्रवृत्ति चरम सीमा तक पहुँचा दी गई है। तत्कालीन वातावरण भी कुछ ऐसा ही हो गया था कि काव्य में बिना कुछ विचित्रता हुए उसका कोई मूल्य ही नहीं समझा जाता था। जो अपनी 'कबिताई' में जितना ही अधिक चमत्कार दिखला सकता था उसे अपनी लेखनी पर उतना ही अधिक गर्व होता था। ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर सेनापति ने स्थान स्थान पर गर्वोक्तियाँ की हैं—

सेनापति बैन मरजाद कबिताई की जु
हार, रबि अरुन, तमी कौं बरनत है*।

सेनापति के उन श्लेषों में कुछ अधिक सरसता पाई जाती है जिनमें ऐसे समता-सूचक अलंकारों का मिश्रण हुआ है जिनके उपमेयों तथा उपमानों में किसी न किसी प्रकार का सादृश्य पाया जाता है। बात यह है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों की रमणीयता सादृश्य पर ही निर्भर है। उपमेय तथा उपमान में किसी न किसी प्रकार का साम्य होना नितांत आवश्यक है। जहाँ कवि ने इस बात पर ध्यान दिया है वहाँ शब्द-श्लेष ऐसे कृत्रिम अलंकार में भी पर्याप्त सरसता आ गई है :—

तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे
दूरि कौं चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत बिबिध पक्ष सोहत हैं गुन संग
स्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके
बेग बिधि जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कबि के कबित्त बिलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के†॥

---

* पहली तरंग, छंद ७४।

† पहली तरंग, छंद ६।

यहाँ कवित्तों तथा वाणों में 'तुक', 'फल', 'पच्छ' तथा 'गुन' आदि शब्दों का ही साम्य नहीं है, दोनों का लक्ष्य-स्थान एक ही है। जैसे वाण प्रत्यंचा से विलग होते ही वैरी के हृदय को विद्ध कर देता है वैसे ही प्रसाद गुण से पूर्ण कवित्त भी शीघ्रता से हृदय पर चोट करता है। हर्ष की बात है कि इस तरह के कई कवित्त पहली तरंग में पाए जाते हैं। इनमें मस्तिष्क की करामात दिखलाने के अतिरिक्त हृदय से भी काम लिया गया है, इसी से इनमें काफी सरसता तथा स्वाभाविकता पाई जाती है।

ऐसे कवित्तों के संबंध में एक और बात पर विचार कर लेना आवश्यक है और वह यह कि इनमें शब्दालंकार को प्रधान स्थान मिलना चाहिए अथवा अर्थालंकार को? अर्थात् उपर्युक्त कवित्त में श्लेष को उत्प्रेक्षा का पोषक मानना उचित होगा अथवा उत्प्रेक्षा को श्लेष का पोषक। भिखारीदास के अनुसार ऐसे स्थल पर श्लेष को ही प्रधान मानना चाहिए क्योंकि कवि का प्रधान उद्देश्य समता दिखलाना नहीं, वरन् श्लेष का चमत्कार दिखलाना है*। यह मत बहुत उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि अलंकार वर्णन-शैलियाँ हैं और वर्णन-शैली की दृष्टि से ही अंगी तथा अंग का निराकरण करना समीचीन होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ऐसे श्लेषों में अन्तिम चरण में सूचित समता-सूचक अलंकारों द्वारा ही दोनों पच्छों का पता चलता है। उपर्युक्त कवित्त में अन्तिम चरण की उत्प्रेक्षा द्वारा हमें यह विदित हो जाता है कि उसमें कवित्तों तथा वाणों का वर्णन है और तब दोनों पच्छों का अर्थ स्पष्ट होता है। प्रधानता उत्प्रेक्षा की रहती है न कि श्लेष की। अतएव सारे कवित्त में व्याप्त होते हुए भी श्लेष को अंग तथा उत्प्रेक्षा को अंगी मानना ठीक जान पड़ता है।

उद्भट आदि कुछ संस्कृत के आचार्यों ने भी ऐसे छंदों में श्लेष को ही प्रधानता दी है। उनके मतानुसार यदि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि को इस प्रकार श्लेष का बाधक मान लिया जायगा तो श्लेषालंकार का अस्तित्व ही न रह जायगा क्योंकि अर्थालंकारों से विविक्त शुद्ध श्लेष हो ही नहीं सकता। जहाँ श्लेषालंकार होगा वहाँ कोई अर्थालंकार भी होगा। मम्मट आदि आचार्यों ने इस मत का खंडन किया है। उनके मत से श्लेष की स्थिति विना किसी अर्थालंकार की

---

* दे० 'काव्यनिर्णय' (श्लेषालंकारादि वर्णन, दोहा ८)।

सहायता के भी हो सकती है। फलतः उन्होंने ऐसे स्थल पर अर्थालंकार को श्लेष का बाधक मान कर उसे अंगी माना है तथा श्लेष को अंग माना है।

उपर्युक्त प्रकार के श्लिष्ट कवित्तों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवित्त मिलते हैं जिनकी 'कुंजी' अन्तिम चरण में प्रयुक्त किसी एक शब्द में रहती है। जैसे निम्नलिखित कवित्त के अन्तिम चरण में प्रयुक्त 'घनस्याम' शब्द से यह विदित होता है कि कवि का उद्देश्य कृष्ण तथा मेघों का वर्णन करना है—

अखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम
रोम सरसाती तन सरस परस ते।
रावरे अधीन तुम बिन अति दीन हम
नीर हीन मीन जिमि काहे कौं तरसते॥
सेनापति जीवन अधार निरधार तुम
जहाँ कौं ढरत तहाँ टूटत अरस ते।
उनै उनै गरजि गरजि आए घनस्याम
ह्वै कै बरसाऊ एक बार तौ बरसते❀॥

कुछ कवित्तों में अन्तिम चरण में प्रयुक्त किसी शब्द को तोड़ने से दोनों पक्षों का पता चलता है। जिन कवित्तों में समूचे शब्दों से ही दोनों अर्थ ज्ञात होते हैं उन्हें अभंग-श्लेष कहते हैं। इसके विपरीत जिनमें शब्दों को तोड़ कर दोनों अर्थों का पता लगाया जाता है उन्हें सभंग-श्लेष कहते हैं। सभंग-पद-श्लेष तथा अभंग-पद-श्लेष पृथक्-पृथक् कवित्तों में ही पाए जाते हों ऐसी बात नहीं। बहुधा दोनों का संमिश्रण हो जाया करता है।

यहाँ सेनापति के अभंग-श्लेषों की एक विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के कई कवियों ने ऐसे अवसरों पर संस्कृत का सहारा लिया है। केशवदास के श्लेषों में यह बात अधिक पाई जाती है। संस्कृत के कठिन शब्दों के सहारे लिखे हुए श्लिष्ट कवित्तों में जटिलता की मात्रा बढ़ जाती है और वे हृदय-ग्राही नहीं हो पाते हैं। संस्कृत से परिचित होते हुए भी सेनापति ने संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग बहुत कम किया है। उन्होंने संस्कृत के उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है जो भाषा में प्रचलित हो

❀ पहली तरंग छंद ७७।

गए थे और जिनके समझने में साधारण पढ़े-लिखे व्यक्तियों को कोई विशेष कठि-नाई नहीं हो सकती थी।

सभंग-श्लेषों के संबंध में परिस्थिति कुछ भिन्न है। इनमें पठक को शब्दों को भंग करके दोनों पक्षों को जानना पड़ता है। इससे इनके समझने में कभी कभी कठिनाई होती है। किंतु कवि ने सभंग-श्लेष लिखने में सहृदयता से काम लिया है। शब्दों में थोड़ा सा परिवर्तन करके पढ़ने से दोनों पक्षों का पता चल जाता है—

सदा नंदी जाकौं आसा कर है बिराजमान
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं॥
जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं* ॥

अन्तिम पंक्ति के 'उमाधव' शब्द से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि एक पक्ष में शिव का वर्णन है। 'उमाधव' के 'उ' को पृथक् कर 'बहुधाउ माधव' कर लेने से यह भी सहज ही में विदित हो जाता है कि दूसरे पक्ष में विष्णु का वर्णन है। कवि ने कई कवित्तों में साधारण से साधारण शब्दों को लेकर सभंग-पद-श्लेष की सहायता से बड़ी ही सरस रचना की है—

अधर कौं रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं
सेनापति रूप सुधाकर तैं सरस है।
जे बहुत धन के हरन हारे मन के हैं
हीतल मैं राखे सुख सीतल परस है॥
आवत जिनके अति गजराज गति पावै
मंगल है सोभा गुरु सुंदर दरस है।
और है न रस ऐसौ सुनि सखी साँचो कहौं
मोतिन के देखिबे कौं जैसो कछू रस है† ॥

---

* पहली तरंग, छंद ३८।

† पहली तरंग, छंद ६२।

इस कवित्त में 'मोतिन के' को 'मो तिनके' कर देने से दूसरे पक्ष की सूचना मिलती है। नायिका अपनी सखी से कहना चाहती है कि मुझे कृष्ण के दर्शन से जैसा आनंद मिलता है वैसा और किसी बात से नहीं मिलता। गुरुजनों के संकोच से स्पष्ट रूप से नायक की चर्चा करना उसके लिए संभव न था। इसलिए प्रकाश में तो वह मोतियों की प्रशंसा करती है, किंतु श्लिष्ट वचनों द्वारा गुप्त रूप से अपने हृदय की बात भी प्रकट कर देती है। कृष्ण का नाम न लेकर 'तिनके' द्वारा केवल संकेत मात्र कर देने में गंभीरता, लज्जा तथा स्त्रीत्व की जो भावनाएँ व्यंजित होती हैं उन्हें सहृदय जन सहज ही में देख सकते हैं। इस ढंग के सभंग-पद-श्लेष सेनापति की अपनी चीज हैं और हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं।

कुछ श्लिष्ट कवित्तों के विभिन्न पक्षों को जानने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है। उनमें स्वयं कवि ने स्पष्टतया लिख दिया है कि मैं अमुक बातों का वर्णन कर रहा हूँ—

तारन की जोति जाहि मिले पै बिमल होति
जाके पाइ संग मैं न दीप सरसत है।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध
सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है॥
कामना लहत द्विज कौसिक सरब बिधि
सज्जन भजत महातम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कबिताई की जु
हरि रबि अरुन तमी कौं बरनत है* ॥

अन्तिम चरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने विष्णु, लाल सूर्य तथा रात्रि का वर्णन किया है। सेनापति ने जहाँ दोनों पक्षों को स्पष्ट रूप से नहीं भी कहा है वहाँ किसी दूसरे ढंग से इस बात को व्यक्त कर दिया है। बहुधा वे कह देते हैं कि मैंने अमुक वस्तुओं को एक-सा कर दिखाया है। इस एकीकरण में अधिकतर विरोधी बातें ही रक्खी गई हैं क्योंकि कवि की दृष्टि प्रधानतया चमत्कार की ओर ही रहती थी। किन्हीं दो विरोधी बातों को एक ही कवित्त में वर्णित करने में जो कठिनाइयाँ पड़ती होंगी अथवा पड़ सकती हैं उनका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। एक ही कवित्त में ऐसे शब्दों को खोज कर रखना जिनके

* पहली तरंग, छंद ७४।

द्वारा दो विरोधी बातों का वर्णन हो जाय कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए कवि का भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार होना चाहिए। भाषा में प्रयुक्त साधारण से साधारण शब्दों के भिन्न अर्थों से उसे परिचित ही नहीं होना पड़ता है वरन् उपयुक्त अवसर पर उनका उपयोग भी करना पड़ता है। कुछ कवित्तों में विरोधी बातों को लेकर उनका बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया गया है—

नाहीं नाहीं करैं थोरी माँगे सब दैन कहैं
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य
कन कन जोरैं दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति वचन की रचना बिचारौ जामैं
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं* ॥

निस्संदेह ऐसा 'साफ़' श्लेष हिन्दी साहित्य में खोजने पर भी न मिलेगा। इस कवित्त के दोनों पक्षों के अर्थ लगाने में विशेष श्रम की आवश्यकता नहीं। शब्दों में थोड़ा हेर-फेर कर दीजिए और दोनों पक्षों का अर्थ निकलता चला आयगा—'नाहीं नाहीं करैं'—'नाहीं नाहीं करैं', 'सब जन मन भाए'—'सब जनम न भाए', 'कनक न जोरैं'—'कन कन जोरैं', 'दान पाठ परिवार हैं'— दान पाठ परिवा रहैं'। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सभंग-श्लेष लिखने में सेनापति को अद्वितीय सफलता मिली है। खेद है कि सेनापति की श्लिष्ट रचना में ऐसे सरल तथा सुबोध छंदों की संख्या अधिक नहीं है।

यहाँ पहली तरंग में पाए जाने वाले श्लिष्ट छंदों के कुछ प्रमुख स्वरूपों पर विचार किया गया है। इस संबंध में एक दूसरी बात की ओर ध्यान दिलाना अनावश्यक न होगा। पहली तरंग में दो कवित्त ऐसे पाए जाते हैं जिनमें श्लेषालंकार या तो नाम-मात्र को पाया जाता है अथवा है ही नहीं। निम्नलिखित कवित्त में केवल 'पी रहै दुहू के तन' में सभंग-श्लेष है; बाक़ी सारे कवित्त में सभंग-पद-यमक है न कि श्लेष—

---

* पहली तरंग, छंद ४०।

कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई
पी रहै दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग हम एक रति जोग
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं॥
कूबरी यौं कल पैहै हम इहाँ कल पैहैं
सेनापति स्यामैं समुझै यौं परबीने हैं।
हम वे समान ऊधौ कहौ कौंन कारन तैं
उन सुख मानें हम दुख मानि लीने हैं* ॥

सभी द्व्यर्थक छंदों में श्लेषालंकार नहीं होता। श्लेषालंकार में एक शब्द एक ही बार प्रयुक्त होता है और उसके दो अर्थ होते हैं। जहाँ कोई शब्द दो अर्थ नहीं भी देता है वहाँ उसे भंग करने के उपरांत दूसरा अर्थ ज्ञात हो जाता है। किंतु जहाँ किसी शब्द की पुनरावृत्ति के कारण दो अर्थ निकलते हैं वहाँ यमक माना जाता है—

वहै सब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है, भेदि अनेकन ठौर† ॥

अतएव उपर्युक्त कवित्त में सभंग-पद-यमक ही माना जायगा क्योंकि 'लगाई', 'एक रति जोग', 'सूल' तथा 'कल' आदि शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। इसी प्रकार इस कवित्त में—

तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहस गुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै॥
सेनापति सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी
निस-दिन चंद चल जगत वखानियै।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै‡ ॥

---

* पहली तरंग, छंद ६६।

† काव्यनिर्णय (गुण निर्णय वर्णन, दोहा ४३)।

‡ पहली तरंग, छंद ७६।

यमक द्वारा प्रथम पंक्ति के दो अर्थ होते हैं । द्वितीय चरण में 'सूर' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है और यमक के कारण इसके दो अर्थ होते हैं। परंतु इस कवित्त में यमक भी गौण रूप से ही है। प्रधानता प्रतीप अलंकार की है जो सारे कवित्त में आदि से अन्त तक व्याप्त है। श्लेष तो इसमें कहीं है ही नहीं। उपर्युक्त दो कवित्त ही ऐसे हैं जिनके श्लेष मानने में आपत्ति की जा सकती है। ऐसा जान पड़ता है कि रचना-शैली में साम्य होने से ही कवि ने इन्हें श्लिष्ट कवित्तों के साथ रख दिया है।

यहाँ तक तो सेनापति के श्लेषों पर कुछ विचार किया गया। इसी संबंध में अन्य अलंकारों पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। शब्दालंकारों में श्लेष के अतिरिक्त अनुप्रास का आग्रह विशेष देखा जाता है। श्लेष तथा अनुप्रास सेनापति को बहुत प्रिय थे। दूसरी तरंग के अन्त में तथा अन्यत्र भी कवि का ध्यान अनुप्रास के चमत्कार की ओर ही है। यहाँ तुकांत-यमक का एक उदाहरण दिया जाता है—

अमल कमल, जहाँ सीतल सलिल, लागी
आस-पास पारिन सबनि ताल जाति है।
तहाँ नव नारी, पंचबान बैस वारी, महा
मत्त प्रेम-रस आस बनि ताल जाति है ॥
गावति मधुर, तीनि ग्राम सात सुर सिलि,
रही तानिन मैं बसि, बनि ताल जाति है।
सेनापति मानौं रति, नीकी निरखत अति,
देखिकै जिन्हैं सुरेस बनिता लजाति है ॥*

यमक तथा अनुप्रास आदि का बहुतायत से प्रयोग करने के लिए कवि की भाषा बहुत ही संपन्न होनी चाहिए क्योंकि यदि ऐसे अवसरों पर उसे उपयुक्त शब्द नहीं मिलेंगे तो वह शब्दों के रूप विकृत करना प्रारंभ कर देगा। सेनापति का भाषा पर अच्छा अधिकार था इसी से उन्हें अनुप्रास आदि के लाने में ऐसी कठिनाई कम पड़ती थी। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण ही उनके शब्दालंकारों में कृत्रिमता अधिक नहीं खटकती है। निम्नांकित कवित्त में भाव-पक्ष को लिये हुए कला-पक्ष का सुन्दरता से निर्वाह किया गया है—

* दूसरी तरंग, छंद ७३।

नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति,
सेनापति चेत कछू, पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर, पाप
करम न कर मूढ़, सीस भयौ सेत है॥
आवै बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
पुन्न के बनिज तन-मन किन देत है।
आवत बिराम ! बैस बीती अभिराम, तातैं
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है* ॥

'रामरसायन' के अन्त में चित्रालंकारों के भी कुछ उदाहरण पाए जाते हैं। अनेक आचार्यों ने चित्रकाव्य को काव्य ही नहीं माना है। किंतु काव्य-प्रकाशकार ने इसे व्यंग्यार्थ से रहित काव्य का तृतीय भेद माना है और 'अधम काव्य' की संज्ञा दी है। यदि वास्तव में देखा जाय तो शब्द-कौतुक के अतिरिक्त ऐसी रचनाओं में और होता ही क्या है ? पर कुछ कवियों को इस खेलवाड़ में विशेष आनंद आता था। सेनापति ने एकाक्षर, द्वयाक्षर आदि की आवृत्ति वाले कुछ छंद भी लिखे हैं। इनके द्वारा किसी तरह के चित्र नहीं बनते; इनके पढ़ने में एक विशेष प्रकार की विचित्रता आ जाती है, इसी से भिखारीदास ने इन्हें वाणी का चित्र कहा है। इस प्रकार के छंदों के अर्थ समझने में कहीं कहीं विशेष कठिनाई होती है।

अर्थालंकारों में स्वभावतः सादृश्य-मूलक अलंकारों की ही अधिकता पाई जाती है। इनमें से भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक तथा प्रतीप आदि का बाहुल्य पाया जाता है। नख-शिख वर्णन में प्रतीप का प्रयोग उपमा से भी अधिक हुआ है।

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में वस्तूत्प्रेक्षा से विशेष सहायता ली गई है और कवि को अपूर्व सफलता मिली है। शुभ्र ज्योत्स्ना से परिपूर्ण संसार ऐसा जान पड़ता है मानो वह क्षीर-सागर में डूब गया हो—

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-
पति है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं॥

* पाँचवीं तरंग, छंद ११।

उदित बिमल चंद, चाँदिनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन है* ॥

जेठ मास की दोपहर अपने सन्नाटे के लिए प्रसिद्ध है। उस समय ग्रीष्म के प्रखर ताप से उत्तप्त होकर प्राणी मात्र विश्राम करता है, एक तिनका तक नहीं खटकता। इस दृश्य को देख कर कवि कहता है—

लागे हैं कपाट सेनापति रंग-मंदिर के,
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है।
कोई न भनक, ह्वै कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी कि मानौं अधरात है† ॥

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में तो वस्तूत्प्रेक्षा से सहायता ली गई है किंतु ऋतुओं का उत्कर्ष व्यंजित करने के लिए फलोत्प्रेक्षा तथा हेतूत्प्रेक्षा का प्रयोग किया गया है। ग्रीष्म की प्रचंड लू से सारा संसार जल जाता है। शीतलता का तो कहीं पता ही नहीं चलता। यदि उसका थोड़ा बहुत अस्तित्व कहीं रह जाता है तो वह तहखानों के भीतर ही पाया जा सकता है। विधाता ने शीतलता को वहाँ किस लिए छिपा रक्खा है ? इसीलिए कि बीज रूप में थोड़ी सी शीतलता अवशिष्ट रह जानी चाहिए क्योंकि उसी के सहारे आगामी शरदृतु में शीत रूपी लता का पुनः आरोप किया जायगा—

मानौं सीत काल, सीत-लता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा मैं धराइ कै‡।

फलोत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण देखिए—

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपबन बन धाए हैं॥

---

* तीसरी तरंग, छंद ४० ।

† तीसरी तरंग, छंद १३ ।

‡ तीसरी तरंग, छंद १२ ।

सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कबिता के मन आए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं* ॥

टेसू के लाल वर्ण वाले पुष्पों के गुच्छे काली घुंडियों के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो स्याही में डुबो दिए गए हों। उन पुष्पों पर भ्रमरावली भी आकर बैठ गई है। लाल तथा काले वर्णों के इस दृश्य को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेव ने विरहियों को जलाने के लिए ऐसे कोयले सुलगाए हों जो अभी अध-जले हैं।

वर्षाऋतु के उत्कर्ष का वर्णन हेतूत्प्रेक्षा द्वारा किया गया है। पौराणिकों के अनुसार चौमासे भर विष्णु भगवान् शेष-शय्या पर सोया करते है। इसी बात को लेकर कवि वर्षाऋतु के उत्कर्ष का वर्णन करता है। उसके अनुसार हरिशयनी का वास्तविक कारण यह है कि चौमासे भर बादलों के घिरे रहने के कारण घोर अंधकार रहता है और विष्णु को यह भ्रम रहता है कि अभी रात्रि कुछ बाक़ी है; इसी से वे सोया करते हैं!—

चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै† ।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षाओं के अन्य उदाहरण भी पाए जाते हैं। सेनापति को भावों तथा व्यापारों को बिना बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किए संतोष नहीं होता है। इस प्रवृत्ति से जहाँ वे अधिक प्रभावित हो जाते हैं वहीं भाव-पक्ष का पल्ला छोड़ देते हैं और अतिशयोक्तियों तथा अत्युक्तियों की ओर झुकने लगते हैं। शिशिर-ऋतु में दिन छोटे होते हैं तथा रातें बड़ी होने लगती हैं। सेनापति कहते हैं कि माघ में दिन तो होता ही नहीं, उसके दर्शन तो स्वप्न में हो जाया करते हैं!—

अब आयौ माह, प्यारे लागत हैं नाह, रबि
करत न दाह जैसौ अवरेखियत है।
जानियै न जात, बात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातैं तनकौ बिसेखियत है ॥

---

* तीसरी तरंग, छंद ४।

† तीसरी तरंग, छंद ३१।

कलप सी राति सो तौ सोए न सिराति क्यौंहू,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है।
सेनापति मेरे जान दिन हू तैं राति भई,
दिन मेरे जान सपने मैं देखियत है ॥*

गंगा-माहात्म्य-वर्णन सभंग-श्लेष से पुष्ट अक्रमातिशयोक्ति द्वारा दिया गया है। एक गायक महाशय सुर भर रहे थे। उनके साथ के दो मित्र भी उनके सुर में सुर मिला कर गाने लगे। गायक महाशय कहना तो यह चाहते थे कि आप लोग सुर न भरिए ('सुर न दीजै') किंतु धोखे से उनके मुख से निकल गया 'सुरनदी जै' (गंगा की जय)। बस फिर क्या था, इन शब्दों के कान में पड़ते ही गायक तथा दोनों मित्र क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव हो गए और देवलोक में जा बिराजे—

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके
लागे सुर दैन सेनापति सुखदाइकै।
तौही कही आप, सुर न दीजै प्रबीन, हौं अ-
लापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइ कै ॥
धोखे 'सुरनदी जै' के कहत, सुनत, भए
तीन्यौ तीनि देव, तीनि लोकन के नाइकै।
गाइन गरुड़-केतु भयौ द्वै सखाऊ भए
धाता महादेव, बैठे देव लोक जाइ कै† ॥

गंगा-माहात्म्य-वर्णन करते करते कवि का ध्यान 'सुरनदी जै' के श्लिष्ट अर्थों की ओर गया और उसे एक अच्छा अवसर हाथ लग गया। 'सुरनदी जै' के चमत्कार को प्रदर्शित करने के लिए एक प्रसंग की अवतारणा करनी पड़ी और परिणाम यह हुआ कि गायक महोदय को, सुर भरने की अपूर्ण इच्छा को लिए हुए ही, अपने मित्रों सहित गोलोक-वासी बनना पड़ा!

अभेद प्रधान सादृश्य-मूलक अलंकारों में अपन्हुति का प्रयोग अधिक नहीं किया गया है; परंतु रूपक, भ्रम तथा संदेह आदि बहुतायत से पाए जाते हैं। रूपकों को श्लिष्ट कर देने का आग्रह विशेष देखा जाता है। निरंग रूपकों में तो कवि ने सहज ही में श्लेष का संमिश्रण कर दिया है —

* तीसरी तरंग, छंद ४२।

† पाँचवीं तरंग, छंद ६४।

प्रबल प्रताप दीप सात हू तपत जाकौं
तीनि लोक तिमिर के दलन दलत है।
देखत अनूप सेनापति राम रूप रवि
सवै अभिलाष जाहि देखत फलत है॥
ताही उर धारौ दुरजन कौं विसारौ नीच
थोरौ धन पाइ महा तुच्छ उछलत है।
सब विधि पूरौ सुरवर सभा रूरौ यह
दिनकर सूरौ उतराइ न चलत है* ॥

परंतु सांग रूपकों में भी श्लेष का पुट दे देने की चेष्टा की गई है। गंगा-वर्णन का एक कवित्त देखिए—

लहुरी लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके
बीच परे भौंर फटिका से सुधरत हैं।
परे परवाह पानि ही मैं जे बसत सदा
सेनापति जुगति अनूप बरनत हैं॥
कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि,
देखे उड़ि जात पात-पात ह्वै नसत हैं।
सोहत गुलेला से बलूला सुरसरि जू के
लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं† ॥

इस कवित्त में 'पानि', 'कोटि' तथा 'कलमष' आदि शब्द श्लिष्ट हैं। 'पानि' का एक अर्थ हाथ तथा दूसरा जल है—जिस प्रकार शिकार खेलते समय 'फटिका' हाथ में ही रहता है क्योंकि उसी में मिट्टी की गोली रख कर चलाई जाती है उसी प्रकार जल का वेग तेज़ होने पर भौंर उस प्रवाह के तेज़ पानी में ही पड़ा करती है। जैसे कोटि (धनुष-कोटि) रूपी काले ('कलि') काल को देखते ही समस्त काले ('कलमष' अथवा 'कल्माष') कौए उड़ जाते हैं और गोली लग जाने से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही गंगा की तरंग देखने पर कलिकाल के करोड़ों पातक विलीन हो जाते हैं और उनका अस्तित्व तक मिट जाता है।

---

* पहली तरंग, छंद ७९।

† पाँचवीं तरंग, छंद ६४।

श्लेष के संमिश्रण से प्रस्तुत रूपक में थोड़ी जटिलता अवश्य आ गई है, परंतु उसके द्वारा रूपक की रमणीयता भी अधिक हो गई है। गंगा की तरंग तथा गुलेल के भिन्न अंगों में पाया जाने वाला सादृश्य तथा साधर्म्य और भी स्पष्ट हो गया है।

सादृश्य-सूचक काल्पनिक संदेह में ही संदेहालंकार माना जाता है। युद्ध-स्थल में वायुयानों पर बैठे हुए राम तथा रावण कैसे जान पड़ते हैं—

पच्छन कौं धरे किधौं सिखर सुमेर के हैं,
बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धहिं करत हैं।
किधौं मारतंड के द्वै मंडल अडंबर सौं,
अंबर मैं किरन की छटा बरसत हैं॥
मूरति कौं धरे सेनापति द्वै धनुरबेद,
तेज रूपधारी किधौं अस्त्रनि अरत हैं।
हेम-रथ बैठे, महारथी हेम-बानन सौं,
गगन मैं दोऊ राम-रावन लरत हैं* ॥

भक्तगण ऐसे तो भगवान् का गुण-गान किया ही करते हैं किंतु कभी कभी वे प्रत्यक्ष में निंदा करते हुए भी स्तुति करते हैं। सेनापति कहते हैं कि मैं नहीं कह सकता कि मुझ-सा अधम व्यक्ति इस संसार में कौन है क्योंकि मैं जिसका सेवक हूँ उसकी कैफ़ियत यह है—

धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौं,
गीध हू कौं बंधु सबरी कौं मिहमान है।
पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
छाती बिप्र-लात कौं धरैया तजि मान है॥
व्याध अपराध-हारी, स्वान-समाधान-कारी,
करै छरीदारी, बलि हू कौं दरवान है।
ऐसौ अवगुनी! ताके सेइबे कौं तरसत,
जानियै न कौन सेनापति के समान है† ॥

---

* चौथी तरंग, छंद ६४।

† पाँचवीं तरंग, छंद १६।

सेनापति का ध्यान शब्दालंकारों की ओर ही अधिक था, इसी से 'कवित्त रत्नाकर' में उनकी भरमार पाई जाती है। अर्थालंकारों में जो अधिक प्रचलित-से हैं उन्हीं का बाहुल्य पाया जाता है, अन्य अलंकार बहुतायत से नहीं मिलते हैं।

६—भाषा

काव्य के अन्तरंग के विचार से 'कवित्त रत्नाकर' की फुटकर रचनाएँ भक्त तथा शृंगारी कवियों की रचनाओं के साथ रक्खी जा सकती हैं किंतु काव्य के बहिरंग की दृष्टि से वे केवल रीति-ग्रंथकारों की कोटि में ही रक्खी जायँगी। भक्त कवियों को हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करने का जितना उत्साह रहता था उतना अपनी भाषा को सजाने का नहीं। उनकी भाषा उनके हृदय से निकले हुए उद्‌गारों से ओत-प्रोत पाई जाती है यद्यपि उसमें अपना निजी सौंदर्य अधिक नहीं है। शृंगारी कवियों की रचनाओं में वाह्य उपकरणों द्वारा भाषा को आभूषित करने का आग्रह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण उनमें वह नैसर्गिक मर्मस्पर्शिता नहीं पाई जाती है जो भक्ति-काल के कवियों के काव्य में मिलती है। 'कवित्त रत्नाकर' की भाषा को भी इसी प्रकार का समझना चाहिए। उसकी भाषा का सौंदर्य भावों की तन्मयता के फल-स्वरूप न होकर अलंकारों की तड़क-भड़क के कारण ही है।

सेनापति ब्रजभाषा लिखने में बहुत ही दक्ष थे। उनके श्लिष्ट कवित्तों पर विचार करते समय हम देख चुके हैं कि भाषा के साधारण से साधारण शब्दों द्वारा उन्होंने कितनी सुन्दर रचना की है। ब्रजभाषा से इतना परिचित होने के कारण ही उन्हें श्लिष्ट काव्य लिखने में अपूर्व सफलता मिली है। उनकी भाषा में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों का प्रयोग कम हुआ है। ऐसे छंद कम मिलते हैं जिनका सौंदर्य संस्कृत की शब्दावली पर ही अवलंबित हो। संस्कृत-शब्दावली प्रधान एक छप्पय देखिए—

श्री बृंदाबन-चंद, सुभग धाराधर सुंदर।
दनुज-बंस-बन-दहन, बीर जदुबंस-पुरंदर ॥
अति बिलसति बनमाल, चारु सरसीरुह लोचन।
बल बिदलित गजराज, बिहित बसुदेव बिमोचन ॥

सेनापति कमला-हृदय, कालिय-फन-भूषन चरन।
करुनालय सेवौ सदा, गोबरधन गिरिवर धरन* ॥

विदेशी शब्दों में से कुछ शब्द फ़ारसी भाषा के पाए जाते हैं। इनके भी तत्भव रूप ही मिलते हैं। राजनीतिक कारणों से इनका प्रयोग सर्वसाधारण में भी हो गया था। फ़ारसी शब्द अधिकतर पहली तरंग में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ— पाइपोस (पापोश), बरदार, दादनी, रोसन (रोशन), मिहीं, आसना (आशना), गोसे (गोशा), ज्यारी (ज़ियारी), रुख (रुख़), बाजी। दो-एक अरबी के शब्द भी पाए जाते हैं— अरस (अर्श), लिबास, इतबार (एतबार); किंतु इन शब्दों की संख्या बहुत ही सीमित है।

प्रादेशिकता के विचार से 'कवित्त रत्नाकर' की भाषा में खड़ी बोली के कतिपय रूपों का प्रभाव लक्षित होता है। जैसे कालवाची क्रियाविशेषण 'पीछे' का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। इसी प्रकार अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' तथा 'कोऊ' दोनों व्यवहृत हुए हैं। उच्चारण की दृष्टि से भी कुछ शब्दों के रूप खड़ी-बोली-पन लिए हुए हैं। पूर्वी प्रयोगों में से पंचमी के परसर्ग 'सन' का प्रयोग एक जगह पाया जाता है :—

तन कौं बसन देत, भूख मैं असन, प्यासे
पानी हेतु सन बिन माँगे आनि दीनौ है†।

इसी प्रकार 'कर' का प्रयोग षष्ठी के परसर्ग के रूप में दो बार हुआ है—

(१) कहा जगत आधार ? कहा आधार प्रान कर‡ ?।
(२) सेनापति धुनि महा सिद्ध मुनि जस कर।
ताहि सुनि तसकर त्रासनि मरत हैं§।

एक स्थान पर 'कवन' (कौन) भी मिलता है—

को तीजौ अवतार ? कवन बासी भुजंग मुख× ?।

---

* पाँचवीं तरंग, छंद २५।
† पाँचवीं तरंग, छंद २४।
‡ पाँचवीं तरंग, छंद ६७।
§ पहली तरंग, छंद ९०।
× पाँचवीं तरंग, छंद ६८।

किंतु ऐसे रूपों का प्रयोग इन उदाहरणों तक ही सीमित समझिए। संभव है खोजने पर कुछ प्रयोग और मिल जायँ। आधुनिक दृष्टि से पश्चिमी प्रदेश के लेखकों में इनका पाया जाना आश्चर्य-जनक अवश्य है किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर १७ वीं शताब्दी की ब्रज में इस तरह के कुछ प्रयोगों का मिलना असंभव नहीं है। उपर्युक्त प्रयोगों को छोड़ कर 'कवित्त रत्नाकर' की भाषा शुद्ध ब्रज है।

सेनापति की भाषा में प्रसाद तथा ओज गुण प्रधानता से पाए जाते हैं। ओज-पूर्ण भाषा लिखने में सेनापति बहुत निपुण हैं। ओज गुण लाने के लिए उन्होंने कुछ शब्दों के द्वित्व रूपों का भी प्रयोग किया है, जैसे 'अक्खि', 'पिक्खि', 'किति', 'बुल्लिय', 'टुट्टिय' आदि। किंतु ऐसे शब्द बहुधा छप्पयों में ही मिलते हैं। 'दुज्जन', 'पब्बय' आदि दो-एक शब्दों को छोड़ कर कवित्तों में ये बिलकुल नहीं पाए जाते हैं। कवि ने ऐसे अवसरों पर बहुधा अनुप्रास से सहायता ली है। देखिए हनूमान के गर्व-कथन को कैसे ओज-पूर्ण शब्दों द्वारा कहलाया गया है—

कीजियै रजाइस कौं हरि पुर जाइ सकौं,
पौनौं बीर जाइ सकौं जा तन खरोसौ है।
काहू कौं न डर, सेनापति हौं निडर सदा,
जाके सिर ऊपर जु साँईं राम तोसौ है॥
कुलिस कठोरन कौं देखौं नख-कोरन कौं,
लाए नैंक पोरन कौं मेरु चून कैसौ है।
चूर करौं सोरन कौं, कोटि कोट तोरन कौं,
लंका गढ़ फोरन कौं, को रन कौं मोसौ है* ॥

माधुर्य की ओर सेनापति का ध्यान अधिक न था। फिर भी कुछ कवित्तों में शब्द-सौंदर्य का विधान किया गया है—

तोर्यौ है पिनाक, नाक-पाल बरसत फूल,
सेनापति कीरति बखानै रामचंद की।
लै कै जयमाल सिय बाल है बिलोकी छबि,
दसरथ लाल के बदन-अरबिंद की॥

* चौथी तरंग, छंद ४२।

परी पेम-फंद, उर बाढ़्यौ है अनंद अति,
आछी मंद-मंद चाल चलति गयंद की।
बरन कनक बनी, बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की* ॥

प्रसाद गुण श्लिष्ट रचनाओं को छोड़ कर प्रायः सर्वत्र ही पाया जाता है। कवि ने 'व्यंजना' का उपयोग बहुत कम किया है। लाक्षणिक शब्द भी थोड़े ही हैं। 'कवित्त रत्नाकर' की भाषा में अभिधेयार्थ ही प्रधान है। श्लिष्ट कवित्तों के दो अर्थ होते हैं, किंतु वे दोनों अर्थ वाच्यार्थ ही रहते हैं, अतएव वहाँ भी अभिधा ही मानी जायगी।

सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित तथा परिमार्जित है, उसमें शब्दों के विकृत रूप अधिक नहीं मिलते हैं। किंतु एक आध जगह गढ़े हुए शब्द भी देखे जाते हैं—

(१) द्रौपदी सभा में आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
कौरव कुपित कह्यौ काहू कौं न मानहीं।
लच्छक नरेस पै न रच्छक उठत कोई,
परी है बिपत्ति पति लागी पतता नहीं† ॥

(२) धुनि सुनि कोकिल की बिरहिनि को किलकी
केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत हैं‡।

छंदोभंग दोष केवल एक ही कवित्त में है और वह भी प्रतिलिपि-कारों के प्रमाद के कारण हो गया है। पर यति-गति संबंधी दोष कई स्थलों पर हैं और उनका उत्तरदायित्व प्रतिलिपिकारों के सिर नहीं मढ़ा जा सकता है, जैसे—

(१) भूप सभा भूषन, छिपावौ पर दूषन, कु-
बोल एक हू खन कहे न देह पाइ कै§।

* चौथी तरंग, छंद १७।

† पाँचवीं तरंग, छंद ४२।

‡ तीसरी तरंग, छंद २५।

§ पहली तरंग, छंद ४।

(२) कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है बीच देहरे ? कहा है बीच देह रे* ?।

(३) गरजत घन, तरजत है मदन, लर-
जत तन मन नीर नैंननि बहत है†।

(४) सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
रजनी की झाँईं वासर (?) मैं झमकति है‡।

(५) सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है§।

यहाँ पर १६, १५ की यति का क्रम तो ठीक है, किंतु प्रथमाष्टक में ही दो विषम पदों ('सारंग' तथा 'सुनावै') के बीच में एक सम पद ('धुनि') रक्खा हुआ है; इसी से लय बिगड़ गई है। यह प्रयोग निकृष्ट माना जाता है। गति की दृष्टि से उक्त पंक्ति इस प्रकार होनी चाहिए—

सारंग सुनावै धुनि रस बरसावै घन,
मन हरषावै मोर अति अभिराम है।

७—हस्तलिखित प्रतियाँ

'कवित्त रत्नाकर' के वर्तमान संपादन की आधारभूत समस्त हस्तलिखित प्रतियाँ, 'ख' प्रति को छोड़ कर, भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त हुई हैं। नीचे इनका सूक्ष्म विवरण दिया जाता है :—

१ क :—यह प्रति प्रयाग विश्वविद्यालय के अँग्रेजी विभाग के अध्यापक पं० शिवाधार पाँडे से प्राप्त हुई है। 'कवित्त रत्नाकर' की अन्य हस्तलिखित प्रतियों के साथ पाँडे जी ने, सन् १९२२ में, इसकी भी नक़ल की थी। उनका कहना है कि जिस पोथी से उन्होंने यह प्रतिलिपि की थी वह नितांत प्रामाणिक ज्ञान पड़ती थी। उसके काग़ज का रंग बहुत हलकी ललाई लिए

---

* पाँचवीं तरंग, छंद ३१।

† तीसरी तरंग, छंद २४।

‡ तीसरी तरंग, छंद ४०।

§ पहली तरंग, छंद १२।

हुए कुछ-कुछ भूरे रंग से मिलता-जुलता था। वह विकर्णाकार (Diagonally) लिखी हुई थी। उसका अन्तिम पृष्ठ फटा हुआ था, इससे उसके लिपिकाल का कुछ पता न चल सका था। उसमें किसी श्रीनाथ मिश्र का नाम लिखा हुआ था जो संभवतः उसके लिपिकार रहे होंगे। पं० राज नाथ पाँडे के अनुसार वह प्रति अब भरतपुर में अप्राप्य है।

'कवित्त रत्नाकर' का संपादन करने में 'क' प्रति से विशेष सहायता मिली है।

२ ख :—यह प्रति भरतपुर के पुस्तकालय में प्राप्य है। वहाँ इसका नं० ७३ है तथा पृष्ठ संख्या २१७ है। लिपिकाल नहीं दिया हुआ है। इस प्रति में एकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों का बाहुल्य है यद्यपि ऐकारान्त तथा औकारान्त रूप भी यत्र तत्र पाए जाते हैं। इसमें सर्वत्र 'ख' को 'प' लिखा है। 'श्लेष वर्णन' में ९५ कवित्त हैं।

३ ग :—भरतपुर के पुस्तकालय में इसका नं० २३३ है तथा पृष्ठ संख्या ९६ है। जिस पोथी से पं० शिवाधार ने 'क' प्रति को नक़ल किया था उसके विवरण में तथा इस प्रति की अनेक बातों में बहुत साम्य है। यह भी विकर्णाकार लिखी हुई है। काग़ज़ का रंग भी वैसा ही है। अन्तिम पृष्ठ पर 'श्रीनाथ मिश्र' भी लिखा हुआ मिलता है। इन बातों को देखने से अनुमान ऐसा होता है कि 'ग' प्रति वही है जिसकी पं० शिवाधार पाँडे ने प्रतिलिपि की थी। किंतु 'क' तथा 'ग' प्रति के पाठों में अनेक स्थलों पर अन्तर मिला। उदाहरण-स्वरूप 'क' की पहली तरंग में ९६ कवित्त पाए जाते हैं किंतु 'ग' में केवल ९४ ही हैं। खेद है कि इन दोनों प्रतियों के पाठों को मिलान करने का अधिक अवसर न प्राप्त हो सका। इससे निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि 'क' तथा 'ग' प्रतियाँ वास्तव में एक हैं अथवा भिन्न।

४ घ :—यह प्रति भरतपुर के पुस्तकालय में मतिराम कृत 'ललित ललाम' के साथ पाई जाती है, जिसका नं० ५२ है। संभवतः यह भी उसी समय की लिखी हुई है जिस समय 'ललित ललाम' की प्रतिलिपि की गई थी क्योंकि दोनों पोथियों की लिखावट बिलकुल एक-सी है। 'ललित ललाम' का लिपिकाल चैत वदी १३, सं० १८८० दिया हुआ है। अतएव यह प्रति भी सं० १८८० की

लिखी हुई मानी जा सकती है। इसमें 'कवित्त रत्नाकर' की चौथी तथा पाँचवीं तरंगें नहीं हैं।

५ न :—यह प्रति श्रावण सुदी १४ बुधवार, सं० १८१८ में किसी 'प्राण जीवन त्रावाड़ी' द्वारा लिखी गई थी। भरतपुर के पुस्तकालय में इसका नं० २११ क है। पृष्ठ संख्या ७५ है। पहली तरंग में ७० छंद हैं। पाँचवीं तरंग में ३३ वें कवित्त के आगे से आलम कृत नायक-नायिका भेद लिखा हुआ मिलता है यद्यपि ग्रंथ के अन्त में सुर्खी से यह लिखा हुआ है—"इति श्री सेनापति विरिचते कवित्त रत्नाकरे पंचमस्तरंग संपूर्ण"।

अर्थ की दृष्टि से इस प्रति के पाठ काफ़ी शुद्ध हैं। 'कवित्त रत्नाकर' के संपादन में 'क' प्रति के अतिरिक्त इससे भी विशेष सहायता मिली है।

६ छ :—इस प्रति में पहली तरंग में ९६, दूसरी में ७४ तथा तीसरी में ६१ छंद पाए जाते हैं। लिपिकार का नाम ठाकुर दास मिश्र है—"लिखित ठाकुर दास मिश्र आत्म अर्थे: सं० १८३२ मीती श्रावण कृष्ण ५ चंद्रवासरे"। चौथी तथा पाँचवीं तरंगें इसमें नहीं हैं।

७ त :—इसमें पहली तरंग में ५५ तथा दूसरी में केवल ५ छंद हैं। अवशिष्ट तरंगें इसमें नहीं हैं। तिथि तथा लिपिकार का कुछ पता नहीं मिलता है।

८, ९, १० च, ज तथा ट :—ये वास्तव में पूर्ण प्रतियाँ नहीं हैं। भरतपुर के पुस्तकालय में कुछ संग्रह ग्रंथ मिलते हैं, उन्हीं में ये पाई जाती हैं। च तथा ज में रामायण तथा रामरसायन संबंधी छंद पाए जाते हैं। ट में इनके अतिरिक्त कुछ शृंगार संबंधी छंद भी मिलते हैं।

११ ञ :—यह प्रति हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पं० कृष्ण बिहारी मिश्र के यहाँ है। किसी बलदेव मिश्र ने मिश्र जी के स्वर्गीय पितृव्य श्रीमान् पं० जुगुल किशोर मिश्र के लिए 'कवित्त रत्नाकर' की किसी पोथी से इसे नक़ल किया था। इस प्रति के अन्त में लिखा है :—"श्री सं० १९४१ अस्वनि मासे शुक्ल पक्षे तिथौ द्वितीयायां लिखितमिदं पुस्तकं बलदेव मिश्रेण मिश्र जुगुल-किशोरस्य पाठार्थं श्री शुभस्थान गंधोली ग्रामस्य लंबरदार। श्री जानकीवल्लभो जयति। श्री कृष्णाय नमो नमः।"

अन्य प्रतियों के छंदों से इसके छंदों की तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि इसके पाठों को कहीं-कहीं शोध दिया गया है। अतएव इसके पाठों को अधिक प्रामाणिक नहीं माना गया है। इसमें कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जो अन्य किसी भी प्राचीन प्रति में नहीं हैं। इसी से उन्हें 'परिशिष्ट' में दे दिया गया है।

८—संपादन-सिद्धान्त

किसी प्राचीन कवि की रचनाओं के मूल रूप को उपस्थित कर सकना प्रायः दुस्तर होता है। आदर्शरूप से तो यह तभी हो सकता है जब स्वयं कवि के हाथ का लिखा हुआ ग्रंथ प्राप्त हो जाय। यदि इस प्रकार का कोई ग्रंथ मिल जाय तब तो उसके संपादन का प्रश्न ही नहीं उठेगा। किंतु ऐसा बहुत कम होता है। बहुधा ऐसे ग्रंथ प्राप्त होते हैं जो मूल ग्रंथ की न जाने कितनी प्रतिलिपियों के बाद के होते हैं। प्रायः प्रत्येक लिपिकार प्रतिलिपि करते समय देश-काल तथा अपनी परिस्थिति-विशेष के अनुसार अपनी भाषा का प्रभाव भी उस ग्रंथ पर छोड़ देता है। सैकड़ों वर्षों तक यही क्रम चलते रहने से मूल ग्रंथ का वास्तविक स्वरूप अन्तर्हित हो जाता है। इन प्रभावों को हटा कर कवि की रचना के मूल रूप के निकटतम पहुँचना ही किसी ग्रंथ के संपादक का कर्त्तव्य है।

इस दृष्टि से जो प्रति जितनी ही प्राचीन होगी उतना ही उसका महत्त्व बढ़ जायगा। यदि वह स्वयं कवि के प्रदेश में लिखी गई है तब तो वह और भी मान्य हो जायगी। खेद है कि 'कवित्त रत्नाकर' की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में एक भी प्रति इस प्रकार की नहीं है। उसकी दो-एक प्रतियाँ देखने में बहुत प्राचीन जान पड़ती हैं किंतु उनमें लिपिकाल का कोई निर्देश न होने के कारण उनके संबंध में कोई बात निश्चयात्मक रीति से नहीं कही जा सकती है। 'न' प्रति 'कवित्त रत्नाकर' के रचना-काल से लगभग ११२ वर्ष बाद की लिखी हुई है। इसका लिपिकाल सं० १८१८ है। अतएव 'क' तथा 'ग' प्रति के साथ साथ इसके पाठों को अधिक प्रामाणिक माना गया है।

प्रादेशिकता के विचार से 'घ' प्रति को हम निश्चित रूप से भरतपुर का लिखा हुआ कह सकते हैं क्योंकि उसमें इस बात का निर्देश पाया जाता है। 'कवित्त रत्नाकर' की अधिकांश प्रतियाँ भरतपुर ही में पाई जाती हैं। इससे इस बात

का अनुमान दृढ़ हो जाता है कि भरतपुर राज्य से सेनापति का संबंध अवश्य रहा होगा और फलतः उन पर भरतपुर की भाषा का थोड़ा-बहुत प्रभाव पाया जाना भी स्वाभाविक ही है। किंतु फिर भी सेनापति की भाषा का मूल ढाँचा बुलंदशहर का ही होगा।

व्रजभाषा की अन्य हस्तलिखित प्रतियों के समान 'कवित्त रत्नाकर' की विभिन्न प्रतियों में भी एक ही शब्द कई रूपों में लिखा हुआ पाया जाता है। जहाँ एक स्थल पर शब्दों के एकारान्त तथा ओकारान्त रूप लिखे हुए हैं वहीं दूसरी जगह उन्हीं शब्दों के ऐकारान्त तथा औकारान्त रूप पाए जाते हैं। जैसे परसर्ग 'ते' तथा 'को' कहीं तो 'ते' तथा 'को' लिखे हुए मिलते हैं और कहीं 'तै' तथा 'कौ' के रूप मे पाए जाते हैं। सानुनासिक तथा निरनुनासिक रूपों की दृष्टि से ऐसे शब्दों के चार रूप मिलते हैं—'ते', 'तें', 'तै', 'तैं' तथा 'को', 'कों', 'कौ', 'कौं'। "ए-ओ के स्थान पर विशेष अर्द्ध-विवृत उच्चारण ऍ-ऑ, मथुरा, आगरा, धौलपुर के प्रदेशों में तथा एटा और बुलंदशहर के कुछ भागों में विशेष रूप से प्रचलित हैं। इन ध्वनियों के लिए पृथक् वर्णों के अभाव के कारण इन्हें प्रायः ऐ औ लिख दिया जाता था*।" इस विचार से प्रायः ऐकारान्त तथा औकारान्त रूप ही सेनापति द्वारा लिखित माने गए हैं और तदनुसार उन्हीं को मूल पाठ में दिया गया है। अनुनासिकता की प्रवृत्ति आज कल भी पश्चिमी व्रज की बोलचाल में पाई जाती है। इसी कारण शब्दों के सानुनासिक रूपों को भी यथास्थान सुरक्षित रक्खा गया है। 'कवित्त रत्नाकर' की प्राचीन प्रतियों में प्रयुक्त शब्दों की गणना करने पर भी हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर ही पहुँचते हैं। इसलिए साधारणतया शब्दों के सानुनासिक ऐकारान्त तथा औकारान्त रूपों को सेनापति द्वारा लिखित मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं जान पड़ती।

किंतु प्रतियों को ध्यान से देखने पर कुछ एकारान्त शब्दों के संबंध में थोड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। वाके, ताके, जाके आदि पुरुषवाची और संबंधवाची सर्वनाम, ऐसे, जैसे, तैसे आदि रीतिवाची क्रियाविशेषण तथा आगे, पीछे आदि कालवाची क्रियाविशेषण प्रायः अधिकांश प्रतियों में निरनु-

* देखिए डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत 'व्रजभाषा व्याकरण'।

नासिक एकारान्त रूपों में ही पाए जाते हैं। 'कवित्त रत्नाकर' में 'कैसे' लगभग २२ बार प्रयुक्त हुआ है। 'क' में यह १५ बार, 'ख' में १२ बार, 'ग' में १० बार तथा 'न' में १५ बार पाया जाता है। केवल 'घ' में इसके अधिकांश रूप ऐकार-प्रधान मिलते हैं। 'ऐसे', 'जैसे' तथा 'वाके', 'ताके' आदि तो प्रायः सभी प्रतियों में निरनुनासिक तथा एकारान्त रूपों में पाए जाते हैं। अतएव इनकी उपेक्षा करना समीचीन नहीं समझा गया। बहुत संभव है कि बुलंदशहर के पड़ोस के मेरठ आदि जिलों में बोली जाने वाली खड़ी बोली के प्रभाव के कारण कुछ शब्दों को एकारान्त रूपों में व्यवहृत किया जाने लगा हो। स्वयं 'कवित्त रत्नाकर' में ऐसे शब्द पाए जाते हैं जो खड़ी बोली के प्रभाव की सूचना देते हैं। दो-एक स्थलों को छोड़ कर प्रायः सर्वत्र ही 'पीछे' का प्रयोग पाया जाता है यद्यपि ब्रज-प्रदेश में यह 'पाछे', 'पाछैं' आदि रूपों में प्रयुक्त होता है। ब्रज के अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोऊ' के साथ साथ अनेक स्थलों पर खड़ी बोली के अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' का भीः प्रयोग पाया जाता है। बुलंदशहर गजेटियर के लेखक ने भी इस ओर संकेत किया है*। इन सब बातों पर विचार करने के बाद इन विशेष निरनुनासिक एकारान्त शब्दों को ज्यों का त्यों रख दिया गया है।

कुछ प्रतियों में अकारान्त शब्दों के स्थान पर उकारान्त तथा इकारान्त शब्दों का प्रयोग पाया जाता है यद्यपि दो-एक प्रतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें यह प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। जैसे 'क', 'ग' आदि में 'पंथु', 'ईठु', 'बरनु', 'लालु' 'नैंकु' तथा 'चालि', 'पियनि', 'आंखिनि' आदि का प्रयोग बहुतायत से मिलता है किंतु 'ख' तथा 'घ' आदि प्रतियों में इन्हें अधिकतर 'पंथ', 'ईठ', 'बरन', 'लाल', 'नैंक' तथा 'चाल', पियन', 'आंखिन' आदि रूपों में लिखा हुआ पाया जाता है।

---

* "The common speech of the people is the form of western Hindi known as Braj, although in the northern part of the district, as in Meerut, the ordinary Hindustani or Urdu is commonly spoken and everywhere the two forms are mixed. The proximity of Delhi must have had a considerable influence on the language of the district......"

(दे० बुलंदशहर गज़ेटियर, पृ० ७२)

वर्तमान समय में उकारान्त तथा इकारान्त रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति अलीगढ़ के आसपास के गाँवों में विशेष पाई जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से १७ वीं शताब्दी में इन रूपों का प्रचार कुछ अधिक अवश्य रहा होगा। किंतु संभवतः राज दरबार से संबंध रखने वाले कवि इस प्रवृत्ति से बचते होंगे। नागरिकों के लिए ग्रामीण उच्चारणों से बचना अत्यंत स्वाभाविक बात है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि ब्रजभाषा के किसी शब्द के ठेठ रूप का प्रयोग सब कवियों ने किया हो। अतएव "किन्हीं विशेष रूपों को विशुद्ध ब्रज मान कर समस्त लेखकों की कृतियों में एकरूपता कर देना, संपादन करना नहीं, बल्कि ग्रंथों को अपने मतानुसार शोध देना है" क्योंकि किसी "ग्रंथ के संपादन का उद्देश्य लेखक के मूल रूप को सुरक्षित करना है न कि उसकी भाषा को किसी कसौटी के अनुसार परिवर्तित कर देना *"। इस दृष्टि से 'कवित्त रत्नाकर' के मूल पाठ में शब्दों के अकारान्त रूपों को ही रक्खा गया है।

उकार तथा इकार की प्रवृत्ति कुछ अन्य शब्दों में भी पाई जाती है, किंतु वह उपर्लिखित प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न है। जैसे 'भाव', चाव', 'राव', 'पावक', 'पावस' तथा 'गाय', 'आय', 'भाय', 'नायक', 'रघुराय' आदि शब्दों के स्थान पर क्रमशः 'भाउ', 'चाउ', 'राउ', 'पाउक', 'पाउस' तथा 'गाइ', 'आइ', 'भाइ', 'नाइक', 'रघुराइ' आदि रूप ही अधिकतर पाए जाते हैं। बात यह है कि 'व' तथा 'य' संयुक्त स्वर हैं और क्रमशः 'उ+अ' तथा 'इ+अ' स्वरों के संयोग से बने हैं। इन ध्वनियों के पहले जहाँ कहीं आकार का प्रयोग पाया जाता है, वहाँ उच्चारण में कुछ कठिनाई उपस्थित हो जाती है। इसी कारण बोलचाल की ब्रजभाषा में प्रायः अन्तिम स्वर लुप्त हो गया था और 'भाउ', 'चाउ', 'राउ', 'पाउस' तथा 'गाइ', 'आइ', 'भाइ' आदि रूपों का चलन हो गया था। ऐसे शब्दों को यथास्थान सुरक्षित रक्खा गया है।

क्रियार्थक संज्ञा के संयोगात्मक रूप 'चलैं', 'पियैं', 'देखैं' इत्यादि प्रचुरता से पाए जाते हैं। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध मर्मज्ञ स्वर्गीय 'रत्नाकर' जी ने ऐसे समस्त शब्दों के सानुनासिक ऐकारान्त रूप ही प्रामाणिक माने हैं। 'कवित्त रत्नाकर' में तृतीया अथवा पंचमी के अर्थ में पाए जाने वाले ऐसे शब्द सानुनासिक तथा

* दे० डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत "ब्रजभाषा व्याकरण"।

ऐकारान्त रक्खे गए हैं। किंतु सप्तमी के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों के एकारान्त तथा निरनुनासिक रूप (जैसे चले, पिए, देखे इत्यादि) ही रक्खे गए हैं, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से इनके सानुनासिक ऐकारान्त रूप नहीं पाए जाते हैं।

प्राय: अधिकांश प्राचीन प्रतियों में 'कीन्हे', 'लीन्हे', 'दीन्हे' आदि शब्दों के महाप्राण अंश का लोप पाया जाता है अतएव इनके स्थान पर 'कीने', 'लीने', 'दीने' आदि रूपों को मूल पाठ में रक्खा गया है।

'कवित्त रत्नाकर' में कुछ स्थलों पर पूर्वी प्रयोग भी पाए जाते हैं। प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' के स्थान पर एक जगह 'कवन' पाया जाता है। संबंध कारक के चिह्न 'कौ' के स्थान पर दो छंदों में 'कर' का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 'सन' पंचमी के परसर्ग के रूप में प्रयुक्त मिलता है। किंतु ऐसे प्रयोग बहुत थोड़े हैं। ठेठ पछाँहीं लेखक की रचनाओं में ऐसे रूपों का पाया जाना थोड़ा आश्चर्यजनक तो है पर असंभव नहीं, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से ये प्रयोग अधिक प्राचीन हैं। जैसे 'कौन' की व्युत्पत्ति संस्कृत क: पुन: से इस प्रकार मानी जाती है*—सं० क: पुन:, प्रा० कवन, कवण, कोउण, हि० कौन। संभव है 'कवन' का प्रयोग सेनापति के समय में थोड़ा बहुत होता हो। जो हो, प्रतियों में इस प्रकार के पूर्वी प्रयोग कुछ स्थलों पर पाए जाते हैं और उन्हें यथास्थान रहने दिया गया है।

'गति' तथा 'यति' संबंधी दोषों को शोधने के बजाय प्रश्नवाचक चिह्न (?) लगा कर रख दिया गया है।

'कवित्त रत्नाकर' के कुछ छंद दो तरंगों में समान रूप से पाए जाते हैं। इस विषय में कोई हेर-फेर नहीं किया गया है क्योंकि स्वयं कवि ने उन छंदों को उस रूप में रक्खा है।

जो हो, बिना किसी आधार के ग्रंथ के किसी शब्द को अपनी ओर से परिवर्तित कर देने का दुःसाहस नहीं किया गया है।

उमाशंकर शुक्ल

---

* दे० डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत "हिन्दी भाषा का इतिहास" (पृ० २७०)।

कवित्त रत्नाकर

पहली तरंग

श्लेष वर्णन

(१)

परम जोति जाकी अनंत, रमि रही निरंतर।
आदि मध्य अरु अंत, गगन दस दिसि बहिरंतर॥
गुन पुरान इतिहास, बेद बंदीजन गावत।
धरत ध्यान अनवरत, पार ब्रह्मादि न पावत॥
सेनापति आनंद-घन[1], रिद्धि सिद्धि मंगल करन।
नाइक अनेक ब्रह्मण्ड कौं, एक राम संतत सरन॥

(२)

सुरतरु सार की सवाँरी है बिरंचि पचि[2],
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
रानी कमला कौं[3], पिय-आगम कहन हारी,
सुरसरि सखी, सुख दैनी प्रभु पाइ की॥
बेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन, भरत-सिर-मंडन, वे,
बंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की॥

---

[१] आनन्द निधि (ख)। [२] रचि (क); [३] के (क)।

(३)

पाई जो कबिन जल-थल जप-तप करि,
विद्या उर धरि, परिहरि रस रोसौ है।
ताही कबिताई कौं सुजस पसु[1] चाहत है,
सेनापति जानत जो अच्छर नओसौ[2] है॥
पाइ कै परस जाकौं सिलाहू[3] सचेत भई,
पायौ बोध-सार सारदाहू कौं, धरोसौ है।
और न भरोसौ, जिय परत खरोसौ, ताही
राम पद-पंकज कौं पूरन भरोसौ है॥

(४)

भूप-सभा-भूषन, छिपावौ पर दूषन कु-
बोल एक हू स्रवन, कहे न देह पाइ कै।
राज महा जानि, पूरे सकल कलानि, सेना-
पति गुन खानि और हू कौं गुन दाइकै॥
तुम ही बताई, कछू कीनी कबिताई, तामैं
होइ जोगताई[4], दुचिताई के सुभाइ कै।
बुद्धि के बिनाइकै, गुसाँईं! कबि नाइकै, सु
लीजियौ बनाइ कै कहत सिर नाइ कै॥

(५)

दीछित परसराम, दादौ है बिदित नाम,
जिन कीने जज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है।
गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौं,[5]
गंगा तीर बसत, अनूप जिन पाई है॥

---

[१] जस (ख); [२] सेनापति जानत न अच्छर जो ओसौ है (क) (ग) (घ); [३] सिलाऊ (क) (ग)। [४] भोगताई (ञ)। [५] जाकी (क) (ग)।

महा जानि मनि, बिद्यादान हू कौं चिंतामनि,
हीरामनि दीछित तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कबि कान दै सुनत कबिताई है॥

(६)

मूढ़न कौं अगम, सुगम एक ताकौं जाकी,
तीछन अमल बिधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि
देखे सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की॥
ज्ञान के निधान, छंद कोष सावधान, जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति कौं, सेनापति कबि सोई,
जाकी द्वै अरथ कबिताई निरवाह की॥

(७)

दोष सौं मलीन, गुन हीन कबिता है, तौ पै,
कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै।
बिन ही सिखाए, सब सीखिहैं सुमति जौ पै,
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूषन कौं करि कै, कबित्त बिन भूषन कौं,
जो करै प्रसिद्ध ऐसौ कौंन सुर मुनि है।
रामैं अरचत सेनापति चरचत दोऊ,
कबित रचत यातैं पद चुनि चुनि है॥

(८)

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं
बुध कबि के जो उपकंठ ही बसति हैं।
जोए पद मन कौं हरष उपजावति है
तजै को कनरसै[1] जो छंद सरसति हैं॥

---

[1] कोक नर सै (ख) (घ) कौक नरसै (ग)।

अच्छर हैं विशद[1] करति उषै आप सम
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है (?)।
मानौं छबि ताकी उद्‌वत सबिता की सेना-
पति कवि ताकी कबिताई बिलसति है॥

✓(९)

तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे
दूरि कौं[2] चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत बिबिध पक्ष सोहत हैं गुन संग
स्रवन मिलत मूल कीरति[3] उज्यारी के॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके
बेग बिधि[4] जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कबि के कबित्त बिलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के॥

✓(१०)

बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ[5]
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
राखौ मति ऊपर सरस[6] ऐसे साज कौं॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातैं सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौं।
लीजियौ बचाइ ज्यौं चुरावै नाहिं कोई सौंपी
बित्त की सी थाती मैं कबित्तन की राज कौं॥

---

[१] सरस (ख); [२] के (ज); [३] मूठ कीरति (ज); [४] भिदि (क) (ग) (घ); [५] मुहरै है जहाँ (घ); [६] अरथ (ख)।

(११)

ब्यापी देस देस बिस्व कीरति उज्यारी जाकी
सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर-नर-मुनि जाके[1] दरस कौं तरसत
राखत न खर तेजै कला की निकाई है॥
करन के जोर जीति लेत है निसा कलंकै[2]
सेवक हैं तारे[3] ताकी गनती न पाई है।
राजा रामचंद अरु पून्यौं कौं उदित चंद
सेनापति बरनी दुहू की समताई है॥

(१२)

सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है (?)।
जीवन अधार बड़ी गरज करन हार
तपति हरनहार देत मन काम है॥
सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति
पावत अधिक तन मन बिसराम है।
संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
आयौ[4] घनस्यामसखि[5] मानौं घनस्याम है॥

(१३)

लाह सौं लसति नग सोहत सिंगार हार
छाया सोन[6] जरद जुही की अति प्यारी है।
जाकी रमनीय रौस बाल है रसाल बनी
रूप माधुरी अनूप रंभाऊ निवारी है॥

---

[१] जाको (क) (ख) (ग); [२] निसांक लै कैं (घ); [३] एक कहै तारे (ज)। [४] जायो (क) (ग), [५] सखी (घ)। [६] छाया सी न (ज)।

जाति है सरस सेनापति बनमाली जाहि
सींचै घन रस फूल भरी[1] मैं निहारी है।
सोभा सब जोबन[2] की निधि है मृदुलता की
राजै नव नारी मानौं मदन की बारी है॥

(१४)

जाकी सुभ सूरति सुधारी[3] है सुहाग भाग
पूरी तौ लगै रसाल नाहै जब[4] दरसी।
जर बलै[5] चलै रती आगरी अनूप बानी
तोरा है अधिक जहाँ[6] बात नहिं करसी[7]॥
सेनापति सदा जामैं रूपौ है अधिक गुनौ
जाहि देखि नीधन की[8] छतियाँ हैं तरसी।
धनी के पधारै बाट काँटे हू मैं पाउँ धरि
यह बर नारि सुबरन की मुहर सी॥

(१५)

कौल की है पूरी[9] जाकी[10] दिन दिन बाढ़ै छवि
रंचक सरस नथ झलकति लोल है।
रहै परि यारी करि[11] संगर मैं दामिनी सी
धीरज निदान[12] जाहि बिछुरत को लहै॥
यह नव नारि साँची काम की सी तरवारि
अचरज एक मन आवत अतोल[13] है।
सेनापति बाहैं जब धारै तब बार बार
ज्यौं ज्यौं मुरि जात त्यौं त्यौं कहत अमोल है॥

---

[१] फली (ज); [२] पवन (ज)। [३] सवारी (ज); [४] नव (ज); [५] नर बल (ज); [६] जामैं (न); [७] बात न कसरसी (क) (ख) (ग) (घ) (ज); [८] देखै जाहिं नीधन की (ज)। [९] काम की है पूरी (ख), [१०] तामैं (ख), [११] परिवारी परि (ख) (घ); [१२] निधान (ख) तिदान (न)। [१३] अडोल (क) (ख) (घ)।

(१६)

जाकौं फेरि फेरि नारि सेनापति सब चाहैं
बनी नव तरुन के अंतर बसति है।
सब जी कौं नातौ ताहि डारै करि हातौ पाइ
हाथ करै लाल जो सनेह सरसति है॥
अंग संग काज टूक टूक ह्वै रहति सनी
सहज के रस रंग राचति लसति है[१]।
लता की निकाई जामैं नीकी बनि आई मिहीं[२]
मिहँदी की समता कौं प्यारी परसति है[३]॥

(१७)

पैयै भली घरी तन सुख सब गुन भरी
नूतन अनूप मिहीं रूप की निकाई है।
आछी चुनि आई कैयौ पैंचन सौं पाई प्यारी
ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यौं त्यौं मूड़हिं चढ़ाई है॥
पूरी गज गति बरदार है सरस अति
उपमा सुमति सेनापति बनि आई है।
प्रीति सौं बाँधै बनाइ राखै छवि थिरकाइ[४]
कामकी सी पाग बिधि कामिनी बनाई है॥

(१८)

लीने सुघराई संग सोहत ललित अंग
सुरत के काम के सुघर[५] ही बसति है।
गौरी नव रस राम करी है सरस सोहै
सूहे के परस कलियान सरसति है॥

---

[१] राजत लसत है (ख); [२] मिलि (न); [३] को वनिता करति है (न); [४] थिरभाइ (घ)। [५] सुघर (न)।

सेनापति जाके बाँके रूप उरझत मन[1]
बीना मैं मधुर नाद सुधा बरसति है।
गूजरी झनक[2] माँझ सुभग तनक हम
देखी एक बाला राग माला सी लसति है॥

(१९)

सोहति बहुत भाँति चीर सौं लपेटी सदा
जाकी मध्य दसा सो तौ मैंन कौं निधान है।
तम कौं न राखै सेनापति अति रोसन है
जा बिना न सूझै होत ब्याकुल जहान[3] है॥
परत पतंग मन मोहै तिन तरुन के
जोति है रदन होति सुरति निदान है।
पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है॥

(२०)

चाहत सकल जाहि रति कै[4] भ्रमर है जो
पुजवति हौंस उरबसी की बिसाल है।
भली विधि कीनी[5] रस भरी नव जोबनी है
सेनापति प्यारे बनमाली की रसाल है॥
धरति सुबास पूरे गुन कौं निबास अब
फूली सब अंग ऐसी कौंन कलिकाल है।
ज्यौं न कुम्हिलाइ कंठ लाइ उर लाइ लीजै
लाई नव बाल लाल मानौं फूल माल है॥

---

[१] सेनापति सदा जाके रूप उरझतु मन (न); [२] कनक (न)।
[३] सुजान (ख); [४] के (न); [५] कहै (न); नीकी (न)।

(२१)

केस रहैं भारे मित्र कर सौं सुधारे[1] तेरे
तोही माँझ पैयत मधुर अति रस है।
तपति बुझाइबे कौं हिय सियराइबे कौं
रंभा तैं सरस तेरे तन कौं परस है॥
आज धाम धाम पुरइन है कहायौ नाम
जाके बिहँसत मैलौ चंद कौं दरस है।
सेनापति प्यारी तैं ही भुवन की सोभा धारी
तू है पदमिनि तेरौ मुख तामरस है॥

(२२)

जहाँ[2] सुर सभा है[3] सुबास बसुधा कौं सार
जामैं लहियत ऐरापति हू की गति है।
पेखे उरबसी ऐसी और है सुकेसी देखी
दुति मैंनका हू की जो[4] हियरैं हरति है॥
सेनापति सची जाकी सोभा ना कही बनति
कलप लता बिना न कैसे हू रहति है।
जागरन कारी[5] जाके होत हैं बिहारी मैं नि-
हारी अमरावती सी भावती लसति[6] है॥

(२३)

पासे की निकाई सेनापति ना कही बनति
सोरहै नरद करि रदन[7] सुधारी हैं।
सोभा की बिसाति[8] चीरैं[9] धरति बहुत भाँति
चतुर है मुख गनि गनि डग धारी है॥

---

[1] केसर है भार मिस कर सौं सुधारे (न); [2] जामैं (ग); [3] दै (न); [4] ज्यौं (ख) (घ); [5] जागरत कारी (ख); [6] की सति (न); [7] रदन करि बदन (न); [8] तिसांति (न); [9] धोरी (ज)।

मार तैं बचाइ कोउ पाउ[1] विधि कीनौ जग
जाके बस परैं संत कहत[2] जुवारी है।
जीति[3] की है निधि धन हार कौं धरति मीठी[4]
नारि निहचै कै मानौं चौपर सवाँरी है॥

(२४)

प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन
मेरौ तन जात रूप तातैं निदरत हौ।
सेनापति पाइ परैं बिनती करैं हू तुम्हैं
देति न अधर ती जे[5] तहाँ कौं ढरत हौ॥
बाट मैं मिलाइ तारे तौल्यौं बहु विधि प्यारे
दीनौ है[6] सजीव आप तापर अरत हौ।
पीछे डारि अधमन हम[7] दीनौ दूनौ मन
तुम्हैं तुम नाथ इत पाउ न धरत हौ॥

(२५)

बिरह हुतासन बरत उर ताके रहै
बाल मही पर परी भूख न गहति है।
सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग
सून[8] सेज रत काम केलि कौं करति है॥
प्रानपति हेत गेह अंग न सुधारै जाके
घरी है बरस[9] तन मैं न सरसति है।
देखौ चतुराई सेनापति कविताई की जु
भोगिनी की सरि कौं वियोगिनी लहति है॥

---

[1] कौं उपाय (ख); [2] संइत (न); [3] जोति (ज); [4] पोढ़ी (ज) प्यारी (न); [5] जो (न); [6] दीनी है (न); [7] हमैं (क); [8] सूनी (ख) सूने (ज); [9] वासर (ज)।

(२६)

मोती मनि मानिक रतन करि पूरी धन
खरे भार भरी अनुकूल मन भाइहै।
जा घर बनिजु रहै ताही कौं सरस भाग
ह्वैहै सुखी सेनापति जब लछि पाइहै ॥
तुम पतियार ताके तुम ही करन धारौ
तौही बन वल्ली नीकी[1] लागि ठहराइहै।
मध्य रस सिंधु मानौं सिंहल तैं आई वह
तेरी आस नाउ[2] गुन गह्यौ तीर आइहै ॥

(२७)

देखत नई है गिरि छतियाँ रहे हैं कुच
निरखी निहारि आछे मुख मैं रदन हैं।
बरसनि सोरहै नवासी एक अगरी[3] है
मंद ही चलति भरी जोबन मदन हैं ॥
केस मानौं तूल चौंर झलकत वाके बीच
पट के कपोल सोभा धरन बदन है।
देखियत[4] सेनापति हरे लाल[5] चीर वारी
नारी बुढ़िया निदान बसति सदन हैं ॥

(२८)

मोती हैं दसन मनि मूँगा हैं अधर बर
नैंन इंद्रनील नख लाल बिलसत हैं।
मरकत ढंपन सौं कंचन कलस कुच
चरन पद्मराग सोभा सरसत हैं ॥

---

[१] कीनी (ख); [२] असना व (क) (ख) (ग) (घ); [३] आगरी (ख) (अ) (न); [४] देखि पति (ख); [५] हरि लीला (ख) हरि लाल (क)।

प्यारी कोठरी है धन जोबन जवाहिर की
तहाँ सेनापति चित जाइ[1] कै धसत हैं।
तासौं लगे तारे फ़ेरि तारी न लगति क्यौंहूँ
जाइ[2] बिधे मन[3] तेब कैसे निकसत हैं ॥

(२९)

औरै भयौ रुख तातैं कैसे सखी ज्यारी होति
बिफल भए हैं बंद कछू न बसाति है।
गोसे न मिलत कैसे तीर कौं सँजोग होत[4]
पहिली[5] नवनि लही[6] जाति कौंन भाँति है ॥
सेनापति लाल स्याम रंग चित चुभि रह्यौ
कैसे कै कठिन रितु पाउस बिहाति है।
आवति है लाज कर गहैं पंच लोगनि तैं
कान्ह फिरि गए ज्यौं कमान फिरि जाति है ॥

(३०)

सोए संग सब राती सीरक परति[7] छाती
पैयत रजाई नैंक आलिंगन कीने तैं।
उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई
सुथरी अधिक देह कुंदन नवीने तैं ॥
तन सुख रासि जाके तन के तनकौ छुवैं
सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं।
सब सीत हरन बसन कौं समाज प्यारी
सीत क्यौं न हरै उर अंतर के दीने तैं ॥

---

[१] चाइ (न); [२] जेइ (क) पाइ (न); [३] नैन (अ); [४] होइ (ख); [५] पछिली; [६] रही (ख); [७] सीकर परत (म)।

(३१)

अरुन अधर सोहै सकल बदन चंद
मंगल दरस बुध बुद्धि कै बिसाल है।
सेनापति जासौं. जुव जन सब जीवक[1] हैं
रबि अति मंद गति चलति रसाल है॥
तम है चिकुर केतु काम की बिजय निधि
जगत जगमगत जाके जोति[2] जाल है।
अंबर लसति भुगवति[3] सुख रासिन कौं
मेरे जान बाल नवग्रहन की माल है॥

(३२)

बदन सरोरुह के संग ही जनम जाकौं
अंजन सुरंग[4] समता न[5] परसत है।
महा रूखौ मुनि हू कौं हियौ चिकनाइ जात
सेनापति जाहि जब नैंक दरसत है॥
रूपहिं[6] बढ़ावै सब रसिकन भावै मीठौ
नेह उपजावै पै न आप बिनसत है।
आली बनमाली मन फूल मैं बसायौ तेरे
तिल है कपोल सो अमोल बिलसत है॥

(३३)

करन छुवत बीच है[7] कै जात कुंडल के
रंग मैं करैं कलोल काम के सुभट से।
चंचल समेत भुव अंबर मैं खेलत हैं
देखत ही बाँधैं डीठि रहैं चटमट से॥

---

[१] जीवत (छ); [२] जीति (ख); [३] भुगतति (क) (ख) (ग) (न); [४] चंदन सुगंध (ख); [५] समतन (न); [६] प्रेमहि (न); [७] कै (छ)।

उन्नत सगुन सुद्ध बंस देखि लागैं धाइ
केलि कला करैं चितै[1] मोहत निपट[2] से।
सेनापति प्रभु बरुनी के बस कीने प्यारी
नाचत ललन आगे नैंना तेरे नट से ॥

(३४)

औसरैं हमारे और बालै हिलि-मिलि रमैं
ईठ महा[3] ढीठ ऐसे कैसे कै निबहियै।
सेनापति बहुत अवधि बितै आयौ स्याम
समय है उराहने कौं कछू कह्यौ चहियै ॥
आदर दै राखे होति प्रगट अधीरताई
होति हित हाँनि जौ निदान जान कहियै।
याही तैं चतुर चतुराई सौं कहति मेरे
भूलि कै भवन भरतार जनि रहियै ॥

(३५)

केसौ अति बड़े जहाँ अरजुन पति काज
अति गति भली बिधि बाजी की सुधारी है।
मनी सौं करन बीर संग दुरजोधन के
संतनु तनै निहारि[4] सुरत्यौ बिसारी है ॥
सोहत सदा नकुल[5] को है सील सेनापति
देखियै सु भीमसैन अंग दुति भारी है।
जाके कहैं आदि सभा परबस परति सो
भारत की अनी किधौं बनी बर नारी है ॥

---

[१] चित (ख); [२] निकट (ग); [३] महो (ग); [४] न हारि (घ); [५] सदानुकूल (ख)।

(✓३६)

राख्यौ धरि लाल रंग रंगित ही अंबर मैं
परी अवगुन गाँठि जातैं[1] ठहरात है।
जोबन की रती सौं मिलाइ धर्यौ भली भाँति
काम की अगिनि हू सौं जरि न बुझात है॥
पति है अरगजा[2] की महिमा तैं सेनापति
यातैं अति रति सुख[3] नासि कै[4] सुहात है।
सुख कौं निधान मिलैं त्रिबिध जगत मान
मान उड़ि जात ज्यौं कपूर उड़ि जात है॥

(✓३७)

रहै अपसर ही की सोभा जो अनूप धरि
सुभग निकाई लीने[5] चतुर सुनारी है।
सेनापति ताके मन बालमैं रहैं जु एक[6]
मूरति जगत मैं न रतन सुधारी है[7]॥
देखैं प्रीति बाढ़ी और बाल छबि[8] डाढ़ी[9] सदा
सुभ गहनैं धरै सु अंग दुति भारी है।
लौंग सी लुगाई करि बानी छल गाई ताही
भाँति द्वै लगाई जिन भेद सौं बिचारी है॥

(✓३८)

सदा नंदी जाकौं आसा कर है बिराजमान[10]
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं॥

---

[१] तारे (ञ); [२] अगर जा (ख) (घ); [३] मुख (न); [४] नासुकै (ञ); [५] जानैं (घ); [६] रहै जु एक (घ) वसत एक (ञ) रहतु एकु (न); [७] मैं न रजन सुभारी है (छ); [८] छकि (न); [९] दाढ़ी (ख); [१०] विचार मान (ख)।

जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं।
जानि बिन कहैं जानि[1] सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव[2] कौं भेद छाँड़ि मन कौं॥

(✓३९)

जात है न खेयौ क्यौंहूँ[3] बल्ली न लगति नीकी
सोचत अधिक मन मूढ़ सब लोग कौं।
नदीन कौं नाथ[4] यातैं पैरत न बनै काहू
सेनापति राम बीर[5] करता असोग कौं॥
दीरघ उसास लेत अहि रहै भारी जहाँ
तिमिर है बिकट बतायौ पंथ जोग कौं।
कान्ह के अछत कुंज काम केलि आगर ही
तेई[6] बिन कान्ह भई सागर बियोग कौं॥

(✓४०)

नाहीं नाहीं करैं थोरी माँगे सब दैन कहैं
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली मापति की घटी[7] होति
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य
कन कन जोरैं दान पाठ[8] परिवार हैं।
सेनापति बचन की रचना बिचारौ जामैं
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं॥

---

[१] जामि (क) (ख) (ग) (घ); [२] बहुधा हू माधव (ख); [३] केहू (ख) (ज); [४] नाप (न'; [५] तीर (न); [६] जेई (क) (ख) (न); [७] घरी (क) (ख) (ग) (घ) (ज); [८] पाट (क) (ग) (न)।

(४१)

थोरौ कछू माँगे होत राखत न प्रान लगि
रूखे मन मौन ह्वै रहत रिस भरि हैं।
आपने[1] बसन देत जोरिबे की रति लेत
बितरत जात धन धरा ही मैं धरि हैं॥
जाँचत ही जाचक सौं प्रगट कहत तुम
चिंता मति करौ हम सो[2] असान[3] करिहैं।
बानी द्वै अरथ सेनापति की बिचारि देखौ
दाता अरु सूम दोऊ कीने सरवरि हैं[4]॥

(४२)

सब अंग थोरे थोरे बहुधा रतन जोरैं
राखैं मुख ऊपर हू जे न इतबार हैं।
नान्हें बोल बोलैं सभै[5] देखत न पट खोलैं
राज धन राखिबे कौं पाए अवतार हैं॥
जनम तैं कौहू जे न भरम तैं माँगे जात[6]
सत्तहीन आगे सदा राखत न कार हैं।
कामहिं न आवैं सेनापति कौं न भावैं दोऊ
खोजा अरु सूम सम कीने करतार हैं॥

(४३)

खेत के रहैया अति[7] अमल अरुन नैंन
ओर[8] के असील गुन ही के जे निकेत हैं।
जगत बिदित कलिकाल के करन हारे[9]
नाहिनै समर कहूँ बिजय समेत हैं॥

---

[1] आपनै (न) आपनो (छ); [2] सौं (ग) सो (घ) (न); [3] आसान (क) (ग) (न); [4] एक सरि है (न); [5] सभा (न); [6] मांगे जाते (क) (ख) (ग); [7] नित (न); [8] और (ख) (ञ); [9] हार (न) (ञ)।

सेनापति सुमति विचारि ऐसे साहिबन
भजौ परवीन जातैं[1] आस बस चेत हैं।
द्विजन कौं रोकि मनि कंचन गनिकै देत
रीझि देत[2] हाथी कौं सहज[3] बाजी देत हैं॥

(✓४४)

अमल अखंड चाउ रहै[4] आठ जामैं ऐसी
तेरी पूरी रती सौं छमासौ सुधरायौ[5] है।
नरजा मैं मिलै पलरा मैं देखि दूनौं सोई
सेनापति समुझि[6] विचारि कै बतायौ है॥
काहू मैं है घटि अरु काहू मैं अधिक झूँठौ[7]
तोमैं पूरौ चौकस समान मैं बतायौ[8] है।
तोलियत जासौं जगत कौं सुबरन रूपौ
सो बारहमासी तोरा तोहिं बनि आयौ है॥

(✓४५)

जनम कमीन[9] भौन बीर जुद्ध भीत रहैं
सेवन मैं सदा मन राखत सहेत[10] हैं।
लंगर के दाता अरु[11] भूखन कनक देत
एक[12] साधु मनैं बीस बिस्वा राखि लेत हैं॥
सेनापति सुमति समुझि करि सेवौ इनैं
एतौ जग जानै अवगुन के निकेत हैं।
दादनी की बेर जब देनी होत सौ की ठौर
बड़े हैं[13] निदान तब दोसै एक देत हैं॥

---

[१] जो तै (क) (ख) (छ); [२] दैत (क) (ग) (न); [३] सहन (न); [४] रहैं (क) (ग) (घ); [५] सुघरायौ (ख) (घ); [६] सुमति (ञ); [७] झूठो (छ); [८] जतायौ (न) (ञ); [९] जनम की मीन (ञ); [१०] सचेत (ख); [११] और (क); [१२] संत (न); [१३] भारी ह्वै (न)।

(४६)

गीतहिं सुनावैं तिलकन झलकावैं भुज
मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही।
बैसनव भेष भगतन की कमाई खाहिं
सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही॥
देखि कै लिबास नीची[१] सबन की नारि होति
मोहि कै बिकच[२] करैं मन धन ध्यान ही[३]।
सेनापति सुमति बिचारि देखौ भली भाँति
कलि के गुसाँईं मानौं माँगना समान ही॥

(४७)

मालै हठि लै कै भले जन ए बिसारैं[४] राज
भोग ही सौं काज रीति करैं न बरत की।
लेहिं कर मुद्रा देह बुरी यौं बनावैं छाँड़ि
निगम की संक अब लाज न रमत की॥
पाइ पकरावैं जो निदान करैं उपदेस
रास उतसव ही सौं केलि जनमत[५] की।
सेनापति निरखि बिचारि कै बताए देखौ[६]
कलि के गुसाँईं मानौं माँगना जगत की॥

(४८)

पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार
जहाँ मरि पापी होत सुरपुर पति है।
देखत ही जाकौ[७] भलौ घाट पहिचानियत
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है॥

---

[१] देखि ही लता सु नीची (न); [२] विकल (घ); [३] तन मन ध्यान ही (ञ); [४] विसारे (ख) (न); [५] जनमन (ञ); [६] निरषि विचारि देषै भली भाँति (न); [७] पाकौ (ख)।

बड़ी रज राखै जाकौं महा धीर[1] तरसत
सेनापति ठौर ठौर नीकीयै[2] बहति है ॥
पाप पतवारि के कतल करिबे कौं गंगा
पुन्य की असील तरवारि सी लसति है ॥

(४९)

तेरे भूखन हैं यातैं ह्वैहै न सुधार कछू (?)
बाढ़ैगौ त्रिबिध[3] ताप दुख ही सौं दहिहै ।
सेइ तू गुरू चरन[4] जीति काम हू कौं बल
बेद हू कौं पूँछि[5] तोसौं यहै तत्त कहिहै ॥
कुपथ कौं छाँड़ौ गहौ सुपथ कौं सेनापति
सिछा लेहु मानि जानि सदा सुख लहिहै ।
अच्युत अनंत कहि सात सात पुरीन कौं
करम करम लेह अमर ह्वै रहिहै ॥

(५०)

रजनी के समै बिन सीरक[6] न सोयौ जात
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है ।
रंगित सुबास राखैं भूपति रुचिर साल
सूरज की तपति किरनि तन ताई है ॥
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात परै
आँगन ही कल ज्यौं त्यौं अगिनि बराई है ।
ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है ॥

---

[१] महाधार (घ); [२] नीके ही (ज); [३] विविध; [४] सोई तव रुचि रन (त); [५] बुझि (ज); [६] सीकर (ज)।

(५१)

तीर तैं अधिक बारिधार निरधार महा
दारुन मकर चैन होत है[१] नदीन कौं।
होति है करक अति बड़ी न सिराति राति
तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं ॥
सीरक अधिक चारि ओर अवनी रहै न
पाँउरीन बिना क्योंहूँ[२] बनत धनीन कौं ॥
सेनापति बरनी हैं बरषा सिसिर रितु
मूढ़न कौं अगम सुगम परबीन कौं ॥

(५२)

नारी नेह[३] भरी कर हियै है तपति खरी
जाकौं आध घरी बीतैं बरख हजार से।
उठत भभूके उर डारत[४] गुलाब हू के
नवल बधू के अंग तचत अँगार से ॥
सीरी जानि[५] छाती धरी बाल के कमल माल
सेनापति जाके दल सीतल तुषार से।
लागत न बार[६] बिन हरि के बिहार ताही
हार के सरोज सूकि होत हैं सुहार से ॥

(५३)

देखैं छित अंबर जलै है चारि ओर छोर
तिन तरवर सब ही कौं रूप हर्यौ है।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै
जलद पवन तन सेक मानौं पर्यौ है ॥

---

[१] परत (ज); [२] केहू (ज); [३] तेह (त); [४] तन मारत (न); [५] जाति (क) (छ); [६] वारि (क) (ग) (क)।

दारुन तरनि[१] तरैं नदी सुख पावैं सब
　　　　सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धर्यौ है।
देखौ चतुराई सेनापति कविताई की जु[२]
　　　　ग्रीषम विषम बरषा की सम कर्यौ है॥

(५४)

द्विजन की जामैं मरजाद छूटि जाति भेष[३]
　　　　पहिले बरन कौं न तनकौ निदान है।
अंग छबि लीन स्रुति[४] धुनि सुनियै न मुख[५]
　　　　लागी अब लार है न नाक हू कौं ज्ञान है॥
देखियै जवन सोभा घनी[६] जुगलीन माँझ[७]
　　　　नाम हू सौं[८] नातौ कृष्ण केसौ कौं जहाँ न है[९]।
सेनापति जामैं[१०] जग आसा ही सौं भटकत
　　　　याही तैं बुढ़ापौ कलिकाल के[११] समान है॥

(५५)

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि
　　　　भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं[१२]
　　　　बिसद बरन जाकी सुधा सम बानी है॥
भुवपति रूप देह धारी पुत्र सील हरि
　　　　आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी
　　　　राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है॥

[१] तरुनि (ग); [२] सु (ग); [३] भेद (ग); [४] गति (ग); [५] कहू (ग); [६] भली (ग); [७] मांझ (क) (ग); [८] को (ग); [९] को जहान है (क) (ख) (ग); [१०] यामें (ग); [११] कौ (क) (ख) (ग); [१२] कीनो है औ उतारन को (क)।

(✓५६)

सूर बली बीर[1] जसुमति कौं उज्यारौ लाल
चित्त कौं करत चैन बैनहिं सुनाइ कै।
सेनापति सदा सुर मनी कौं बसीकरन
पूरन करयौ है काम सब कौं सहाइ कै॥
नगन सघन धरै गाइन कौं सुख करै
ऐसौ तैं अचल[2] छत्र धरयौ है उचाइ[3] कै॥
नीके निज ब्रज गिरिधर जिमि महाराज
राख्यौ है मुसलमान धार तैं बचाइ कै॥

(✓५७)

बानरन[4] राखै तोरि डारत है अरि लंकै
जाके बीर लछन बिराजत निदान है।
अंगद कौं राखै बाहु दूरि करै दूषन[5] कौं
हरि सभा राजै राज तेज कौं निधान है॥
आनंद[6] मगन दृग देखि जाहि सियरानी
सेनापति जाके हेम नगर कौं दान है।
महा बली बीर बसुदेव कौं कुँवर कान्ह
सो तौ मेरे जान राजा राम के समान है[7]॥

(✓५८)

दिन दिन उदै जाकौं[8] जातैं हैं मुदित मन
देखियै निसान[9] जाके आए अति चाइ कै।
सूर कै बखानैं जाहि सब कौं कहैं सनेही
बैरी महातम जातैं जात है बिलाइ कै॥

---

[१] बलबीर (घ, (ञ) (त); [२] अखिल; [३] बनाय (त); [४] बानर न (ख); [५] दुखन (त); [६] आगन (ख); [७] सो तौ जानि राज रामचन्द्र के समान हैं (ख); [८] जाकी (ञ); [९] निदान (त)।

सूरति सरस सब बार है लसति जाकी
सेनापति जो है पदमिनी सुखदाइकै।
पूत दसरथ कौं सपूत रघुबीर धीर
देख्यौ राजा राम बली मानौं दिन-नाइकै ॥

(५९)

भरयौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत है।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ
भौंरी देखि होत अलि आनंद अनंत है ॥
नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब
सजी तेल ताई चैन मैंन मयमंत है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
बनी दुलहिन बनी[१] दूलह बसंत है ॥

(६०)

तब की तिहारी हँसि हिलनि मिलनि वह
देखि जिय जानी हरि बस करि पाए हौ।
सेनापति अधिक अयानी मैं[२] न जानी तुम
जेंवत ही वाके अँचवत ही पराए हौ ॥
बीते औधि आरत त्रियान कौं बिसारत हौ
धारत न पाउँ बेग कहौ कित छाए हौ।
पहिले तौ मन मोहौ पीछे कर तन मोहौ
प्यारे तुम साँचे मनमोहन कहाए हौ ॥

---

[१] बना (ख) (घ) बन्यो (न); [२] मैं (क) (ख) (ग) (घ) (न)।

(६१)

जीतत कपोल कौं तिलोत्तमैं अनूप रूप
बात बात ही मैं मंजु घोषै बरसति है।
देखी उरबसी मैंनका हू मैं सरस दुति
जंघ जुग सोभा रंभा हू कौं निदरति है॥
सची बिधि ऐसी और कहौ धौं सु कैसी नारि[1]
सदा हरि भावते की रति कौं करति है।
जाके है[2] अधर सुधा सेनापति बसुधा मैं
प्यारी सुरपुर हू के सुख बरसति[3] है॥

(६२)

अधर कौं रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं
सेनापति रूप सुधाकर तैं सरस है।
जे बहुत धन[4] के हरन हारे मन के हैं
हीतल मैं राखे सुख सीतल परस है॥
आवत जिनके[5] अति गजराज गति पावै
मंगल है सोभा गुरु[6] सुंदर दरस है।
और है न रस ऐसौ सुनि सखी साँची कहौं
मोतिन[7] के देखिबे कौं जैसौ कछू रस है॥

(६३)

राधिका के उर बढ़यौ कान्ह[8] कौं बिरह ताप
कीने उपचार पै न होति सितलाइयै[9]।
गुरु जन देखि कही सखिन सौं मन मैं की
सेनापति करी है बचन चतुराइयै॥

---

[१] सारी (न); [२] हैं (क) (ख) (ग); [३] परसति (न); [४] मन (ख) हरत हरि मन (क); [५] ही जाके (ज); [६] गुन (न); [७] मीतन (छ); [८] काम (त); [९] सितलाई है (ख) (त)।

माधव के बिछुरे तैं पल न परति कल
परी है तपति अति[1] मानौं तन ताइयै।
सौंह वृख भांन की न रहै तो जरनि कछू[2]
छाया घनस्याम की जो पूरे पुन्न पाइयै॥

(६४)

तेरे उर लागिबे कौं लाल तरसत महा
रूप गुन बाँध्यौ तू न ताकौं उमहति है।
यह सुनि बाल जौ लौं ऊतर कौं देइ[3] तौ लौं
आइ परी सास बात कैसे निबहति है॥
रूखी जौ कहति तौ तौ प्रीति न रहत जौब
नेह की कहति[4] सास डाटनि दहति है[5]।
सेनापति यातैं चतुराई सौं कहति बलि
हार करौं ताहि जाहि लाल तू कहति है॥

(६५)

बिरह बिहाल उपचार तैं न बोलै बाल
बोली जो बुलाई, नाम कान्ह कौं सुनाइ कै।
याही तैं सकानी सास ननद जिठानी तिनैं
देखि कै लजानी सोचि रही सिर नाइ कै॥
मेट्यौ है कलंक बे[6] निसंक गुरु जन कीने
राख्यौ हरि नेह बात यौं कही बनाइ कै।
को है? कित आई? सेनापति न बसाई सखी
कान्ह कान्ह करि कल कान[7] कीनी आइ कै॥

---

[१] तन (ख); [२] न रहैगी तपति कछू (न); [३] देति (ज) ऊतरु न देइ (ख); [४] जो सनेह की कहै तो (न); [५] डाटति डहति है (क) (ग) (घ) (न); [६] वे (न) के (ज); [७] कुलकानि (त) कलकानि (ख)।

(✓६६)

कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई (?)
पी रहै दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग[१] हम एक रति जोग[२]
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं॥
कूबरी यौं[३] कल पैहै हम इहाँ कल पैहैं
सेनापति स्यामैं समुझै[४] यौं परबीने हैं।
हम वे समान ऊधौ कहौ कौंन कारन तैं
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं॥

(✓६७)

देखत न पीछे कौं निकासि[५] कैयौ कोसन तैं
लै कै करवाल बाग लेत बिलसत हैं।
साहस की ठौर भीर परे तैं सिर कटाहैं[६]
सकतिन हू सौं लरिकानि कौं तजत हैं॥
राखत नगारौ रज पूरे रहैं[७] समर मैं
सदा कर[८] करैं सरन कौं जे तकत हैं[९]।
सेनापति बीर सौं लरत हाथ जोरत हैं
तातैं[१०] सूर कातर समान से लगत हैं॥

(✓६८)

कोट गढ़ गिरि ढाहैं जिनकौं[११] दुरग ना हैं
बल की अधिक छबि आरवी[१२] सहित हैं।
देखियै जिन मैं सदा गति अति मंद भारी
मानौं ते जलद ते जकरि राखे नित हैं॥

---

[१] भोग (क) (ख); [२] भोग (ख); [३] जो (ञ); [४] समुहयों (क) (ग); [५] निकसि (ञ); [६] काटा है (ञ); [७] रज रौर हैं (ख) पूरौ रहै (क) (ग) (घ); [८] सर (ख); [९] सर कों न जे तजत हैं (ख) कर करे जे शरन को भजत है (ञ); [१०] यातैं (ख); [११] जिन क्यों (क) (ग); [१२] अरवी (क) (न)।

डगनि[1] चलत महा करिनी के बस राखे
सब कहूँ सिंधुर हैं दरद[2] रहित हैं।
सेनापति बरने हैं महाराज राम जू कै[3]
हाथी हैं सुधारे असवारी के[4] उचित हैं॥

(✓६९)

पूरत हैं कामैं सत्यभामा[5] सुख सागर हैं
पारिजात हू कौं जीति लेत जोर कर के।
सदा सुख सोहैं सेनापति बल[6] वीर धीर
राखत विजय बाजी मध्य जो समर के॥
रूप है अनूप सुर मनी[7] कौं बसीकरन
जाकौं बैन सुनें चैन होत नर वर के।
नंदन नरिंद दसरथ जू कौं रामचंद
ताके गुन मानौं वसुदेव के कुँवर के॥

(✓७०)

बीरैं खाइ रही तातैं सोहति रकतमुखी
नाँगी है नची है संक तजि अरि भीर की।
निरवारैं बारन बिसारैं पुनि हार हू कौं
आड़[8] हू भुलावैं नख-सिख भरी नीर की[9]॥
सेनापति पियन कौं राखैं सावधान धार
आगें ही चलावैं[10] बात जानि जो सरीर की[11]।
जा पर परति ताहि[12] लाल करि डारैं मारि
खेलति समर फाग तेग रघुबीर की॥

[1] गडनि (क) (ग) (घ) (ल) (न); [2] दादर (क); [3] के (क) (ख) (ग) (ङ) (न) (न); [4] कौं (ग); [5] सतभामैं (ज); [6] रन (ख); [7] मीन (ग); [8] आड (ख); [9] भरी नख सिख नीर की (न); [10] चुलावैं (न); [11] जन घात जो सरीर की (ग); [12] जाम (न)।

(७१)

बड़े पै त्रिभंगी रस हू मैं जे न सूधे होत
सहज की स्यामताई सुंदर लहत[१] हैं।
सेनापति सिर धरि लेए लाज[२] छाँड़ि तातैं
रूखे गुरुजन बैन रूखेई कहत हैं॥
हरि कौं सुनाइ कहै सखी सौं हरिन-नैंनी
कान चतुराई परे कान्ह उमहत हैं[३]।
और की कहा है[४] सुमन के नेह चिकनाए[५] (?)
मेरे प्रानप्यारे केसौ रूखे से रहत हैं॥

(७२)

घर के रहत० जाके सेनापति पैयै सुख
जातैं होत प्रान समाधान[६] भली भाँति है।
जाकी सुभ गति देखे मानियै परम रति
नैंक बिन बोले सुधि बुधि अकुलाति है॥
देखत ही देखत बिलानी आगे आँखिन के
कर गहि राखी सो न क्यौंहू[७] ठहराति है।
रस दै कै राखी सरबस जानि बार बार
नारी गई छूटि जैसे नारी छूटि जाति है॥

(७३)

जाकी जोति पाइ जग रहत जगमगाइ
पाइन पदमिनी समूह परसत[८] है।
जाके देखैं अंतर कमल बिगसत चैन
पाइ कै खुलत नैंन सुख सरसत[९] है॥

---

[१] लसत (ज); [२] लाल (त); [३] कान चिकनाई परे क्यों न उमहत है (ज); [४] और की कहाई (ख) और की कहा ही (घ) और की कहा हीसु (क) (ग); [५] सब मन कीनें चिकनाए (ख); [६] सावधान (ख) (त); [७] केहू (ज); [८] सरसत (ख) (ज); [९] विकसत (ज)।

धाम की है निधि जाके आगे चंद मंद दुति
रूप है अनूप मध्य अंबर लसत है।
मूरति सरस सब बार है लसति जाकी
सोई मित्त सेनापति चित्त मैं बसत है॥

(७४)

तारन की जोति जाहि मिले पै बिमल होति
जाके पाइ संग मैं न दीप सरसत है[1]।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध
सोउ[2] तही मध्य जाके जगतै[3] रहत है॥
कामना लहत द्विज कौसिक सरब बिधि
सज्जन भजत महातम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कबिताई की जु
हरि रबि अरुन तमी कौं बरनत है॥

(७५)

प्रबल प्रताप दीप सात हू[4] तपत जाकौं
तीनि लोक तिमिर के[5] दलन दलत है[6]।
देखत अनूप सेनापति राम रूप[7] रबि
सबै अभिलाष जाहि देखत फलत है॥
ताही उर धारौ दुरजन[8] कौं बिसारौ नीच
थोरौ धन पाइ महा तुच्छ उछलत है।
सब बिधि पूरौ सुरवर सभा रूरौ यह
दिनकर सूरौ उतराइ न चलत है॥

---

[१] मैन दीपक रसत है (घ) मैं न दीपक रहत है (ख) नदी न परसत हैं (छ); [२] सोऊ (घ); [३] जगतु (न); [४] सातौ दीप हू (न); [५] तमन के (ख); [६] दल निदरत है (ख); [७] कर (ख) रास रूप (न); [८] पुरजन (क) (ग)।

(७६)

तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहसगुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै॥
सेनापति सदा बड़ी[1] साहिबी अचल तेरी
निसि-दिन चंद चल जगत बखानियै।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
तेरी समता कौं चंद कैसे मन[2] आनियै॥

(७७)

अँखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम
रोम सरसाती तन सरस[3] परस ते।
रावरे अधीन तुम बिन अति दीन हम
नीर हीन मीन जिमि[4] काहे कौं तरसते॥
सेनापति जीवन अधार निरधार तुम
जहाँ कौं ढरत तहाँ टूटत अरस ते।
उनै उनै गरजि गरजि आए घनस्याम
है कै बरसाऊ एक बार तौ बरसते॥

(७८)

पर कर परै यातैं[5] पाती तौ न दीनी लाल
कीनी मनुहारि सो सभा मैं कत भाखियै।
बानी सुनि दूती की जिठानी तैं सकानी बाल[6]
सोचि रही ऊतर उचित कौंन आखियै॥

---

[१] एक (ञ); [२] उर (त); [३] दरस (ख); [४] जल बिन मीन हम (म); [५] परैया ते (ञ); [६] सकानी ते न जानी बाल (ख)।

सेनापति तौहीं[1] परबीन बोली बीन जिमि
दुहुन की संक सब दूरि करि नाखियै[2] ।
पाती पाती कहै कोऊ[3] लावै जो कहूँ की पाती
दै कै सिरपाउ तौ हरा मैं बाँधि राखियै ॥

(७९)

कीने नारि नीचे बैठी नारी गुरुजन बीच
आयौ है सँदेसौ तौहीं[4] रसिक रसाल कौं ।
सेनापति देखत ही जानि सब जानि गई
कह्यौ पर ऊतर[5] उचित ततकाल कौं ॥
होइ ज्यौं सरस काम फ़ीकौ[6] है कनक धाम[7]
देहुँ तोहि कुंदन जो माल[8] है बिसाल कौं ।
बोलि कै सुनारी भावते कौं तेरी बलिहारी
चोकी[9] मेरी देह तू सँजोग कोई लाल कौं ॥

(८०)

जेती बन बेली और तिनकी न कीजै दौर
राखु मन एक ठौर नीकै करि बस मैं ।
देखि कै गुराई चिकनाई बार बार भूलि
मति ललचाहि धीरता ही कौं अब समैं ॥
सेनापति स्याम रंग सेइ कै सुखित ह्वैहै
कह्यौ है उपाइ समुझाइ कै सरस मैं ।
पीरे पान खाइ नीरैं चूकि कै न जाइ मान
खई मिटि जाइगी अरूसे ही के रस मैं ॥

---

[१] त्यौंही (ख); [२] राखियै (क) (छ); [३] कोहू (क) (ख). (ग) (छ) (न); [४] त्यौही (ञ) तोहि (ख); [५] मति ऊतरु (ञ); [६] की को (क); [७] सहस काम (न); [८] मोल (ञ); [९] चौकी (ख) (घ) (ञ) ।

(८१)

मोती माल[1] पोहत ही सखिन मैं सोहत ही
मोहत ही मन मृग-नैंनी हाइ भाइ कै।
आयौ है अचानक तहाँई कान्ह बानक सौं
प्यारी रस बस भई निरखत चाइ कै॥
सेनापति चातुर सखी के मिस आतुर ह्वै
आप ही कहति ताहि बचन सुनाइ कै।
हित करि चित दै कै मोतियै परखि लै कै[2]
आज लाल रेसमैं सफल करु[3] आइ कै॥

(८२)

छूटे आवै काज भिन्न करत सँजोए साज
अवगुन गहै नेह रूप सरसात है।
तीछन करयौ है जातैं होति पति जीति करै
लाल उर लागे अरि गात सियरात है॥
सेनापति बरने समान करि दोऊ तिनैं
जानत हैं जान जाके ज्ञान अवदात है।
निसान कौं पाइ परै धन ही के अंतर तैं
छूटि जात मान जैसे[4] बान छूटि जात है॥

(८३)

आनंद कौं कंद मुख तेरौ ता समान चंद
कैसे करि कीजियै कलेस नाम[5] धारी है।
आठ हू पहर कर तेरे ताप-हर कंज
बिस कौं प्रसून कैसे होत अनुकारी[6] है॥

---

[1] लाल; [2] परखिवै कै (क) (ग); [3] करि (ख) (ग);
[4] तैसे (ख); [5] मान (ख); [६] अलिकारी (ख)।

तेरी सुखदाई देह जोति की न सम होति
केसरि सरिस कहियत कष्टवारी है।
सेनापति प्रभु प्रानप्यारी तू अनूप नारी
तेरी उपमा की भाँति जाति न बिचारी है॥

(८४)

हरि न है संग बैठी जोबन जुगारति है
तिन ही कौं मन बच क्रम उमहति है।
जाकौं मन अनुराग बस ह्वै कै रह्यौ मधु
बड़े-बड़े लोचननि चंचल[1] चहति है॥
सेनापति बार बार खेलत सिकार तहाँ
मदन महीप तातैं सुख न लहति है।
कुंज कुंज छाँह तन तपति बरावति है
हरिनी ज्यौं ब्रज की बिरहिनी रहति है॥

(८५)

प्यारौ परदेस जाके नीकी मसि भीजति है
अंजन की सोभा के समूह सरसत हैं।
कंत कौं मिले तैं कल मन कौं करति[2] ऐसी
प्यारी है सदन अंग बिरह तपत हैं॥
सेनापति काम हू की बार है खरी भुलाई[3]
बावरे से भूले मन दंपति रहत हैं।
पानहिं[4] न लेत कर दोऊ अदभुत कर
कैसे धौं परसपर पाती कौं लिखत हैं॥

---

[१] लोचन निवंचल (क) (छ) लोचननि वंचल (ग) (घ); [२] परत (ज); [३] वार मुह परी लाइ (ज); [४] पान हू (ख)।

(८६)

कमलै न आदरत रागै[1] अरुन धरत
चित्त कौं बस करत[2] फूलन मैं न रमैं।
लै चलैं परमहंस गति महा उर राचैं
जो हरि सौं मिलि रहैं आठ हू पहर मैं॥
करत सफल सब जीवन जनम जग
जिनके प्रसंग सुख पावैं सुरतरु मैं।
सेनापति बरने हैं प्यारी के चरन जुग
ताकी सब भाँति पाई[3] जाति मुनि बर मैं॥

(८७)

मिलत ही जाके बढ़ि जात घर मैंन चैन
तन कौं बसन डारियत बगराइ कै।
आवत ही जाके नीकौ चंद न लगत प्यारी
छाया लोचन[4] की चाहियत सुखदाइ कै॥
जाही के अरुन कर पाइ अब नित पति[5]
सुखित सरस जाके[6] संगम कौं पाइ कै।
ग्रीषम की रितु बर बधू की समान करी
सेनापति बचन की रचना बनाइ कै॥

(८८)

निरखत रूप हरि लेत गद ही कौं सब
सूल है सु नीकौ कछू कह्यौ न परत है।
अंगना सरूप यातैं भावति जो नाहैं नारि
जोवत ही जाकौं मुख सो मन वरत है॥

---

[१] कमलै न आदर परागै (ज); [२] वस करन (त); [३] पाइ (क) (ख) (ग) [४] जोवनी (ज); [५] प्रति (क) (ख) (ग) (घ); [६] ताके (ख)।

चित मैंन आवै नैंक सरस[1] कौं देखत ही
तन तरुनापौ[2] देखैं चित उत रत है।
सेनापति प्यारी कौं बखानी कै कुप्यारी हू कौं
बचन के पेच पटतर ही करत है॥

(८९)

कल है करति सब द्यौस निसाकर मुखी
पन ही कौं पाइ कै सुधाई[3] पकरति है।
देखत ही भावै नर मन कौं अब निकाई
करति न कबहूँ जो हिय मैं अरति है॥
निरखत सोभा नारि है न एक काम हू की
धनी सौं बहसि दौरि लागियै रहति है।
सेनापति कहै अचरज के बचन देखौ
भावती की सेज[4] अन भावती करति है॥

(९०)

घर तैं निकसि करि मार गहि मारत हैं
मन मैं निडर बन तीरथ करत हैं।
संतन के पैंडे परैं कुसै लै सदा ही चलैं
पर धन हरिबे कौं साध न करत हैं॥
नागा करमन कौं[5] करत दुरि छिपि पीछे
हरि मैं परत कै वे सूली[6] मैं परत हैं।
सेनापति धुनि महा सिद्ध मुनि जैस कर
ताहि सुनि तसकर त्रासन मरत हैं॥

---

[१] परस (क) (ख) (ग) (घ); [२] तनु नापौ (ख); [३] सुधाम (ख); [४] सेघ (ग) (छ) सेव (ज); [५] वरमन कों (ख); [६] वसूली (ख) (घ)।

(९१)

रैनि ही के बीच पाँउ धरि लाल रंग भरि
होति जो कहनि महा रति रस डौर की[१] ।
सोभा परि नैंन कौं बनाइ कर गहैं आइ
जो मुँह लगाई है भुलाई सुधि और की ।।
चीर है कुसुंभी बर बागौ सुधरत जातैं[२]
सदा सुख संगिनी रसिक सिर मौर की ।
बरनि कै प्यारी पन[३] रत है बताई कबि
सेनापति मति कौं सराहै कौंन दौर की ।।

(९२)

आप ईस सैल ही मैं अलकैं बहुत भाँति
राखत बसाइ उत मानत सुरति हौ ।
धनि हैं वे लोक आसा पालत जिनकी तुम
संतत रहत तजे दच्छिन की गति हौ ।।
सेनापति ईठ है न एक सी तिहारी डीठि
निरखत सब ही कौं लाल ह्वै[४] जुगति हौ ।
धरौ निधि नील बास उत्तर सुधारत हौ
आए हौ कुबेर जु बहुत धनपति हौ ।।

(९३)

तजत न गाँठि जे अनेक परबन[५] भरे
आगें पीछे और और रस सरसात हैं ।
गढ़ि गढ़ि छोलैं भली भाँति बोलैं आदर सौं
तपति हरन हिय[६] बीच सियरात हैं ।।

---

[१] महा सुरति के डौर की (क) हरि सुरति के डौर की (ज); [२] तातें (ख); [३] पर (ख.; [४] है (क); [५] पुखन (ज); [६] जिय (ख) ।

सेनापति जगत बखाने जे रसाल उर
बाढ़े पित्त कोप जिन तैं न ठहरात हैं।
मानहु पियूष बाढ़ै स्रवन की भूख माह
पूख कैसे ऊख बोल रावरे मिठात हैं॥

(९४)

छतियाँ सकुच वाकी[1] को कहै समान तातैं[2]
न रन तैं मुरै सदा बीर है करन मैं।
सबै भाँति पन करि बलमहिं पाग राखै[3]
तेज की सुने तैं आप मानै मान खन[4] मैं॥
अबला लै अंक भरै रति जो निदान करै
ससि सन सोभावंत मानियै जोधन मैं।
जुगति बिचारि सेनापति है बरनि कहै
बर नर[5] नारि[6] दोऊ एक ही बचन मैं॥

(९५)

मैलन घटावै महा तिमिर मिटावै सुभ
डीठि कौं बढ़ावै चारि बेदन बतायौ है।
सन्यौ घनसार सम सीतल सलिल रस
सेनापति पुरबिले पुन्यन ही पायौ है॥
कैसे मन आवै अचरज उपजावै बीच
फूलै सरसावै पीत बसन धरायौ है।
भव भय भंजन निरंजन के देखिबे कौं
गंगा जू कौं मंजन सु अंजन बनायौ[7] है॥

---

[१] ताकी (ख) (घ); [२] छतिया सकुच ताते को कहै समान ताकी (ञ); [३] बलमैं पग हिं राषै (क) [४] पन (ख); [५] वरनत (क) (ख) (ग) (घ) (छ); [६] नाग (त) [७] वतायौ (ख)।

(९६)

जाके रोजनामे सेस[1] सहस बदन पढ़ै
पावत न पार जऊ सागर सुमति कौं।
कोई महाजन ताकी सरि कौं न पूजै नभ
जल थल व्यापि रहै अद्भुत गति कौं॥
एक एक पुर पीछे अगनित कोठा तहाँ
पहुँचत आप संग साथी न सुरति[2] कौं।
बानियै बखानैं जाकी हुंडी न फिरति सोई
नाहु सिय रानी जू कौं साहु सेनापति कौं॥

[इति श्लेष वर्णनम]

---

[१] रोज न मैं ससु (क) (ग) (घ); [२] सुमति (घ)।

दूसरी तरंग

शृंगार वर्णन

(१)

अंजन सुरंग[1] जीते खंजन, कुरंग, मीन,
नैंक न कमल उपमा कौं नियरात है।
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे, प्यारे,
ज्यौं ज्यौं मैं[2] निहारे त्यौं त्यौं खरौ ललचात है॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥

(२)

करत कलोल[3] स्रुति, दीरघ, अमोल, लोल,
छुवैं दृग-छोर, छबि पावत तरौना हैं।
नाहिंनैं समान, उपमान और[4] सेनापति,
छाया कछू धरत चकित मृग-छौना हैं॥
स्याम हैं बरन, ज्ञान-ध्यान के हरन, मानौं
सूरति कौं धरे[5] बसीकरन के टोना हैं।
मोहत हैं करि सैन, चैन के परम ऐन,
प्यारी तेरे नैंन मेरे मन के खिलौना हैं॥

---

[१] तरंग (छ); [२] ज्यों ही ज्यों (ज); [३] करतल लोल (ख);
[४] आन (ज); [५] मूरति ज्यों धरे (ज)।

(३)

चंचल, चकित, चल, अंचल मैं झलकति,
दुरे नव नेह की निसानी प्रानपिय की।
मदन की हेति[१], डारै ज्ञान हू के कन रेति,
मोहे मन लेति, कहे देति बात हिय की ॥
पैनी, तिरछौहीं, प्रीति-रीति ललचौहीं, कुल-
कानि सकुचौहीं, सेनापति प्यारी जिय की।
नैंक अरसौहीं, प्रेम-रस बरसौहीं, चुभी
चित मैं हँसौहीं, चितवनि ताही तिय[२] की ॥

(४)

काम की कमान तेरी भृकुटी कुटिल आली,
तातैं अति तीछन ए तीर से चलत[३] हैं।
घूँघट की ओट कोट, करि कै कसाई काम,
मारे बिन काम, कामी केते ससकत हैं ॥
तोरे तैं न टूटैं, ए निकासे हू तैं निकसैं न[४],
पैने निसि-बासर करेजे कसकत हैं।
सेनापति प्यारी तेरे तमसे[५] तरल तारे,
तिरछे कटाछ गड़ि छाती मैं रहत हैं ॥

(५)

हिय हरि लेत हैं, निकाई के निकेत, हँसि
देत हैं सहेत, निरखत[६] करि सैन हैं।
सेनापति हरिनी के दृगनतैं अति नीके राजैं*
दरद हैं हरत[७], करत चित चैन हैं ॥

---

[१] के हेत (अ); [२] त्रिय (क) (ग) (घ); [३] लगत (त); [४] न निकसत (ख); [५] तीर से (अ); [६] नित प्रत (घ); [७] हरत हैं दरद (छ) (त)।

* दो वर्णों के बढ़ जाने से यहाँ छंदोभंग दोष हो गया है।

चाहत न अंजन, रसिक जन रंजन हैं,
खंजन सरस रस-राग-रीति ऐन हैं।
दीरघ, ढरारे, अनियारे, नैंक रतनारे,
कंज से निहारे कजरारे तेरे नैन हैं॥

(६)

केसरि निकाई, किसलय की रताई लिए,
झाँई[1] नाहिं जिनकी धरत अलकत हैं।
दिनकर-सारथी तैं सेना देखियत राते,
अधिक अनार की कली तैं आरकत हैं॥
लाली की लसनि, तहाँ हीरा की हसनि राजै,
नैंना निरखत, हरखत, आसकत हैं।
जीते नग लाल, हरि लालहिं ठगत, तेरे
लाल लाल अधर रसाल झलकत हैं॥

(७)

कालिंदी की धार निरधार है अधर, गन
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
इंद्रनील कीरति[2] कराई नाहिं ए सहैं॥

'घ' प्रति के लिपिकार ने 'सेनापति हरिनी के........' आदि के स्थान पर 'सेना हरिनी के........' पाठ दिया है किंतु ऐसा पाठ रखने से गति विगड़ जाती है। बहुत संभव है कि 'राजै' शब्द भ्रमवश प्रतियों में लिख दिया गया हो। अर्थ की दृष्टि से भी यह अनावश्यक-सा है—संपादक।

[१] दाई (क) (ख) (घ) (छ); [२] किरनि (क) (ख) (ग)।

एड़िन लगत सेना हिय के हरष-कर,
देखत हरत[1] रति-कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अँधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे, तेरे केस हैं॥

(८)

नूतन जोबनवारी मिली ही[2] जो बन वारी,
सेनापति बनवारी मन मैं बिचारियै।
तेरी चितवनि ताके चुभी चित बनिता के,
है उचित बनि ताके मया कै पधारियै॥
सुधि ना निकेतन की बाढ़ी उनके तन की
पीर मीनकेतन की जाइ कै निवारियै।
तो तजि अनवरत[3] वाके और न बरत,
कीजै लाल नव रत[4] बाल न बिसारियै॥

(९)

बिरह तिहारे घन बन उपबनन की,
लागति हवाई[5] जैसी[6] लागति हवाई है।
सेनापति स्याम तुव आवन अवधि-आस,
है करि सहाई बिथा केतियौ सहाई है॥
तजि निठुराई, आइ ज्यावौ जदुराई, हम
जाति अबलाई जहाँ सदा अ-बलाई है।
दरस, परस, कृपा-रस सींचि अंग-लता,
जो[7] तुम लगाई[8] सोई[9] मदन लगाई है॥

---

[१] रहत (ज); [२] है (ख) (ज); [३] अनवरति (ज); [४] रति (ज); [५] रुषाई (ज); [६] जैसे (ज); [७] जे (ज); [८] जगाई (क) (ग); [९] तेई (ज)।

(१०)

कुंद से दसन धन[1], कुंदन बरन तन,
कुंद सी उतारि धरी[2] क्यौं बनै[3] बिछुरि कै।
सोभा सुख-कंद, देख्यौ चाहियै बदन-चंद,
प्यारी जब मंद मुसकाति नैंक मुरि कै॥
सेनापति कमल से फूलि रहैं अंचल मैं,
रहैं दृग चंचल दुराए हू न दुरि कै।
पलकैं न लागैं, देखि ललकैं तरुन मन,
झलकैं कपोल, रहीं अलकैं बिथुरि कै॥

(११)

सोहैं संग अलि, रही रति हू के उर सालि,
जोबन गरूर चाल चलति दुरद की।
कहै मुसकात बात, फूल से झरत जात,
सेनापति फूली मानौं चाँदिनी सरद की॥
छबि रही भरपूरि, पहिरे कपूर-धूरि,
नागरी अमर-मूरि मदन दरद की।
मुख मृग-लंछन सौं कटि मृग-राज की सी[4],
मृग के से दृग, भाल बेंदी मृगमद की॥

(१२)

मधुर अमोल बोल, टेढ़ी है अलक लोल,
मैंनका न ओल जाकी[5] देखे भाइ अंग के।
रति की समान[6] सेनापति की परम प्यारी,
तोहि देखे देवौ बस होत हैं अनंग के॥

---

[१] घन (ज); [२] उतरी धरि (क) उतरि धरि (ख); [३] बनैं (ग) (घ); [४] कैसी (घ); [५] जाके (क) (ग) (न); [६] सयान (क) (ग) (छ)।

सरस बिलास सुधाधर सौं प्रकास हास[1],
कुच मानौं कुंभ दोऊ मदन मतंग के।
दीरघ, ढरारे, अनियारे, कजरारे, प्यारे,
लोचन ए तेरे मद-मोचन[2] कुरंग के॥

(१३)

नंद के कुमार, मार हू तैं सुकुमार, ठाढ़े
हुते निज द्वार[3], प्रीति-रीति परवीन हैं।
निकसि हौं आई, देखि रही सकुचाई, सेना-
पति जदुराई मोहिं देखि हँसि दीन हैं॥
तब तैं है छीन छबि, देखिबे कौं दीन, सब
सुधि-बुधि हीन हम निपट अधीन हैं।
बिरह मलीन, चैन पावत अली न, मन
मेरौ हरि लीन तातैं सदा हरि लीन हैं॥

(१४)

हित सौं निरखि हँसे, तातैं तुम उर बसे,
स्वाति हेत चातक से हम तरसत हैं[4]।
प्रीतम हौ ही के, हौ अधार सेनापति जी के,
तुम बिन फीके मन कैसे हुलसत हैं॥
तेरे नेह नाते, तेरे लागत परोसी प्यारे,
तेरी गली गए सुख सबै सरसत हैं।
तेरैं मनोरथ चाउ, तेरेई दरस पथ
तेरियै सपथ प्रान तोही मैं बसत हैं॥

---

[१] मुख (ञ); [२] मोचत (न); [३] घन-द्वार (ख); [४] हसत रसत हैं (क) (ख) (ग) हंस तरसत हैं (छ)।

(१५)

चित चुभी आनि, मुसकानि मन-भावन की,
मानि कुल-कानि रैनि-दिन भरियत है।
भूलि गयौ गेह, सेनापति अति बाढ़्यौ नेह,
चैन मैं न देह, मैंन बस परियत हैं॥
लोग उतपाती, कानाबाती हैं करत घाती,
जब गली वाकी[१] नैंक पाउँ धरियत है।
एक संग रंग, ताकी चरचा चलावै कौंन,
आँखि भरि देखिबे की साध मरियत है॥

(१६)

तब तैं कन्हाई अब देत हौ दिखाई, रीति
कहा है सिखाई तोहि देखे ही सुखारे हैं।
नींद सौं उदास, सेनापति देखिबे की आस,
तजि कै बिलास भए बैरागी बिचारे हैं॥
रूप ललचाने, भली बुरी कौं न पहिचानैं[२],
रावरे बियोग बावरे से करि डारे हैं।
लाल प्रानप्यारे सिख दै दै सब हारे, नैंन
तेरे मतवारे ते न मेरे मत वारे हैं॥

(१७)

रूप कै रिझावत हौ, किन्नर ज्यौं गावत हौ,
सुधा बरसावत हौ लोयन[३] स्रवन[४] कौं।
हिय सियरावत हौ, जिय हू तैं भावत हौ,
गिरिधर ज्यावत हौ बर बधू जन कौं॥

---

[१] ताकी गली (न); [२] कौन जाने अब (छ); [३] लोचन (ख) (ग) (घ) (छ); [४] सुवन कौं (क)।

रसिक कहावत हौ, यामैं कहा पावत हौ,
चेटक लगावत हौ सेनापति मन कौं।
चितहिं चुरावत हौ, कबहूँ न आवत हौ,
लाल तरसावत हौ हमैं दरसन कौं॥

(१८)

सैन समैं सुखधाम, सेनापति घनस्याम,
कहत हैं मोसौं मेरे तुही सरबस है।
अब तौ बिरमि रहे, जानौं कित रमि रहे,
सुरत्यौ बिसारी भयौ दूभरौ दरस है[1]॥
प्रीति करि मोही तरसावत हौ मोही, तुम
लाल निरमोही मन कीनौ करकस है।
बीती बरष सी आप[2] पाती हू कौं अरकसी,
ऐसी चित बसी तौ हमारौ कहा बस है॥

(१९)

वैसौ करि नेह एक प्रान विवि देह, अब
ऐसी निठुराई करि कौलौं तरसाइहौ।
बिरह तैं ताते, सेनापति अति राते, ऐसे
कब दुख-मोचन ए लोचन सिराइहौ॥
पाती पीछे पीछे हम आवत हैं निरधार,
यह हरि बेर हरि[3] लिखत बनाइ हौ।
मोहिं परतीत न तिहारी कछू, कहा जानौं!
कौंन वह पाती जाके पीछे आप आइहौ॥

---

[१] अब तौ विरमि रहे सेनापति रमि रहे सरतें विसारी भयौ दूसरे बरसु है (ख); [२] आय (ख) (घ); [३] वेर (ख) वार वार (क)।

(२०)

रोस करौं तोसौं, दोस तोही कौं सहस देहुँ,
तोही कान्ह कोसौं बोलि अनुचित बानियै।
तुही एक ईस, तोहि तजि और कासौं कहौं,
कीजै आस जाकी अमरष[1] ताकौं मानियै॥
जीवन हमारौ, जग-जीवन तिहारे हाथ,
सेनापति नाथ न रुखाई मन आनियै।
तेरे पगन की धूरि, मेरे प्रानन की मूरि (?)
कीजै लाल सोई, नीकी जोई जिय जानियै[2]॥

(२१)

छूट्यौ ऐबौ जैबौ, पेम पाती कौं पठैबौ, छूट्यौ
छूट्यौ दूरि दूरि हू तैं देखिबौ द्रगन तैं।
जेते मधियाती सब तिन[3] सौं मिलाप छूट्यौ,
कहिबौ सँदेस हू कौं छूट्यौ सकुचन तैं॥
एती सब बातैं सेनापति लोक-लाज काज
दुरजन त्रास छूटीं जतन जतन तैं।
उर अरि रही, चित चुभि रही देखौ एक,
प्रीति की लगनि क्यौंहूँ छूटति न मन तैं॥

(२२)

चले तैं तिहारे पिय, बाढ़्यौ है बियोग जिय[4],
रहियैं उदास छूटि गयौ है सहाइ सौ।
लोचन स्रवत जल, पल न परति कल,
आनंद कौं साज सब धर्‌यौ है उठाइ सौ॥

---

[१] ग्रमरस (ख); [२] सोई जोई नीकी मन मानियै (ग); [३] मधिपाती सब तिन (घ) मध्य पाती सयतिन सौं (न); [२] तिय (ग)।

सेनापति भूले से सदा ही[1] रहियत तातैं
ज्ञान, प्रान, तन, मन लीनौं है उठाइ सौ।
कछू न सोहाइ, दिन राति न बिहाइ, हाइ
देखे तैं लगत अब ऊजर सौं पाइसौ॥

(२३)

लाल के बियोग तैं, गुलाल हू तैं लाल, सोई
अरुन बसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यौ है।
सैन सुख तज्यौ, सज्यौ रैन-दिन जागरन,
भूलि हू न काहू[2] और रूप-रस चाख्यौ है॥
प्यारी के नयन अँसुवान बरसत, तासौं
भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यौ है।
सेनापति मानौं प्रानपति के दरस-रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यौ है॥

(२४)

नूपुर कौं झनकाइ मंद ही धरति पाइ,
ठाढ़ी आइ आँगन, भई ही साँझी[3] बार सी।
करता अनूप कीनी, रानी मैंन भूप की सी,
राजै रासि रूप की, बिलास कौं अधार सी॥
सेनापति जाके दृग दूत ह्वै मिलत दौरि,
कहत अधीनता कौं होत हैं सिपारसी।
गेह कौं सिंगार सी, सुरत-सुख सार सी[4], सो
प्यारी मानौं आरसी, चुभी है चित आर सी॥

---

[१] सदाई (ग); [२] कौहूँ (क) (ग) (न); [३] सांझ (ख) (घ) सांझी (ङ); [४] आरसी (क) (ख) (ग) (न)।

७

(२५)

बिंब हैं अधर-बिंब, कुंद से कुसुम दंत,
उरज अनार निरखत सुखकारी हैं।
राजैं भुज-लता, कोटि कंटक कटाछ अति,
लाल-लाल कर किसलैं के अनुकारी है॥
सेनापति चरन[1] बरन नव पल्लव के,
जंघान कौं जुग रंभा थंभ दुति धारी हैं।
मन तौ मुनिन हू कौं, जो बन-बिहारी हुतौ,
सो तौ मृग-नैंनी तेरे जोबन बिहारी है॥

(२६)

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई
सोभा मंद पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई,
ताही छबि करि ससि आभा पात पातकी॥
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्वल बिमल दुति पैयैं गात गात की।
सैसव-निसा अथौत जोबन-दिन उदौत,
बीच बाल-बधू[2] झाँईं[3] पाई परभात की॥

(२७)

सुनि कै पुरान राखै पूरन कै दोऊ कान,
बिमल निदान मति[4] ज्ञान कौं धरति है।
सदा अपमान, सनमान, सब सेनापति[5],
मानत समान[6], अभिमान तैं बिरति है॥

---

[१] बरन (क) (ख) (ग) (घ) (छ); [२] काल बधू (क) (घ); [३] जाई (न); [४] बुद्धि (न); [५] सदा सनमान अपमान हूँ को सेनापति (न); [६] सयान (क) (ख) (ग)।

सेई है परन-साला, सह्यौ घाम, घन पाला,
पंचागिनि ज्वाला, जोग, संजम[1], सुरति है।
लीनी सौक[2] माला, परे अँगुरीन जप-छाला,
ओढ़ी मृगछाला पै न बाला बिसरति है॥

(२८)

मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ,
और मालतीन हू तैं अधिक बसाति है।
सोने तैं सरूप, तेरे तन कौं अनूप रूप,
जातरूप-भूषन तैं और न[3] सुहाति है॥
सेनापति स्याम तेरी सहझ[4] निकाई रीझै,
काहे कौं सिंगार कै कै बितवति[5] राति है।
प्यारी और भूषन कौं भूषन है तन तेरौ,
तेरियै सुबास और बास बासी जाति है॥

(२९)

लोचन बिसाल, लाल अधर प्रबाल हू तैं,
चंद तैं अधिक मंद हास की निकाई है।
मन लै चलति, रति करति सुहासपन,
बोलति मधुर मानौं सरस सुधाई[6] है॥
सेनापति स्याम तुम नीके रस बस भए[7],
जानति हौं तुम्हैं उन मोहिनी सी लाई है।
काम की रसाल, काढ़ै[8] बिरह के उर साल,
ऐसी नव बाल लाल पूरे पुन्य पाई है॥

---

[१] संगम (न); [२] सोकु (क) (ग) (घ) (न); [३] ओटन (ख) (न) औटनि (घ) ओटत (छ); [४] अधिक (ख); [५] चितवति (छ) (ज); [६] सुहाई (ख); [७] सरबस भये (ज); [८] बाढ़ै (ज)।

(३०)

झूठे काज कौं बनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम बतियान उघरत हौ।
आइ कै समीप, करि साहस, सयान ही सौं,
हँसी हँसी बातन ही बाँह कौं धरत हौ॥
मैं तौ सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
जाकौं परपंच एतौ हम सौं करत हौ।
कहाँ एती चतुराई, पढ़ी आप[1] जदुराई,
आँगुरी पकरि पहुँचा कौं पकरत हौ॥

(३१)

आए परभात सकुचात, अलसात गात,
जाउक तिलक लाल भाल पर लेखियै।
सेनापति मानिनी के रहे रति[2] मानि नीके,
ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै॥
सुख रस भीने, प्रानप्यारी बस कीने पिय,
चिन्ह ए नवीने परतच्छ अच्छ पेखियै।
होत कहा नींदे, एतौ रैनि के उनींदे अति,
आरसीलै नैंना आरसी लै क्यौं न देखियै॥

(३२)

नीके रमनी के उर लागे नख-छत, अरु
घूमत नयन, सब रजनि[3] जगाए हौ।
आए परभात, बार-बार हौ जँभात, सेना-
पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौ॥

---

[१] पढ़ि आए (ख); [२] राति (क) (ख) (घ) (ञ); [३] रजनी (ख) (न)।

कहा[1] है सकुच मेरी, हौं तौ हौं तिहारी चेरी,
मैं तौ तुम निधनी[2] कौं धन करि पाए हौ।
आवत तौ आए, सुधि ताकी है कि नाहीं जाके,
पाइ के महाउर की खौंरि करि आए हौ॥

(३३)

जाउकौ लिलार[3] ताके पाउकौ अधर, नैंन
अंजन है आज[4] मनरंजन लसत हौ।
वारी हौं तिहारी छवि ऊपर विहारी, मेरे
तारन कौं प्यारे सुधा-रस बरसत हौ॥
छूजियै न पाइ हौं तौ सेवक हौं सेनापति,
प्रानपति मेरे तुम जीतैं सरसत हौ।
मान बिन सारौ, सरबस वारि डारौं, लाल
वारौं ए चरन जे चरन परसत हौ॥

(३४)

मो मन हरत, पै अनत बिहरत, इत
डरत डरत पग धरनि धरत हौ।
ताही कौं सुहाग, सब ही तैं बड़ भाग, जासौं
करि अनुराग रस-रीति सौं ढरत हौ[5]॥
साँचे और ही सौं झूँठे हम सौं सुहासपन,
सेनापति औसरैं हू हमैं बिसरत हौ।
तब वह कीनी, रैनि बसे उनही के, अब
पाइ परि मोहिं अपराधिनी करत हौ॥

---

[१] कहाँ (क) (ग) (न); [२] नीधन (क) (ग) (घ); [३] लिलाट (ख); [४] आंजि (ख); [५] एते अनुरागु मन भावन करत हौ (न)।

(३५)

बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हौ।
करि डारि छाती घोर घाइन सौं राती-राती[1]
मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ॥
पौढ़ौ बलि सेज, करौं औषद की रेज बेगि,
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौ।
कीनें कौन हाल! वह बाघिनि है बाल! ताहि
कोसति हौं लाल, जिन फारि-फारि खाए हौ॥

(३६)

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस जब[2] दीबे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है॥

(३७)

स्याम लछारे लसत, बार बारन-गमनी के।
नव-नव भूषन धरति, बार-बार नग मनी के॥
ऐसी सुकृतन नारि, कनक बरन तन बनति है।
सेनापति कवि जीभ, तनक बरनत न बनति है॥
नव जोबन पूरन बिपुल, कुच कुंदन कलसा धरति।
जाके निरखत खन बढ़ै, सु हिए मदन, कल, साध-रति[3]॥

---

[१] तुम (ख); [२] तव (ख); [३] कलसा ढरत (ख)।

(३८)

सहज[1] बिलास हास, हिय के हुलास तजि,
दुख के निवास प्रेम पास परियत है।
भूलि जात धाम, सोच बाढ़त है आठौं जाम,
बिना काम तरसि तरसि मरियत है॥
मिलन न पैयै, बिन मिलैं अकुलैयै अति,
सेनापति ऐसे कैसे दिन भरियत है।
कहा कहौं तोसौं मन, बात सुनि मोसौं,
जाकौं देखिबौ कठिन तासौं नेह करियत है॥

(३९)

ज्यौं ज्यौं सखी सीतल करति उपचार सब[2],
त्यौं त्यौं तन बिरह की बिथा सरसाति है।
ध्यान कौं धरत सगुनौतियौ करत, तेरे
गुन सुमिरत ही बिहाति दिन-राति है॥
सेनापति जदुबीर मिलैं ही मिटैगी पीर,
जानत हौ प्यास कैसे ओसनि बुझाति है।
मिलिबे के समैं आप पाती पठवत, कछू
छाती की तपति पति[3] पाती तैं सिराति है[4]॥

(४०)

मानहु प्रबाल ऐसे ओठ लाल लाल, भुज
कंचन मृनाल तन चंपक की माल है[5]।
लोचन बिसाल, देखि मोहे गिरिधर लाल,
आज तुही बाल तीनि लोक मैं रसाल है॥

---

[१] सहस (क) (घ) (न); [२] अब (न); [३] कहा (घ) नांहि (ख); [४] पति पाती देषै जाति है (न); [५] चंपे की सी माल है (क) (ख)।

तोहि तरुनाई सेनापति बनि आई, चाल
चलति सुहाई मानौं मंथर मराल है।
नैंक देखि पाई, मो पै बरनी न जाई,[1] तेरी
देह की निकाई सब गेह[2] की मसाल है॥

(४१)

प्रीति सौं रमत, उनहीं के बिरमत घर,
देखि बिहँसत, उनहीं कौं वे सुहाति हैं।
जानि वेई बाम, भोरैं आए हौ हमारैं धाम,
सेनापति स्याम हम यातैं अनखाति हैं॥
तुम अनबोले अनमने ह्वै रहत लाल,
यातैं हम बोलैं, बोलि पीछे पछिताति हैं।
अब तौ जरूर कीनौ चाहियै तिहारौ कह्यौ,
आए तैं कहौगे ए[3] गुमान परि जाति हैं॥

(४२)

लोल हैं कलोल[4] पारावार के अपार, तऊ[5]
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं।
सेनापति नीकी पटबास हू तैं ब्रज-रज,
पारिजात हू तैं बन-लता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी,[6]
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं।
कंचन अटा पर जराऊ परजंक, तऊ
कुंजन की सेजैं वे करेजे खरकति[7] हैं॥

---

[1] आई (न); [2] मेह (न); [3] की (न); [४] कपोल (न);
[५] तिउ (क) (ग) (घ) तेऊ (ञ); [६] नारी (क) (ख) (ग);
[७] करकति (ञ)।

(४३)

चले उत पति के बियोग उतपति भई,
छाती है तपति ध्यान प्रान के अधार कौं[1] ।
सेनापति स्याम जू के बिरह बिहाल बाल,
सखी सब करति बिचार उपचार कौं ॥
प्रीतम अरग जातैं, ताही तैं अरगजा तैं
सीरक न[2] होति, जुर जारत है मार कौं ।
सीतल गुलाब हू सौं घिसि उर पर कीनौ,
लेप घनसार कौं सो मानौं घन सार कौं[3] ॥

(४४)

कौहू तुव ध्यान करै, तेरौ गुनगान कौहू,
आन की कहत आन, ज्ञान बिसरायौ है ।
तोसौं उरझाइ, मन गिरै मुरझाइ, सकै
कौंन सुरझाइ, काहू मरम न पायौ है ॥
सुधा तैं सरस ताकौं तेरौ है दरस, तेरे
ताकौं न तरस सेनापति मन आयौ है ।
तेरे हँसि हेरे हरि, हिये ऐसे हाल होत,
हाला मैं हलाइ मानौं हलाहल प्यायौ है ॥

(४५)

वाके भौन बसे, भौन कीजै, हौं न मानौं रोस,
कहौ एती कौंन तैं सकुच उर आनी हैं ।
सेनापति आवत बनावत हौ प्रात बात,
निपट कुटिल सब कपट की बानी हैं ॥

---

[1] के (न); [2] सीकरन (ज); [3] लेप घनसार के समानो अवसार के (ब) ।

तेरे काज दीन रहैं, तो बिन मलीन हम,
तोही सौं अधीन, हाथ तेरेई बिकानी हैं।
रावरे सुजान! हम बावरे अजान, कीजै
ताही सौं सयान जे कहावति सयानी हैं॥

(४६)

लयौ मन मोहि, तातैं सूझत न मोहिं सखी,
मदन-तिमिर मेरौ जीउ रह्यौ दबि है।
सेनापति जीवन अधार बिन घनसार,
गंधसार हार बिरहानल कौं हबि है॥
लोचन-कुमद नँद-नंदन कौं मुख चंद,
उर-अरबिंद ताकौं ऐन मैंन-रबि है।
छाँड़ि दै अपार बार बार उपचार मेरे
ही-तम के हरिबे कौं प्रीतम की छबि है॥

(४७)

बाल, हरिलाल के बियोग तैं बिहाल, रैनि
बासर बरावै बैठि बर की निसानी सौं।
बोल? कौंन बल[1]? कर-चरन चलावै कौंन?
रहत हैं प्रान प्रानपति की कहानी सौं॥
लागि रही सेज सौं, अचेत ज्यौं, न जानी जाति,
सेनापति बरनत बनत न बानी सौं।
रही इकचक, मानौं चतुर चितेरे, तिय
रंचक लिखी है कोई कंचन के पानी सौं॥

---

[1] बोल को नवलु (क) (ग) (न)।

(४८)

सखी सुख दैन स्यामसुंदर कमल-नैन,
मिस कै सुनाए बैन देखि गुरुजन[1] मैं।
सेनापति प्रीतम की सुनत[2] सुधा सी बानी,
उठि धाई बाम, धाम-काम छाँड़ि छन मैं॥
छबि की सी छटा स्याम-घन की सी घटा, आइ
झाँकी चढ़ि अटा, पगी जोबन मदन मैं।
वे[3] जु सीस-बसन सुधारिबे कौं मिस करि,
कीनौ पाइलागनौ सो लागि रह्यौ मन मैं॥

(४९)

पून्यौं सी तिहारी लाल, प्यारी मैं निहारी बाल,
तारे सम मोती के सिंगार रही साजि कै।
झीनौ पटु गात, चाँदनी सौं अवदात, जात
लोचन-चकोरन कौं देखैं दुख भाजि कै॥
सेनापति तनसुख सारी की किनारी बीच,
नारी के बदन आछी छबि रही छाजि कै।
पूरन सरद-चंद-बिंब, ताके आस पास,
मानहु अखंड रह्यौ मंडल बिराजि कै॥

(५०)

काम-केलि-कथा कनाटेरी दै सुनन लागी,
जऊ अनुरागी बाल केलि के रसन है।
तरुन के नैंना पहिचानि, जिय मैं की जानि,
लागी दिन द्वैक ही तैं भौंहनि हसन है[4]॥

---

[1] दुरजन (क) (ग) (घ) (छ) (ज) (न); [2] सुनी तू (क) (ग) (घ) (छ) (ज); [3] तै (क) (ग) (घ); [4] भौंह की हसनि है (च)।

चंपे के से फूल, भुज-मूल की झलक लागी
सेनापति स्याम जू के मन मैं बसन है।
सूधी चितवन तिरछौंहीं सी लगन लागी,
बिन ही कुचन लागी कंचुकी लसन है॥

(५१)

भौन सुधराए सुख साधन धराए, चार्यौ
जाम यौं बराए सखी आज रति राति है।
आयौ चढ़ि चंद, पै न आयौ बसुदेव-नंद,
छाती न थिराति आधी राति नियराति है॥
सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीति मोहिं,
पूँछति हौं तोहि मोसी[1] और को सुहाति है।
किन बिरमाए, केलि-कला कै[2] रमाए, लाल
अजहूँ न आए धीर कैसे धरि जाति है॥

(५२)

सजनी तिहारी सब रजनी गँवाई जागि,
सेनापति द्यौस मग जोवत गँवाए हैं।
चैत चाँदनी चितै भई बिहाल बाल तब,
ताके प्रान राखिबे कौं बानक बनाए हैं॥
लै कै[3] कर बीन, परबीन संग की अलीन,
रवन तिहारे गीत स्रवन सुनाए हैं।
ताहीं एक राति उन लालन तिहारे गुन,
पलक लगाए नैंक पल कल गाए हैं॥

---

[1] तोसी (न); [2] में (न); [3] लै लै (न)।

(५३)

चंद दुति मंद कीने, नलिन मलिन तैं ही,
तो तैं देव अंगनाऊ रंभादिक तर हैं।
तोसी एक तुही, अरु तोसे तेरे प्रतिबिंब,
सेनापति ऐसे सब कबि कहत रहैं॥
समुझैं न वेई, मेरे जान यौं कहत जेई,
प्रतिबिंब वैह[१], तेरे[२] भेष निरंतर हैं[३]।
यातैं मैं बिचारी प्यारी परे दरपन बीच,
तेरे प्रतिबिंबौ पै न तेरी पटतर हैं॥

(५४)

लाल मनरंजन के मिलिबे कौं मंजन कै,
चौकी बैठि बार सुखवति बर नारी[४] है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन[५], सिंगार बिन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है॥
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा बिचारी है।
ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
परबीन गाइन[६] की ज्यौं अलापचारी है[७]॥

(५५)

कोमल, अमल, कर-कमल बिलासिनी के,
रचि पचि कीनी बिधि सुंदर सुधारि है।
सोहति जराऊ, अँगुरीन मैं अँगूठी, पुनि[८]
द्वै ई द्वै छलान राखै पोरऊ सिंगारि है॥

---

[१] देह (अ); [२] थेई (क) (ख) (ग) (घ); [३] निरत रहैं (अ); [४] बृजनारी (ख); [५] कंचुकी (ख); [६] गायक (अ); [७] तान बिन मान बिन सादियै रहति मन, परवीन जन की यों अलापचारी है (ख)।

मिहँदी की बिंदकी बिराजै तिन बीच लाल,
सेनापति देखि पाई उपमा बिचारि है।
प्रात ही अनंद सौं अरुन अरबिंद मध्य,
बैठी इंद्रगोपन की मानौं पँतवारि[1] है॥

(५६)

पहिले तौ इत, सेनापति प्रानपति नित,
मेरे चित-हित बार बार हरि आउते।
हिय हिलि-मिलि हँसि हँसि बतियाँन कहि,
भाँति-भाँति काम केलिकला सौं रिझाउते॥
कहे सुने काहू के न आइबौ तजहु तुम,
यह कहि आँचर सौं झारी रज पाँउ ते।
करौंगी बधाई आज कुँवर कन्हाई आए,
आवौ लाल भाउते[2] कहौ धौं कौंन गाँउ ते॥

(५७)

चंद की कला सी, चपला सी, तिय सेनापति,
बालम के उर बीज आनँद के बोति है।
जाके आगे कंचन मैं रंचक न पैयै रुचि,
मानौं मनि-मोती-लाल माल[3] आगे पोति है॥
देखी[4] प्रीति गाढ़ी, पैंधे तनसुख ठाढ़ी, जोर
जोबन की बाढ़ी खिन खिन और होति है!
गोरी देह झीने बसन मैं झलकति मानौं (?)
फानुस के अंतर दिपति दीप-ज्योति है॥

---

[१] पत चारि (ज); [२] आए आए लाल भावते (छ); [३] माल लाल (ख) (ज); [४] देखो (क) (ग) (छ)।

(५८)

सो गज-गमनि है,[1] असोग जग-मनि देख,
जात सेनापति है सो पैग से नापति है।
तेरे अब लाइक है, सोई अब लाइ कहै,
सची सील-गति जातैं सची सी लगति है ॥
बालम तिहारी उन बाल-मति हारी निद्रा,
नाहिं नैंक रति जातैं नाहिंनैं करति है।
न दरप धारौ, करि आदर पधारौ, तिय[2]
जोबन बनति पिय! कीनी[3] नव नति[4] है ॥

(५९)

षोड़स बरस की है, खानि सब रस की है,
जो सुख बरस की है, करता सुधारी है[5]।
ऊजरी कनक, मनि गूजरी झनक, ऐसी
गूजरी बनक बनी[6], लाल तन सारी है ॥
सौंह मो तिहारी, सेनापति है बिहारी! मैं तौ
गति-मति हारी जब रंचक निहारी है।
नंद के कुमार वारी, प्यारी सुकुमार वारी,
भेष मारवारी मानौं नारी मार वारी है ॥

(६०)

नैंन नीर बरसत, देखिबे कौं तरसत,
लागे काम सरसत पीर उर अति की।
पाए न सँदेसे तातैं अधिक अँदेसे बढ़े,
सोचै सुकुमारि पै न कहै मन गति की ॥

---

[1] सोग जग मनि हैं (क) (ख) (ग) (घ); [2] मंदर पधारौ भरि आदर पधारौ पिय (ख); [3] जानि (न); [4] रति (क) (ग); [5] समारी है (न); [6] बानि (ज)।

ताही समैं काहू औचकाही[1] आनि चीठी दीनीं,
देखत हो सेनापति, पाई प्रीति रति की।
माथे लै चढ़ाई, दोऊ दृगनि लगाई, चूमि
छाती लपटाई राखी पाती प्रानपति की॥

(६१)

जौतैं प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतैं,
बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल-नैंनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है॥
कागहिं उड़ावै, कौहू कौहू[2] करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है॥

(६२)

तेरौ मुख देखे चंद देखौ न सुहाइ[3], अरु
चंद के अछत जावौं मन तरसत है।
ऐसे तेरे मुख सौं, कहत सब कबि, ऐसे
देखौ मुख चंद के समान दरसत है॥
वे तौ समुझैं न कछू, सेनापति मेरे जान,
चंद तैं मुखारबिंद तेरौ सरसत है।
हँसि हँसि, मीठी मीठी, बातैं कहि कहि, ऐसे
तिरछे[4] कटाछ कब चंद बरसत है॥

---

[१] औचकाईं (ख); [२] क्योंहू (ख) कोऊ (घ) कहू (छ) (ज); [३] सुहात (घ); [४] तीछन (न)।

(६३)

हितू समझावैं, गुरुजन सकुचावैं, बैन
सिख के सुनावैं, पै न चैन लहियत है।
सेनापति स्याम मुसकाइ मन बस[1] कीनौ,
तातैं निसि-बासर बिरह दहियत है॥
नेह तैं बिकल, गेह बैठे रहियत नित,
कुल कौं कलंक कहौ कैसे सहियत है।
कौहू जौ अचानक मिलैं तौ मिलैं मारग मैं,
वाकी उत जैबौ अब कैसे सहियत है॥

(६४)

अति ही चपल ए बिलोचन हठीले आली,
कुल कौं कलंक कछू मन मैं न आन्यौ है।
सेनापति प्यारे मुख[2] -सोभा-सुधा-कीच-बीच,
जाइ[3] परे जोरावर बरज्यौ न मान्यौ है॥
मैं तौ मतिहीन नैंन फेरिबे कौं मन-हाथी,
पठयौ मनाइ नेह-आँदू उरझान्यौ है।
पंकज की पंक[4] मैं चलाए गज की सी भाँति,
मन तौ समेत[5] नैंन तहाँ मस सान्यौ है[6]॥

(६५)

जरद बदन, पान खाए से रदन[7], मानौं
हरद सरद-चंद दुति दिखावति है।
चीकने चिकुर छूटि रहे हैं बिसाल भाल,
बाँधी कसि पट्टी सेनापति रिझावति है॥

---

[१] बस कीन्हो मन (ज); [२] सुख (क) (ख) (ग) (घ) (न); [३] जाए (क) (ग) (घ); [४] पच (क) (ख) (ग); (५) समीत (क) (ग) समीप (न); [६] मन तो समेत नैनन हा मै समन्यो है (भ); [७] सरदन (क) (ग) (घ) (छ)।

कीने नत नैंन, देखै मुख-चंद नंदन[1] कौं,
अंक लै मयंक-मुखी ताहि मल्हावति है।
बाएँ कर होरिल कौं सीस राखि[2] दाहिने सौं,
गहे कुच प्यारी पयपान करावति है॥

(६६)

सो तौ[3] प्रानप्यारौ साँचौ नैंनन कौं तारौ,
जाहि नैंक होत न्यारौ देखिबौई मूसियत है।
नैंक जौ करत गौन, सूनौ न सुहात भौन,
सुनत न स्रौन कछू केतौ भूसियत है॥
सेनापति ईस सदा, सेइयै नवाइ सीस,
जा बिन मरम उर कौं मसूसियत है।
सब सुख सार, तन-मन कौं सिंगार, ऐसौ
जीवन-अधार तासौं कैसे रूसियत है॥

(६७)

लागैं न निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
कही न बनत कछू जैसी तुम कंत की।
मिलन की आस तैं उसास नाहीं छूटि जात,
कैसे सहौं सासना मदन मयमंत की॥
बीती है अवधि हम अबला अबध, ताहि
बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जंत की।
कहियौ पथिक परदेसी सौं कि धन पीछे,
है गई सिसिर कछू सुधि है बसंत की॥

---

[१] मुखनंद नंदन (न); [२] सिर धरि (ज); [३] तो सौ (ख)।

(६८)

कौनैं बिरमाए, कित छाए, अजहूँ[1] न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वैहैं,
जा दिन बदन-छबि देखौं नँद-लाल की॥
सेनापति जीवन-अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाँईं ब्रज-बाल की॥

(६९)

सेनापति मानद[2], तिहारी मोहिं आन, हौं तौ
जानति ही कान्ह तेरी मोसौं एक रति है।
सो तौ आन ठानत हौ, उत रति मानत हौ,
जानत हौ ऐसी प्रीति क्यौं खटक रति है॥
अब दिन द्वैक ही तैं हिलनि मिलनि तासौं,
हिय की खिलनि सो हिए कौं पकरति है।
सब सुख दैनी, जाके बड़े नैंना बैनी, वह
तोसौं मैंना-बैनी सैना-बैनी सी करति है॥

(७०)

नीकी अंगना है, भावै सब अंग नाहैं, देखी
निज अंगना है ठाढ़ी अंग सिंगारति है।
यह बसुधा रति है, ऐसौ जसु[3] धारति है,
केलि कौं सुधारति है देति सुधा रति है॥

---

[१] अवहू (छ); [२] मानह (न); [३] वसु (ख)।

पूरि कामना सकत, तोरौ ताकी आस कत,
सेनापति आसकत, नींद बिसारति है।
बोलनैं सराहति है, प्रान बलि हारति है,
तन-मन हारति है तोहि निहारति है॥

(७१)

सहज निकाई मो पै बरनी न जाई, देखे
उरबसी हू कौं बिन दरप करति है।
तोहि पाइ कान्ह, प्यारी होइगी बिराजमान,
ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है॥
देखे ताहि जियौं, बिन देखे पै न पानी पियौं,
सेनापति ऐसी अति अर पकरति है।
तातैं घनस्याम ताके आप ही पधारौ धाम
जातै[1] सब सुखन की अरप करति है॥

(७२)

बागौ निसि-बासर सुधारत हौ सेनापति,
करि निसि बास रसु धारत सुरत हौ।
दै कै सरबस भरमावत हौ उनैं, मेरौ
मन सरवस भरमावत रहत हौ॥
सादर, सुहास, पन ता ही कौं करत लाल,
सादर सुहासपन ताही कौं करत हौ।
मानौ अनुराग, महाउर कौं धरत भाल
मानौं अनुराग महा उर कौं धरत हौ॥

---

[१] जाकी (क) (ग) (घ) जाके (ख) (न)।

(७३)

अमल कमल, जहाँ सीतल सलिल, लागी
आस-पास पारिन[1] सबनि ताल जाति है।
तहाँ नव नारी[2], पंचबान बैस वारी[3], महा
मत्त प्रेम-रस आस बनि ताल जाति है[4]॥
गावति मधुर, तीनि ग्राम सात सुर मिलि,
रही तानिनि मैं बसि[5], बनि ताल जाति है।
सेनापति मानौं रति, नीकी[6] निरखत अति,
देखि कै जिनैं सुरेस बनिता लजाति है॥

(७४)

कमल तैं कोमल, बिमल अति कंचन तैं,
सोभत हैं अंग भासमान बरनत के।
ताकी तरुनाई, चतुराई की निकाई कीब,
कान परी वा सभा समान बरनत के॥
सेनापति नंद-लाल पेंचन ही बस करी,
पाए फल बल्लभा, समान बर न तके।
दिन दिन प्रीति नई, देखत अनूप भई,
बाम भाग की प्रभा समान बरन तके॥

[इति श्रृंगार वर्णनम्]

---

[१] पारिनुस (क) (ख) फारिनुस (घ) पारनि सौ (न); [२] वनवारी (ख); [३] चारी (छ); [४] महामत्त रस आस वसु वनिता लजाति है (न) महामत्त एन रस आस वनिता लजाति है (ञ); [५] वस (क); [६] कीनी (ख)।

तीसरी तरंग

ऋतु वर्णन

(१)

बरन बरन तरु फूले उपवन बन[१],
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
वंदी जिमि[२] बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
गुंजत मधुप गान गुन[३] गहियत है॥
आवै आस-पास पुहुपन की सुबास, सोई
सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौं समाज, सेनापति सुख-साज, आज
आवत बसंत रितुराज कहियत है॥

(२)

मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर[४],
सरवर नीर जन मज्जन[५] के काज के।
मधुकर पुंज पुनि मंजुल करत गुंज,
सुघरत[६] कुंज सम सदन समाज के॥
ब्याकुल बियोगी, जोग कै सकै न जोगी, तहाँ[७]
बिहरत भोगी सेनापति सुख साज के।
सघन तरु लसत, बोलैं पिक कुल सत,
देखौ हिय हुलसत आए रितुराज के॥

---

[१] बरन बरन फूले सब उपवन बन (न); [२] जन (न); [३] गुन गान (न); [४] धरमधार (ख); [५] सब मंजन (न); [६] सुघरत (ख); [७] जहाँ (क)।

(३)

लसत कुटज, घन चंपक, पलास, बन,
फूलीं सब साखा जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल, फूल-जाल हैं बिसाल, तहाँ
आछे अलि अछर, जे कारज[1] के मित्त हैं॥
सेनापति माधव महीना भरि नेम करि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद[2] रँगीन मैं प्रबीन हैं बंसत लिखे,
मानौं काम-चकवै के बिक्रम[3] कबित्त हैं॥

(४)

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्याम रंग भेंटि[4] मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपवन बन धाए हैं॥
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कबिता के मन आए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
बिरही दहन काम[5] क्वैला परचाए हैं॥

(५)

केतकि, असोक, नव[6] चंपक, बकुल कुल,
कौन धौं बियोगिनी कौं ऐसौ बिकराल है।
सेनापति साँवरे की, सूरति की सुरति की,[7]
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है॥

---

[१] काजर (क) (ग); [२] कागर (ज); [३] विक्रम (क) (ख) (ग) (न); [४] मैंट (छ); [५] काज (क' (ख) (ग) (घ); [६] वन (ख) (ज); [७] मूरति को सुरति की (न)।

दच्छिन-पवन एती ताहू की दवन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है।
लाल हैं प्रबाल फूले देखत बिसाल, जऊ
फूले और साल[1] पै रसाल उर साल है॥

(६)

सरस सुधारी राज-मंदिर मैं फुलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल बिराव के।
सेनापति सुखद समीर है, सुगंध मंद,
हरत[2] सुरत-स्रम-सीकर[3] सुभाव के॥
प्यारौ अनुकूल, कौहू करत करन-फूल
कौहू सीसफूल, पावँड़ेऊ मृदु पाँव के।
चैत मैं प्रभात,[4] साथ प्यारी अलसात, लाल
जात मुसकात, फूल बीनत गुलाब के॥

(७)

धर्यौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत है।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ
भौंरी देखि होत अलि आनंद अनंत है॥
नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब
सजी तेल ताई चैन मैंन मयमंत है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
बनी दुलहिन बनी[5] दूलह बसंत है॥

---

[१] फूलेउ रसाल (२); [२] रहत (ज); [३] सीतल (ख); [४] बिभात (क) (ग) (घ) (ज) (न); [५] बना (ख) (घ) बन्यो (न)।

(८)

तरु नीके फूले बिबिध, देखि भए मयमंत।
परे बिरह बस काम के, लागे सरस बसंत॥
लागे सरस बसंत, सघन उपबन बन राजत।
कोकिल के कल गीत, मधुर सेनापति साजत॥
तजे सकुच के भाउ[1], भाउ तजि मान मनी के।
सुर, नर, मुनि, सुख संग रंग राचैं तरुनी के॥

(९)

दच्छिन धीर समीर पुनि, कोकिल कल[2] कूजंत।
कुसुमित साल रसाल जुत, जो बन सोभावंत॥
जोबन सोभावंत, कंत-कामिनि मनोज बस।
सेनापति मधु मास, देखि बिलसत प्रमोद रस॥
दरस हेत तिय लिखति, पीय[3] सियरावहु अच्छिन।
हरहु हीय संताप, आइ हिलि[4] -मिलि सुख दच्छिन॥

(१०)

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख[5] तहखाने के[6] सुधारि भारियत हैं।
होति है मरम्मति बिबिध जल-जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे[7] अटा, ते[8] सुधा सुधारियत हैं॥
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सम्हारियत[9] हैं॥

---

[१] साज तजे सब सकुच (न); [२] कुल (न); [३] पिय (ल); [४] मिलि (ख); [५] ताल (ख); [६] ते (न); [७] ऊँची ऊँची (ज); [८] तैं (घ); [९] सवारिअत (न) समाजियतु (म)।

१०

(११)

बृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,[1]
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है[6] ।
तचति धरनि, जग[2] जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी[3] बिरमत है[6] ॥
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत[4]
धमका बिषम, ज्यौं न[5] पात खरकत है[6] ।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौंनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है[6] ॥

(१२)

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुवैं,
नद, नदी, कुवैं कोपि डारत सुखाइ कै ।
चलत पवन, मुरझात उपबन बन,
लाग्यौ है तवन, डार्यौ भूतलौं[7] तचाइ कै ॥
भीषम तपत रितु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन मैं जाइ कै ।
मानौं सीत काल, सीत-लता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा मैं धराइ कै ॥

(१३)

प्रात नृप न्हात, करि असन बसन गात,
पैंधि सभा जात जौ लौं बासर सुहात है ।
पीछे अलसाने, प्यारी संग सुख साने, बिह-
रत खसखाने, जब घाम[8] नियरात है ॥

---

[१] करनि कर (न); [२] जनु (ख); [३] पंथ (ख); [४] दुपहरी ढरकत होत (ज); [५] जो न (ख); पै न (न); [६] हैं (ख) (ब); [७] भूतल (न) भूत ज्यों (ख); [८] बाम (ज) ।

लागे हैं कपाट, सेनापति रंग-मंदिर के[1],
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है।
कोई न भनक, है कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी कि मानौं अधरात है॥

(१४)

काम कै[2] प्रथम जाम, बिहरैं उसीर धाम,
साहिब सहित बाम, घाम बितवत हैं।
नैंक होत साँझ, जाइ बैठत सभा के माँझ,
भूषन बसन फेरि और पहिरत हैं॥
ग्रीषम की[3] बासर बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति कबि कहिबे कौं उमहत हैं।
सोइ जागे जानैं दिन दूसरौ भयौ है, बातैं[4]
काल्हि की सी करी भोरैं भोर की कहत हैं॥

(१५)

सेनापति तपन तपति उतपति तैसौ,
छायौ उत पति, तातैं बिरह बरत है।
लुवन की लपटैं, ते चहूँ ओर लपटैं, पै[5]
ओढ़े सलिल पटैं (?) न चैन उपजत है॥
गगन गरद धूँधि, दसौं दिसा रहीं रूँधि,
मानौं नभ भार की भसम बरसत है।
बरनि बताई, छिति-व्यौंम की तताई, जेठ
आयौ आतताई पुट-पाक सौं करत है॥

---

[१] मे (छ); [२] के (ख) (घ); [३] के (न); [४] बातें (क);
[५] सो (ख)।

(१६)

तपै इत जेठ, जग जात है जरनि[१] जर्‌यौ,
तापकी तरनि मानौं मरनि[२] करत है[३]।
इतहिं असाढ़ उठै[४] नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज धरत[५] है॥
आधे अंग ज्वालन के जाल बिकराल, आधे[६]
सीतल सुभग[७] मोद हीतल भरत है।
सेनापति ग्रीषम तपत रितु भीषम है,
मानौं बड़वानल सौं बारिधि बरत है॥

(१७)

सुंदर बिराजैं राज-मंदिर सरस, ताके
बीच सुख दैनी, सैनी सीरक उसीर की।
उछरैं सलिल, जल-जंत्र है बिमल उठैं,
सीतल सुगंध मंद लहर समीर की॥
भीने हैं गुलाब तन सने हैं अरगजा सौं,
छिरकी पटीर-नीर टाटी तीर-तीर की।
ऐसे बिहरत[८] दिन ग्रीषम के[९] बितवत,
सेनापति दंपति मया तैं रघुबीर की॥

(१८)

देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर
तिन तरवर सब ही कौं रूप हर्‌यौ है।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै
जलद पवन तन सेक मनौं पर्‌यौ॥

---

[१] झरनि (क) (ग) (घ) (न); [२] झरनि (ञ); [३] झरत है (ञ); [४] उठी (ञ); [५] हरत (ञ); [६] गाढ़े (ख); [७] सुभाग (क) (ख) (ग) (घ) (छ); [८] विरहत (ञ); [९] को (क)।

दारुन तरनि तरैं नदी सुख पावैं सब
सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धर्‌यौ है।
देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु
ग्रीषम बिषम बरषा की सम कर्‌यौ है॥

(१९)

रजनी के समै बिन सीरक न सोयौ जात
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रंगित सुबास राखैं भूपति रुचिर साल
सूरज की तपति किरनि तन ताई है॥
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात[1] परै
आँगन ही कल ज्यौं त्यौं[2] अगिनि बराई है।
ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई[3] है॥

(२०)

छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु,
और सुखदाई है सरद छिरकाइ की।
हेमंत सिसिर हू तैं सीरे खसखाने, जहाँ
छिन रहैं तपति मिटति सब काइ की॥
फूले तरवर, फूलवारी फूल सौं भरत,
सेनापति सोभा सो बसंत के सुभाइ की।
ग्रीषम के समै साँझ, राज महलन माँझ,
पैयति है सोभा षट-रितु समुदाइ की॥

---

[१] सुहाथ (ख); [२] ज्यों (ख); [३] बताई है (ज)।

(२१)

ग्रीषम तपति हर, प्यारे नव जलधर,
सेनापति सुखकर जे हैं दंपतीन कौं।
भुव तरवर जीव सजत[1] रुकल घर[2],
धरत कदम-तरु कोमल कलीन कौं॥
सुनि घनघोर, मोर कूकि उठे चहूँ ओर,
दादुर करत सोर भोर जामिनीन कौं।
काम धरे बाढ़ तरवारि, तीर, जम-डाढ़,
आवत असाढ़ परी गाढ़ बिरहीन कौं॥

(२२)

सुधा के भवन उपबन बीच छूटैं नल,
सलिल सरल धार तातैं निकरत है।
ऊरध गमन बारि, ताकी छबि कौं निहारि,
सेनापति कछू बरनन कौं करत है॥
मति कोऊ तरु बिन सींच्यौ रहि गयौ होइ,
ताहि फेरि[3] सींचौं यह जीय[4] मैं धरत है।
यातैं मानौं[5] जल, जल-जंत्र के कपट करि,
बाग देखिबे कौं ऊपर (?) कौं उछरत है॥

(२३)

पवन परम तातै लगंत, सहि नहिं सकत सरीर।
बरसत रबि सहसौं किरनि, अवनि तपति[6] के तीर॥
अवनि तपति के तीर, नीर मज्जन सीतल तन।
सेनापति रति करति, नारि धरि मुकता भूषन॥
भूषन मंदिर बास, सकल सूकत सरिता गन।
पात पात मुरझात जात बेली बन उपवन॥

---

[१] सजल (छ); [२] सकल सजत घन (ज); [३] ताकौ फिरि (ज); [४] जिय (ज); [५] मानौ (ज); [६] तपनि (छ)।

(२४)

बृष चढ़ि महा भूत-पति ज्यौं तपत अति,
सुखवत सिंधु सब[1] सरवर सोत हैं।
धनुष कौं पाइ खग[2] तीर सौं चलत, मानौं
ह्वै रही[3] रजनि दिन पावत[4] न पोत है॥
सेनापति उक्ति, जुगति, सुभ-गति, मति,
रीझत सुनत कबि कोबिद[5] कौं गोत हैं।
यातैं जानी जात जिय जेठ मैं सहस-कर,
दिनकर पूस मैं सहस-पाइ होत हैं॥

(२५)

आई रितु पाउस कृपाउस न कीनी कंत,
छाइ रह्यौ अंत, उर बिरह दहत है।
गरजत घन, तरजत है[6] मदन, लर-
जत तन-मन नीर नैंननि बहत है॥
अंग-अंग भंग, बोलै चातक बिहंग, प्रान
सेनापति स्याम संग रंगहिं चहत[7] है।
धुनि सुनि[8] कोकिल की बिरहिनि को किलकी,
केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत है[9]॥

(२६)

दामिनी दमक, सुरचाप की चमक, स्याम
घटा की झमक[10] अति घोर घनघोर तैं।
कोकिला, कलापी, कल कूजत हैं जित-जित,
सीकर ते सीतल[11], समीर की झकोर तैं॥

---

[१] सुषवत नदी नद (न); [२] पुनि (न); [३] गई (न); [४] लहतु (न); [५] सब कबिन (ज); [६] सु (क) (ग); [७] चहतर (क) (ग) (छ); [८] सुनि धुनि (ज); [९] हैं (क) (ग); [१०] जमक (क); [११] सीतल है हितल (ज)।

सेनापति आवन कह्यौ है[1] मनभावन, सु
लाग्यौ तरसावन बिरह-जुर जोर तैं।
आयौ सखी सावन, मदन[2] सरसावन, ल-
ग्यौ है बरसावन सलिल चहूँ ओर तैं॥

(२७)

दामिनी दमक सोई मंद बिहसनि, बग-
माल है बिसाल सोई[3] मोतिन कौं हारौ है।
बरन बरन घन रंगित बसन तन,
गरज गरूर सोई बाजत नगारौ है॥
सेनापति सावन कौं बरसा नवल बधू,
मानौं है बरति[4] साजि सकल सिंगारौ है।
त्रिविध बरन परयौ इंद्र कौं धनुष, लाल
पन्ना सौं जटित मानौं हेम खगवारौ है॥

(२८)

दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखौ,
आई रितु पाउस, न पाई प्रेम-पतियाँ।
धीर[5] जलधर की, सुनत धुनि धरकी, है[6]
दरकी[7] सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की, हिए मैं आनि खरकी 'तू
मेरी प्रानप्यारी' यह पीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ॥

---

[१] हो (क) (ख) (ग); [२] विरह (ञ); [३] महा (क) (ग) (घ); [४] वराति (छ); [५] धार (क) (ग) (छ); [६] सु (ञ); [७] धरकी (ख)।

(२९)

गगन-अँगन घनाघन तैं सघन तम,
सेनापति नैंक हू न नैंन मटकत हैं।
दीप की दमक, जीगनान की झमक छाँड़ि
चपला चमक और[1] सौं न अटकत हैं॥
रबि गयौ दबि मानौं ससि सोऊ धसि[2] गयौ,
तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत हैं।
मानौं महा तिमिर तैं भूलि परी[3] बाट, तातैं
रबि, ससि, तारे कहूँ भूले भटकत हैं॥

(३०)

नीके हौ निठुर कंत, मन लै पधारे अंत,
मैंन मयमंत, कैसे बासर बराइहौं।
आसरौ अवधि कौं, सो अवध्यौ बितीत भई,
दिन दिन पीत भई, रही मुरझाइ हौं॥
सेनापति प्रानपति साँची हौं कहति, एक
पाइ कै तिहारे पाइ प्रानन कौं पाइहौं।
इकली डरी हौं, धनु देखि कै डरी हौं, खाइ
बिस की डरी हौं घनस्याम मरि जाइहौं॥

(३१)

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति[4],
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै॥

---

[१] आन (ज); [२] ससि है उधसि (क) (ख) (ग) (घ); [३] गई (न) (ज); [४] बिधि (न)।

घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रबि गयौ खोइ कै ॥
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि[1],
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै ॥

(३२)

उन एते दिन लाए, सखी अजहूँ न आए,
उनए ते मेह भारी काजर पहार से ॥
काम के बसीकरन, डारैं अब सीकरन,
तातै ते समीर जे हैं सीतल तुसार से ॥
सेनापति स्याम जू कौं बिरह छहरि रह्यौ,
फूल प्रतिकूल तन डारत पजार से।
मोर हरखन लागे, घन बरखन लागे,
बिन बर खन लागे बरख हजार से ॥

(३३)

अब आयौ भादौं, मेह बरसै सघन क़ादौं,
सेनापति जादौ-पति बिना[2] क्यौं बिहात है।
रवि गयौ दबि, छबि अंजन तिमिर भयौ,
भेद निसि-दिन कौं न क्यौंहू जान्यौ जात है॥
होति चकचौंधी जोति चपला के चमके तैं,
सूझि न परत पीछे मानौं अधरात है।
काजर तैं कारौ, अँधियारौ भारौ गगन मैं,
घुमरि घुमरि घन घोर घहरात है ॥

---

[१] मानि (ज); [२] बिन (घ)।

(३४)

सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है (१) ।
जीवन अधार बड़ी गरज करन हार
तपति हरनहार देत मन काम है ॥
सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति
पावत अधिक तन मन बिसराम है ।
संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
आयौ घनस्याम सखि मानौं घनस्याम है ॥

(३५)

बरसत घन, गरजत[1] सघन, दामिनि दिपै अकास ।
तपति हरी, सफलौ करी, सब जीवन की आस ॥
सब जीवन की आस, पास नूतन तिन अनगन ।
सोर करत पिक मोर, रटत चातक बिहंग गन ॥
गगन छिपे रबि चंद, हरष सेनापति सरसत ।
उमगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत ॥

(३६)

सारंग[2] धुनि सुनि पीय की, सुधि आवत अनुहारि ।
तजि धीरज, बिरहिनि बिकल, सबै रहैं मनु हारि ॥
सबै रहैं मनुहारि, जे न मानैं जुवती-जन[3] ।
ते आपुन तैं जाइ धाइ भेंटति प्रीतम-तन ॥
मत न मान के चलहिं, देखि जलधर चपला रंग ।
सेनापति अति मुदित, देखि बासरै[4] निसा रंग ॥

---

[१] बरषत (ख); [२] सागर (क) (ख) (छ); [३] गन (न); [४] बासरौ (क) (ग) (छ) (न)।

(३७)

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ
जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
बिमल अकास, होत बारिज बिकास, सेना-
पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं ॥
छिति न गरद, मानौं रँगे हैं हरद सालि
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं[१] ।
मत्त हैं दुरद, मिट्यौ खंजन दरद, रितु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं ॥

(३८)

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं सृंग[२] फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के ॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन कार के ॥

(३९)

बिबिध बरन सुर चाप के न देखियत,
मानौं मनि भूषन उतारिबे के भेस हैं।
उन्नत पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं ॥

---

[१] रंगे से हरद सालि सोहत जरद कहूँ रही न गरद को मिलावै प्राण पीय कौ (न); [२] अंग मानौं (न)।

सेनापति आए तैं सरद रितु फूलि रहै,
आस-पास कास खेत खेत चहूँ देस हैं।
जोबन हरन कुंभ जोनि उदए तैं भई
बरसा बिरध ताके[1] सेत मानौं केस हैं॥

(४०)

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-
पति है[2] सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चंद, चाँदिनी छिटकि रही,
राम कैसौ[3] जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन हैं॥

(४१)

बरन्यौ कबिन कलाधर कौं कलंक, तैसौ
को सकै बरनि, कबि हू की मति छीनी है।
सेनापति बरनी अपूरब जुगति ताहि,
कोबिद बिचारौ कौंन भाँति बुद्धि दीनी है॥
मेरे जान जेतिक सौं सोभा होत जानी राखि,
तेतिकै कलान रजनी की छबि कीनी है।
बढ़ती के राखे, रैनि हू तैं दिन ह्वैहै, यातैं
आगरी मयंक तैं कला निकासि लीनी है॥

---

[१] माके (ख) (घ); [२] सेनापतिहि (ख); [३] को सो (क) (ख) (ग)।

(४२)

सरसी निरमल नीर पुनि चंद चाँदिनी पीन।
घन बरसै आकास अरु अवनी रज है लीन॥
अब नीरज है लीन, बिमल तारागन सोभा।
राज हंस पुनि लीन, सकल हिमकर की जो भा॥
इत सरवर, उत गगन दुहूँ, समता है परसी।
सेनापति रितु सरद, अंग अंगन छबि सरसी॥

(४३)

प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है।
ओढ़िबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौं घाम[1] है॥
धूप कौं अगर, सेनापति सोंधौ सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अंतर[2] कौं धाम है।
आए अगहन, हिम-पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है॥

(४४)

सूरै तजि भाजी, बात कातिक मौं[3] जब सुनी,
हिम की हिमाचल तैं चमू उतरति है।
आए अगहन, कीने गहन दहन हू कौं,
तित[4] हू तैं चली, कहूँ धीर न धरति है॥
हिय मैं परी है हूल दौरि गहि[5], तजी तूल,
अब निज मूल सेनापति सुमिरति है।
पूस मैं त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है॥

---

[१] घामु (क) (ग) (छ); [२] अंबर (न); [३] मैं (घ) (न);
[४] तिन (ज); [५] गृह (ज)।

(४५)

सीत कौं प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै॥
धूम नैंन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै।
मानौं भीत[1] जानि, महा सीत तैं पासारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै॥

(४६)

आयौ सखी पूसौ, भूलि[2] कंत सौं न रूसौ, केलि
ही सौं मन मूसौ जीउ ज्यौं[3] सुख लहत है।
दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत-
ताई हू कौं सेनापति बरनि कहत है॥
याही तैं निदान प्रात[4] बेगिदै न होत, होत
द्रौपदी के चीर कैसौ राति कौं महत है।
मेरे जान सूरज पताल तप ताल माँझ,
सीत कौं सतायौ कहलाइ कै[5] रहत है॥

(४७)

पूस के महीना काम-बेदना सही ना जाइ,
भोग ही के द्यौस निसि बिरह अधीन[6] के।
भोर ही कौं सीत सो न पावत छुटन, त्यौंही
राति आइ जाति है, दुखित गन दीन के॥

---

[१] मीत (ञ); [२] फूलि (ख); [३] जौ (छ); [४] प्रान (घ); [५] कै हलाई कैं (घ); [६] अधीन (ख) (ग) (घ) (छ)।

दिन की नन्हाई सेनापति बरनी न जाइ
रंचक जनाई मन आवै परवीन के।
दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमकि, ज्यौं न
फूलन हू पावत सरोज सरसीन के॥

(४८)

बरसै तुसार, बहै सीतल समीर नीर,
कंपमान उर क्यौंहू धीर न धरत है।
राति न सिराति, सरसाति बिथा बिरह की,
मदन अराति[1] जोर जोबन करत है॥
सेनापति स्याम हम धन हैं तिहारी, हमैं
मिलौ, बिन मिले, सीत पार न परत है।
और की कहा है[2], सबिता हू सीत रितु जानि,
सीत कौं सतायौ धन रासि मैं परत है॥

(४९)

मारग-सीरष, पूस मैं सीत हरन उपचार।
नीर समीरन[3] तीर सम, जनमत सरस तुसार॥
जन-मत सरसतु सार, यहै रमनी संग रहियै।
कीजै[4] जोबन भोग, जनम जीवन फल लहियै॥
तपन, तूल, तंबूल, अनल, अनुकूल होत जग।
सेनापति धन[5] सदन बास, न बिदेस, न मारग॥

(५०)

सिसिर मैं ससि कौं सरूप पावै सबिताऊ,[6]
घाम हू मैं चाँदिनी की दुति दमकति है[7]।
सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
रजनी की झाँईं बासर (?) मैं झमकति है॥

---

[1] अरति (न); [2] कहा ही (क) (ख) (ग) (घ) (छ); [3] नीर समीर सु (ञ); [४] कीजौ (क); [५] घन (क) (ग); [६] सविताहू (ख); [७] दामिनी की दुति धाम हू मै दमकति है (ञ)।

चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है[1]।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है॥

(५१)

सिसिर तुषार के बुखार[2] से उखारत[3] है,
पूस बीते होत सून[4] हाथ-पाइ ठिरि कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति पाई कछू सोचि कै सुमिरि कै॥
सीत तैं सहस-कर सहस-चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि कै॥

(५२)

अब आयौ माह प्यारे लागत हैं नाह, रबि
करत न दाह, जैसौ अवरेखियत है।
जानियै न जात, बात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातै[5] तनकौ बिसेखियत है।
कलप सी राति, सो तौ सोए न सिराति क्योंहू,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है।
सेनापति मेरे जान दिन हू तैं[6] राति भई,
दिन मेरे जान सपने मैं देखियत है॥

---

[१] तचि धीर धसकति है (ज); [२] बखार (ख); [३] उवारतु (क) (घ) (छ) (न); [४] मास होत सून (ख) (घ); [५] तातो (ज) छिन सौ लता तें (ख); [६] मैं (न)।

(५३)

कब[1] दिन दूलह के अरुन-बरन[2] पाइ,
पाइहौं सुभग, जिनैं पाइ पीर जाति है।
ऐसे मनोरथ, माह मास की रजनि, जिन
ध्यान सौं गवाँई, आन[3] प्रीति न सुहाति है॥
सेनापति ऐसी पदमिनी कौं दिखाई नैंक,
दूरि ही तैं दै कै, जात होत इहि भाँति है।
कछू मन फूली रही, कछू अन-फूली, जैसे
तन मन फूलिबे की साध न बुझाति है॥

(५४)

धायौ हिम दल, हिम-भूधर तैं सेनापति,
अंग-अंग जग, थिर-जंगम, ठिरत है।
पैयै न बताई, भाजि गई है तताई, सीत
आयौ आतताई, छिति-अंबर घिरत है॥
करत है ज्यारी, भेष धरि कै उज्यारी ही कौं,
घाम बार बार बैरी बैर सुमिरत है।
उत्तर तैं भाजि सूर, ससि कौं सरूप करि,
दच्छिन के छोर छिन आधक फिरत है॥

(५५)

आयौ जोर जड़कालौ[4], परत प्रबल पालौ,
लोगन कौं लालौ पर्यौ, जियैं कित जाइ कै।
ताप्यौ चाहैं बारि कर[5], तिन न सकत टारि,
मानौं हैं पराए, ऐसे भए ठिठराइ कै॥

---

[1] रवि (ज); [2] चरन (ज); [3] और (ज); [4] जोर जड़-कालो आयो (क) (ग) (घ) (ज); [5] करि (ज)।

चित्र कैसौ लिख्यौ, तेज हीन दिनकर भयौ,
अति सियराइ गयौ घाम पतराइ कै।
सेनापति मेरे जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं[1] सकोरि कर अंबर छपाइ कै॥

(५६)

परे तैं तुसार, भयौ[2] भार पतभार, रही
पीरी सब[3] डार, सो बियोग सरसति है।
बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रही है, आस-
पास निरजास, नैंन नीर बरसति[4] है॥
सेनापति केली बिन, सुन री सहेली! माह
मास न अकेली बन-बेली बिलसति है।
बिरह तैं छीन तन, भूषन बिहीन दीन[5],
मानहु बसंत-कंत काज[6] तरसति है॥

(५७)

लागैं ना निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
कही न बनति कछू जैसी तुम कंत की।
मिलन[7] की आस तैं उसास नाहीं छूटि जात,
कैसे सहौं सासना मदन मयमंत की॥
बीती है अवधि, हम अबला अबध, ताहि
बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जंत की।
कहियौ पथिक परदेसी सौं कि धनं पीछे,
ह्वै गई सिसिर कछू सुधि है बसंत की॥

---

[१] राख्यौ है (ख) (घ); [२] रह्यौ (ख); [३] सारव (ख); [४] परसति (क); [५] मलीन दिन (ज); [६] कांम (ज); [७] मिलिबे (न)।

(५८)

सोए संग सब राती सीरक परति[1] छाती
पैयत रजाई नैंक आलिंगन कीने तैं।
उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई
सुथरी अधिक देह कुंदन नवीने तैं॥
तन सुख रासि जाके तन के तनकौ छुवैं
सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं।
सब सीत हरन बसन कौं समाज प्यारी
सीत क्यौं न हरै उर अंतर के दीने तैं॥

(५९)

तब न सिधारी साथ, मीड़ति है अब हाथ,
सेनापति जदुनाथ बिना दुख ए सहैं।
चले मन-रंजन के, अंजन की भूली सुधि[2],
मंजन की कहा उनही के गूँदे केस हैं॥
बिछुरे गुपाल, लागै[3] फागुन कराल, तातैं
भई है बिहाल, अति मैले तन भेस हैं।
फूल्यौ है रसाल; सो तौ भयौ उर साल, सखी
डार न गुलाल, प्यारे लाल[4] परदेस हैं॥

(६०)

चौरासी समान, कटि किंकिनी बिराजति है[5],
साँकर[6] ज्यौं पग-जुग घुँघरू[7] बनाई है।
दौरी बे सँभार, उर-अंचल उघरि गयौ,
उच्च कुच कुंभ मनु[8], चाचरि मचाई[9] है॥

[१] सीकर परत (ञ); [२] सुधि भूली (क) (ग) (घ); [३] लागे (ञ); [४] न गुलाल (क) (ग) रंग लाल (ञ); [५] विराजमान (न); [६] संकर (ञ); [७] जे हरि (ञ); [८] चमू (क) (ग) (घ) (ञ) (न); [९] भजाई (क) (ग) (घ)।

लालन गुपाल, घोरि केसरि कौं रंग लाल,
भरि पिचकारी मुँह ओर कौं चलाई है।
सेनापति धायौ मत्त काम कौं गयंद जानि,
चोप[1] करि चपैं मानौं चरखी छुटाई है॥

(६१)

नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल
होरी मैं रही है मद जोबन के छकि कै।
चंपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कटि जाति है लचकि कै॥
लाल है चलायौ, ललचाइ ललना कौं देखि,
उघरारौ उर[2], उरबसी ओर तकि कै।
सेनापति सोभा कौं समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै॥

(६२)

मकर सीत बरसत बिषम, कुमुद कमल कुम्हिलात।
बन-उपबन फीके लगत, पियरे जोवत पात[3]॥
पियरे जोवत पात, करत जाड़ौ दारुन अति।
सो दूनौ बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति॥
भए नैंक माहौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर।
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर॥

[इति ऋतु वर्णनम्]

---

[१] चौप (क) (ग) (घ); [२] उर उघरारो (न); [३] जो बन पात (न)।

चौथी तरंग

रामायण वर्णन

(१)

सुरतरु सार की सवाँरी है विरंचि पचि[1],
　　कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
रानी कमला कौं[2] पिय-आगम कहन हारी,
　　सुरसरि सखी सुख दैनी प्रभु पाइ की॥
बेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
　　सब जग जानी सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन, भरत-सिर-मंडन, वे
　　बंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की॥

(२)

कंज के समान सिद्ध[3] -मानस-मधुप-निधि,
　　परम निधान[4] सुरसरि-मकरंद के।
सब सुख साज, सुर-राजन के सिरताज,
　　भाजन हैं मंगल[5] सुकृति रूप कंद के॥
सरजू-बिहारी रिषिनारी ताप-हारी[6], ज्ञान-
　　दाता हितकारी सेनापति मति मंद के।
बिस्व के भरन, सनकादि के सरन, दोऊ
　　राजत चरन महाराज रामचंद के॥

---

[१] रचि (क); [२] के (क); [३] सीय (न) सिद्धि (ख); [४] निधाम; [५] भाजत अमंगल (च) (ट); [६] साप हारी (ज)।

(३)

भूषित रघुबर बंस, भक्त-वत्सल भव-खंडन।
मुनि जन मानस हंस, विहित सीता-मुख मंडन॥
त्रिभुवन पालन[१] धीर, वीर रावन-मद गंजन।
उदित बिभीषन भाग[२], धेय निज परिजन रंजन॥
सुरपति, नरपति, भुजगपति, सेनापति बंदित[३] चरन।
राजाधिराज जय जय सदा, राम बिस्व मंगल करन॥

(४)

मंद मुसकान कोटि चंद तैं अमंद राजै[४],
दीपति दिनेस कोटि हू तैं अधिकानियै।
कोटि पंचबान[५] हू तैं महा बलवान, कोटि
कामधेनु हू तैं महादानि जग जानियै॥
और ठौर झूँठौ बरनन एतौ सेनापति,
सीतापति याहू तैं अधिक गुन-खानियै।
ऐसी अति उकति जुगति मो बतावौ जासौं,
राजा राम तीनि लोक नाइक बखानियै॥

(५)

धाता जाहि गावैं, कछू मरम न पावैं, ताहि
कैसे कै रिझावैं, भलौ मौन ठहराइयै।
रसना कौं पाइ; पाइ बचन सकति, बिन
राम-गुन गान, तऊ मन अकुलाइयै॥
जैसे बिन अनल, सलिल ही कौं दीपक दै,
दीपति-निधान भान कौं भलौ मनाइयै।
ऐसे, थोरी उकति, जुगति करि सेनापति,
राजा राम तीनि लोक तिलक[६] रिझाइयै॥

---

[१] पालक (ख); [२] साग (च) (ट); [३] बंदत (ख) (ज);
[४] जानि (न); [५] पंचमान (क) (ख); [६] नायक (ज)।

(६)

गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं,
संख्या सत-कोटि जाकी कहत प्रबीने हैं।
नारद तैं सुनी बालमीकि, बालमीकि हू तैं
सुनी भगतन, जे भगति-रस भीने हैं।
एती राम-कथा, ताहि कैसे कै बखानैं नर,
जातैं ए बिमल[1] बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
सेनापति यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कबित्त कछू कीने हैं ॥

(७)

बीर महाबली, धीर, धरम-धुरंधर है,
धरा मैं धरैया एक सारंग-धनुष कौं।
दानौ-दल मलन, मथन कलि-मलन कौं,
दलन है देव द्विज दीनन के दुख कौं ॥
जग अभिराम, लोक बेद जाकौं नाम, महा-
राज-मनि राम, धाम सेनापति सुख कौं।
तेज-पुंज रूरौ, चंद सूरौ न समान जाके[2],
पूरौ अवतार भयौ पूरन पूरुष कौं ॥

(८)

सोहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाइ, किधौं
चतुरंग संपति के अंग निरधार हैं।
किधौं ए पुरुष रूप चारि पुरुषारथ हैं,
किधौं बेद चारि धरे मूरति उदार हैं ॥

---

[१] मिलत (च) (ट); [२] जाकी (क)।

सब गुन आगर, उजागर, सरूप धीर[1],
सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं।
दीपति बिसाल, किधौं चारि दिगपाल, किधौं
चारौ[2] महाराजा दसरथ के कुमार हैं॥

(९)

पाँचौ सुरतरु कौं जौ एकै सुरतरु, एक
देह जौ बसंत रति-कंत की बनाइयै।
बीते, होनहार, चंद पून्यौं के सकल जोरि,
चंद[3] करि एकै जौ दृगन दिखराइयै॥
दसौ लोकपालन कौं एकै लोकपाल, एक
बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै।
सेनापति महाराजा राम कौं अनूप तब,
राज-तेज रूप नैंक बरनि बताइयै॥

(१०)

कीजे को समान, चापवान सौं बिराजमान,
बिक्रम-निधान, उपधान सिय बाम के।
परम कृपाल, दिगपालन के रछिपाल,
थंभ हैं बिसाल जे पताल देवधाम के॥
दीरघ उदार भुव-भार[4] के हरन हार,
पुजवन हार सेनापति मन काम के।
साजत समर बर, गाजत[5] जगत पर,
राजत प्रबल भुज दोऊ राजा राम के॥

---

[१] धर (क); [२] चारि (क) (ख) (न); [३] वढु (क) (ख); [४] भव भार (क) (ख) भुज भार (ज); [५] राजत (ख)।

(११)

तजि भुव-अंबर कौं, सीता के स्वयंबर कौं,
जुरे[1] नरदेव-देव के समूह पेखियै।
जाति न बखानी प्रभा, जनक नरिंद सभा,
सोभा ते[2] सुधरमा तैं सौगुनी बिसेखियै॥
सेनापति राम जू के आवत सुरासुर की,
छिपि गई छबि मानौं चित्र अवरेखियै।
तेज-पुंज-धारी जैसे सूरज उदित भए,
दूसरौ न तेज न तिमिर कहूँ देखियै॥

(१२)

सकल सुरेस, देस देस के नरेस, आइ
आसनन बैठे जे महा गरूर धरि कै।
जोबन के मद, कुल मद, भुज-बल मद[3],
संपति के मद सौं रहे निदान भरि कै[4]॥
सेनापति कहैं राम रूप धरषित भूप,
ह्वै रहे चकित, पै न रहे धीर धरि कै।
भूल्यौ अभिमान, देखे भानु-कुल-भानु, सब
ठाढ़े सिंहासनन तैं ह्वै रहे उतरि कै॥

(१३)

आयौ[5] राम चापहिं चढ़ाइबे कौं महा-बाहु,
सेनापति देखे मन मोद गयौ बाढ़ि कै।
अगन, गगन-चर, देखत तमासौ सब,
रह्यौ आसमान ह्वै बिमानन सौं मढ़ि कै॥

---

[१] जुर्यौ (क) (ज) (न); [२] कै (क) (ख) (ग) (ट); [३] भुव मद कुल मद बल (ख); [३] संपति के मद सौं छके से खरे भरि के (न); [५] आए (ज)।

आए सिद्ध चारन कुतूहल के कारन हैं,
बोलत बिरद बीर बानी हू कौं पढ़ि कै।
चख, चित, चाहति हैं, सूरति[1] सराहति हैं,
बाला चंद्र-मुखी चंद्रसालन[2] मैं चढ़ि कै॥

(१४)

दीरघ प्रचंड महा पीन भुजदंड जुग,
सुंदर बिराजत फनिंद हू तैं अति है।
लोचन बिसाल, राज-दीपति[3] दिपति भाल,
मूरति उदार कौं लजानौ[4] रति-पति है॥
चापहिं चढ़ाइबे कौं चल्यौ जुवराज[5] राम,
सेनापति मत्त गजराज कैसी गति है।
बिन कहे, दूरि तैं बिलोकत ही जानी जाति,
बीस बिसे दसौ दिगपालन कौं पति है॥

(१५)

त्रिभुवन रच्छन दच्छ, पच्छ रच्छिय कच्छप बर।
फन फनिंद संभार, भार दिग्गज तुव दुंभर॥
धरनि धुक्कि जनि परहि, मेरु डग मग जनि डुल्लहि।
सेनापति हिय फुल्लि क्यौं न बिरुदावलि बुल्लहि॥
इहि बिधि बिरंचि सुक्कितबदन, कुक्कि धीर चहुँ चक्क दिय।
करषत पिनाक दसरत्थ सुत राम हत्थ समरत्थ लिय॥

(१६)

हहरि गयौ हरि हिए, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
ध्रुव नरिंद थरहर्‌यौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय॥
अक्खि पिक्खि नहिं सकइ, सेस नक्खिन लग्गिय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल॥
उद्दंड चंड भुजदंड भरि, धनुष राम करषत प्रबल।
टुट्टिय पिनाकनिर्घातसुनि, लुट्टिय दिगंत दिग्गज बिकल॥

---

[१] बानी को (न); [२] चित्रसालनि (ज); [३] लाल दीपति (ख); [४] जनानो (क) (ख) (न); [५] जब राजा (न) (ज)।

(१७)

तोरयौ है पिनाक, नाक-पाल बरसत फूल,
सेनापति कीरति बखानै रामचंद की।
लै कै जयमाल, सिय बाल है बिलोकी छबि,
दसरथ लाल के बदन-अरबिंद की॥
परी पेम-फंद, उर बाढ़यौ है अनंद अति,
आछी मंद-मंद चाल चलति गयंद की।
बरन कनक बनी, बानक बनक[1] आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की॥

(१८)

देखि चरनारबिंद बंदन करयौ बनाइ,
उर कौं बिलोकि, बिधि कीनी[2] आलिंगन की।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इंदु सुंदर बदन की॥
मानौं एक पतिनी के ब्रत की, पतिब्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
सिय[3] रघुराई जू कौं माल पहिराई, लौन
राई करि वारी सुंदराई त्रिभुवन की॥

(१९)

मा जू महारानी कौं बुलावौ महाराज हू कौं,
लीजै मत[4] केकई सुमित्रा हू के जिय कौं।
रातिन कौं[5] बीच सात रिषिन के बिलसत,
सुनौ उपदेस ता अरुंधती के पिय कौं॥

---

[१] कनक (ख); [२] कीनी बिधि (न); [३] सीय (न); [४] मतु (न); [५] मैं (च)।

सेनापति बिस्व मैं बखानैं[१] बिस्वामित्र नाम,
गुरु बोलि पूछियै, प्रबोध करैं हिय कौं।
खोलियै निसंक यह धनुष न संकर कौं,
कुँवर मयंक-मुख[२] ! कंकन है सिय कौं॥

(२०)

सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम,
सेनापति देखि नैंन नैंकहू न मटके।
रूप देखि देखि रानी, वारि फेरि पियैं पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत कैधौं कर चटके॥
पहुँची के हीरन मैं दंपति की झाँईं परी,
चंद बिंबि[३] मानौं मध्य[४] मुकुर निकट के।
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के दृग प्रतिबिंबन सौं[५] अटके॥

(२१)

आनंद मगन चंद महा मनि-मंदिर मैं,
रमैं सियराम सुख, सीमा हैं सिंगार की।
पूरन सरद-ससि सोभा सौं परस पाइ,
बाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की॥
भौन[६] के गरभ[७], छबि छीर की छिटकि रही,
बिबिध रतन जोति अंबर[८] अपार की।
दोऊ बिहसत बिलसत सुख[९] सेनापति,
सुरति करत छीर-सागर बिहार की॥

---

[१] बखानौ (क) (ग) (ज); [२] कुँवर कमल नैन (ख) (च) कुँवरि मयंक मुखी (ज); [३] बिंब (क) (च) (ज); [४] मधि (ज); [५] मैं (च); [६] भौर (क) नौर (न); [७] गरब (न) अगार (ख); [८] अंतर (क) (च) (ट) (ज); [९] कवि (न) मुख (ज)।

(२२)

तीनि लोक ऊपर सरूप पारबती, जातैं
संभु संग रंग, अरधंग प्रीति पाई है।
ताही पारबती के अछत मोहनी के रूप,
मोहि कै महेस मति महा भरमाई है॥
सोई राम मोहिनी के रूप कौं धरन हार,
जाके रूप मोह्यौ और बाल बिसराई है।
सेनापति यातैं सुर नर सुंदरीन हू तैं,
सुंदर परम सिय रानी की निकाई है॥

(२३)

मोहिनी कौं सिव, सारदा हू कौं बिरंचि, पुर-
हूत हू अहिल्या कौं बिलोकि न भलाई की।
भूली है समाधि[1] सिद्धि रिद्धि भुलई है सुधि,
पारबती, सावित्री, सची सरूपताई की॥
सेनापति राम एक नारी ब्रत धारी भयौ,
सो तौ न बड़ाई रघुबीर धीरताई की।
जा पर गँवारि देव नारि वारि डारी, सो तौ
महिमा अपार सिय रानी की निकाई की॥

(२४)

जनक नरिंद नंदिनी कौं बदनारबिंद,
सुंदर बखान्यौ सेनापति बेद चारि कै।
बरनी न जाई जाकी नैंक हू निकाई, लौन
-राई करि पंकज निसंक डारे[2] वारि कै।

---

[1] भलाई (ज); [2] निकाई डारी (ज)।

बार बार जाकी बराबरि कौं बिधाता अब,
रचि पचि बिधु कौं बनावत सुधारि कै।
पून्यौं कौं बनाइ जब जानत न वैसौ भयौ,
कुहू के कपट तब[1] डारत बिगारि कै॥

(२५)

भयौ एक नारी ब्रत-धारी हरि-कंत, ताहि
बिन मिले मोहिं कहौ कैसे धौं[2] बनति है।
सुंदर नरिंद रामचंद जू कौं मुख-चंद,
सेनापति देखि बाढ़ी गाढ़ी अति रति है॥
हौं तो याही भाँति प्रानपति की भगति करौं,
सिय[3] तौ सुहाग भाग पूरी बिलसति है।
यह जिय जानि, मेरे जान रानी जानकी के,
मध्य रसना के[4] आप सारदा बसति है॥

(२६)

भीज्यौ है रुधिर भार, भीम, घनघोर धार,
जाकौं सत कोटि हू तें कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि कै, निछत्रिय करी है छिति
बार इकईस, तेज-पुंज कौं अधार है॥
सेनापति कहत कहाँ हैं रघुबीर कहौ ?
छोह भरचौ लोह, करिबे[5] कौं निरधार है।
परत पगनि, दसरथ कौं न गनि, आयौ
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार है॥

---

[१] करि (च) (ट); [२] कै (ख); [३] सीय (च) (ज) (न); [४] मै (ज); [५] लरिबे (न)।

(२७)

लीनौ है निदान अभिमान सुभटाई ही कौं,
छाँड़ी रिषि-रीति है न राखी कहनेऊ की।
डारु रे हथ्यार, मार मार करैं आए[1], धरे[2]
उद्धत कुठार सुधि-बुधि[3] ना भनेऊ की॥
सेनापति राम गाइ-बिप्र कौं करैं प्रनाम,
जाके उर[4] लाज है बिरद अपनेऊ की।
आज जामदग्नि! जानतेऊ एक घरी माँझ[5],
होती जौ[6] न ज्यारी यह जिरह जनेऊ की॥

(२८)

बज्र हू दलत, महा कालै संहरत, जारि
भसम करत प्रलै काल के अनल कौं।
झंझा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल, थल करैं जल कौं॥
पब्बै मेरु-मंदर कौं फोरि[7] चकचूर करैं,
कीरति कितीक, हनैं दानव के दल कौं।
सेनापति ऐसे[8] राम-बान तऊ बिप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं॥

(२९)

बिस्व के सुधारन कौं, काम-जस धारन कौं,
आप ही तैं आयौ, तजि आपने भवन कौं।
ताकौं राज अवनी कौं, कहौं कहा अब नीकौ,
बसिबौ बनी कौं, दास-आस पुजवन कौं॥

---

[१] करै आयो (ज); [२] धरैं (च); [३] सुद्धि बुद्धि (क) (ज) (ञ); [४] मन (ट); [५] आज जामदगिनि को जानते घरी मैं राजु (ज); [६] ज्यौ (क) (ख); [७] फेरि (ज); [८] ऐसो (ज)।

जद्यपि है ऐसी, तऊ चाहियै कह्यौई कछू,
यातैं सेनापति कहै सज्जन[1] स्रवन कौं।
देवन के हेत दसरत्थ[2] कौं निकेत छाँड़ि,
पन्नगारि-केतु चल्यौ पाइन ही बन कौं॥

(३०)

पिक्खि हरिन मारीच, थप्पि लक्खन सिय सत्थहिं।
चल्यौ बीर[3] रघुपत्ति, क्रुद्ध उद्धत धनु हत्थहि॥
परत पग्ग-भर मग्ग, कित्ति सेनापति बुल्लिय।
जलनिधि-जल उच्छलिय, सब्ब पब्बै गन डुल्लिय॥
दब्बिय जु छित्ति[4] पत्ताल कहँ, भुजग-पत्ति भग्गिय[5] सटकि।
रक्खिय जु हड्डि सुड्डिय कठिन, कमठ पिट्ठि टुट्टिय चटकि॥

(३१)

सेनापति सी-पति की अंतर-भगति, रति,
मुकति के हेत ताकी जुगति बनाइ कै।
बंचना सी करि राम-लछन की ताही छन,
कंचन-मरीच मृग-माया उपजाइ कै॥
बीस-भुजदंड दससीस बरिबंड तब,
गिद्धराज[6] हू के अंग-अंग घोर घाइ कै॥
राघव की जाया, ताकी[7] कपट की काया,
सोई छाया हरि लै गयौ गगन-पथ धाइ कै॥

---

[१] सुजन (ज); [२] दसरथ (ज) (ञ); [३] धीर (न); [४] खिति (ञ); [५] भज्जिय (ख); [६] गीधराज (ञ); [७] जाकी (ख)।

(३२)

चल्यौ हनूमान राम-बान के समान, जानि[1]
सीता सोध-काज दसकंधर नगर कौं।
राम कौं जुहारि, बाहु-बल कौं सँभारि करि,
सबही के संसै निरवारि डारि उर[2] कौं॥
लागी है न बार, फाँदि गयौ पारावार पार,
सेनापति कबिता बखानैं बेग-बर[3] कौं।
खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच,
दृगन कौं तारौ दौरि मिलै दिनकर कौं॥

(३३)

सेनापति महाराजा राम की चरन-रज,
माथे लै चढ़ाई, है बढ़ाई देह बल मैं।
लै कै कर-मूठी माँझ कंचन अँगुठी, चल्यौ
धीर[4] गरजत साखा-मृगन के दल मैं॥
एते मान कूद्यौ[5] महा बेग सौं पवन-पूत
पारावार पार फाँदि गयौ[6] आध पल मैं।
दीनी न दिखाई, छाँह छीरध्यौ न छ्वाई, परचौ
बोल की सी[7] झाँई जाइ लंका के महल मैं॥

(३४)

सीता सोध-काज, कपिराज चल्यौ पैज करि,
तेज बढ़्यौ पाए राम पाइ के परस के।
ताके महा बेग की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति पाइ जे करैया हैं सुजस के॥

---

[१] जान (क) (ख); [२] डर (क); [३] बेग चर (क) (ग); [४] वीर (ट); [५] छूट्यौ (ज); [६] चल्यौ (ज); [७] कैसी (ज)।

कब चढ़ि कूद्यौ, पर्यौ पार के पहार कब,
अंतर न पायौ, दूनौ देह भार मसके।
देखौ छल बल, दोऊ एक ही पलक बीच,
परे वार पार के[1] बराबर ही धसके॥

(३५)

महा बलवंत, हनुमंत बीर अंतक ज्यौं,[2]
जारी है[3] निसंक लंक बिक्रम सरसि कै।
उठी सत-जोजन तैं चौगुनी झरफ, जरे
जात सुर-लोक[4], पै न सीरे होत ससि कै॥
सेनापति कछू ताहि[5] बरनि कहत मानौं
ऊपर तैं परे तेज-लोक हैं बरसि कै।
आगम बिचारि राम-बान कौ अगाऊ किधौं,
सागर तैं पर्यौ बड़वानल निकसि कै॥

(३६)

कोप्यौ रघुनाइक कौ पाइक[6] प्रबल कपि,
रावन की हेम-राजधानी कौं दहत है।
कोटिक लपटैं उठीं अंबर दपेटे लेति,
तप्यौ तपनीय पयपूर ज्यौं बहत है॥
लंका बरि जरि एते मान है तपत भई,
सेनापति कछू ताहि बरनि कहत है।
सीत माँझ उत्तर तैं, भानु भाजि दच्छिन मैं,
अजौं ताही आँच ही के आसरे रहत है॥

---

[१] पब्बै पारावार के (ग); [२] जो (ग); [३] है (क); [४] सब लोक (ग); [५] ताहि कछु (ग); [६] पावक (क) (ग)।

(३७)

बिरच्यौ प्रचंड बरिवंड है पवन-पूत,
जाके भुजदंड दोऊ गंजन गुमान के।
इत तैं पखान चलैं, उत तैं प्रबल बान,
नाचैं हैं कबंध, माचे महा घमसान के॥
सेनापति धीर[1] कोई धीर न धरत सुनि,
घूमत गिरत गजराज हैं दिसान के।
बरजत देव कपि, तरजत रावन कौं,
लरजत गिरि गरजत हनूमान के॥

(३८)

रह्यौ तेल पी ज्यौं घियहू कौं पूर भीज्यौ, ऐसौ
लपट्यौ समूह पट कोटिक पहल कौं।
बेग सौं भ्रमत नभ देखियै बरत[2] पूँछि,
देखियै न राति जैबौ[3] महल महल कौं॥
सेनापति बरनि बखानै मानौं धूम-केतु,
उदयौ बिनासी दसकंधर के दल कौं।
सीता कौं संताप, कि खलीता उतपात कौं, कि
काल कौं पलीता प्रलै काल के अनल कौं॥

(३९)

पूरबली जासौं पहिचान ही न कौहू,[4] आइ
भयौ न सहाइ जो सहाइ की ललक मैं।
पहिले ही आयौ, बैरी बीर कै[5] मिलायौ, छिन
छ्वायौ सीस लाल-पद नख की झलक मैं॥

---

[१] वीर (ख) [२] जरत (ज); [३] छूवैबौ (ख) (ज); [४] काहू (ज); [५] फेरिकै (ज)।

सेनापति दया-दान-बीरता बखानै कौन,
जो न भई पीछे आगे होनी न खलक मैं।
परम कृपाल, रामचंद भुवपाल, बिभी-
षन दिगपाल कीनौ पाँचई पलक मैं॥

(४०)

रावन कौं बीर, सेनापति रघुबीर जू की
आयौ है सरन, छाँड़ि ताही मद-अंध कौं।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी[1] है ओप,
नामन कौं[2] दुज्जन, दलन दीन-बंध कौं॥
देखौ दान-बीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानै सत्यसंध कौं।
लंका दसकंधर की दीनी है बिभीषन कौं,
संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकंध कौं॥

(४१)

सेनापति राम-बान पाउकै बखानै कौन,
जैसी सिख दीनी सिंधुराज कौं रिसाइ कै।
ज्वालन के जाल जाइ पजरे पताल, इत
छै गयौ गगन, गयौ सूरजौ समाइ[3] कै॥
परे मुरझाइ ग्राह-सफर फरफराइ,
सुर कहैं हाइ को बचावै नद-नाइकै!
बूँद ज्यौं तए की तची, कमठ की पीठ पर,
छार भयौ जात छीरसिंधु छननाइ कै॥

---

[१] कही (ज); [२] नाम का है (ज); [३] छिपाइ (च) (ट)।

(४२)

सेनापति राम अरि-सासना[1] के साइक तैं,
प्रगट्यौ हुतासन, अकास न समात है।
दीन महा मीन, जीव-हीन जलचर चुरैं,
बरुन मलीन कर मीड़ै, पछितात है॥
तब तौ न मानी, सिंधुराज अभिमानी, अब
जाति है न जानी कहा होत उतपात है।
संका तैं सकानी, लंका रावन की रजधानी,
पजरत पानी धूरि-धानी भयौ जात है॥

(४३)

सेनापति राम-बान पाउक अपार अति,
डार्यौ पारावार[2] हू कौं गरब गवाँइ कै।
को सकै बरनि बारि-रासि की बरनि, नभ
झ्वै गयौ झरनि, गयौ तरनि समाइ कै॥
जेई जल-जीव बड़बानल के त्रास भाजि,
एकत रहे हे सिंधु सीरे नीर आइ कै।
तेई बान-पाउक तैं, भाजि कै तुसार जानि,
धाइ कै परे हैं बड़वानल मैं जाइ कै[3]॥

(४४)

चुरइ[4] सलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि-जल झंपिय।
मच्छ-कच्छ उच्छरिय, पिक्खि अहिपति उर कंपिय॥
लपट लग्गि उच्छरत, चटकि फुट्टत नग पत्थर।
सेनापति जय-सद्द[5], बिरद, बोलत बिद्याधर॥
अति ज्वाल-जाल पज्जलिय घिरि, चहइ भग्गि बाड़व अनल।
प्रगट्यौ प्रचंड पत्ताल जिमि, राम-बान पाउक प्रबल॥

---

[१] नासन (ज); [२] सिंधुराज (न); [३] अनि कै परत बड़वानल मैं धाइ कै (ज); [४] चुरहि (ख); [५] जय सब्द (ख)।

(४५)

जहँ उच्चरत बिरंचि बेद, बंदत सुर-नाइक।
जलधि कूल अनुकूल, फूल बरसत सुख-दाइक॥
जहँ[1] उघटत संगीत, गीत बाँके[2] सुर पूरत।
सेनापति अति मुदित संभु, अरधंग बधू रत॥
जहँ बजाइ बीना मधुर, मन नारद सारद हरत।
राजाधिराज रघुबीर तहँ, उदधि-बंध आयसु करत॥

(४६)

इत बेद-बंदी बीर बानी सौं बिरद बोलैं,
उत सिद्ध-बिद्याधर गाइ[3] रिझावत हैं।
इत सुर-राज, उत ठाढ़े हैं असुर-राज,
सीस दिगपाल, भुवपाल, नवावत हैं॥
सेनापति इत महाबली साखामृग-राज,
सिंधुराज बीच गिरि-राज गिरावत हैं।
तहाँ महाराजा राम, हाथ लै धनुष[4] बान,
सागर के बाँधिबे कौं ब्यौंत बतावत हैं॥

(४७)

आयसु अपार पारावार हू के पाटिबे कौं,
सेनापति राम दीनौ साखा के मृगन कौं।
धारत चरन-रज, सार-तन[5] भए ऐसे,
हारत न क्यौंहू जे उखारत[6] नगन कौं॥
पब्बय परत पयपूर उछरत, भयौ
सिंधु के समान आसमान सिद्ध-गन[7] कौं।
मानहु पहार के प्रहार तैं डरपि करि,
छाँड़ि कै धरनि चल्यौ सागर गगन कौं॥

---

[१] जय (ञ); [२] वाके (ट); [३] रंग (न); [४] प्रबल (क) (ख) (ग) (ञ); [५] सूत तन (न); [६] उबारत (न); [७] सिंध गन (ज) (न)।

(४८)

बहुरि बराह अवतार भयौ किधौं दिन
बिन ही प्रलय प्रगटत प्रलै काल के।
सेनापति फेरि[१] सुरासुर हैं मथत किधौं,
छिपै छीरधर[२] त्रास असनि कराल के॥
सोचत सकल अप-अपने बिकल जिय,
लागत प्रबल बान राम भुवपाल के।
परी खलभलि, जलनिधि-जल होत थल,
काँपे हलहल खल दानव पताल के॥

(४९)

सेनापति राम कौ प्रताप अद्भुत, जाहि[३]
गावत निगम, पै न पार वे परत हैं[४]।
जाके एक बल, जलनिधि-जल होत थल,
तेल ज्यौं अनल मध्य, बारिधि बरत हैं॥
सिंधु उपकूल ठाढ़े रघुबंस[५] सारदूल,
अरि प्रतिकूल हिय हूल हहरत हैं।
मंदर के तूल[६] जरैं जिनकी पताल मूल,
ऐसे[७] गिरि तोड़, तूल-फूल ज्यौं तरत[८] हैं॥

(५०)

पेड़ि तैं उचारि,[९] बारि-रासि हू के बारि बीच,
पारि पारि पब्बय पताल आटियत हैं।
कीनौ है न काहू, आगे करिहै न कोई, ऐसौ
सेनापति अद्भुत ठाठ ठाटियत है॥

---

[१] फिरि (न); [२] छितिधर (क); [३] ताहि (न); [४] तऊ पार न परत हैं (न); [५] रामचंद (न); [६] सूल (क) (ख) (ग) (न); [७] जैसे (न); [८] जरत (ज); [९] उखारि (ज) (न)।

सूर सरदार, जैतवार दिगपालन कौं,
महा मद-अंध दसकंध डाटियत है।
देवन के काज, धरि लाज महाराज, करि
आज अनुगति सिंधुराज पाटियत है॥

(५१)

राम के हुकुम, सेनापति सेतु काज कपि,
दौरे दिगपालन की डारि कै अमन कौं।
लै चले उचारि[१] एक बार ही पहारन कौं,
वीर रस फूलि ऊलि[२] ऊपर गगन कौं॥
हाले देव लोक धराधरन के धकान[३] सौं,
धुकत[४] बिलोकि, सिद्ध बोलत बचन कौं।
घिरयौ आसमान, पिसे[५] जात पिसेमान सुर[६],
लीजै नैंक दया, मने कीजै बानरन कौं॥

(५२)

कीजियै रजाइस कौं हरि पुर जाइ सकौं,
पौनौं वीर जाइ सकौं जा तन खरो सौ है।
काहू कौं न डर, सेनापति हौं निडर सदा,
जाके सिर ऊपर जु साँईं राम तोसौ है॥
कुलिस कठोरन कौं देखौं नख-कोरन कौं,
लाए नैंक पोरन कौं मेरु चून कैसौ है।
चूर करौं सोरन कौं, कोटि कोट तोरन कौं,
लंका गढ़ फोरन कौं, को रन कौं मोसौ है॥

---

[१] उखारि (ज) (न); [२] फूली अलि (न); [३] धकन (ज);
[४] धुकत (ज); [५] पिचे (ज); [६] सुर (न)।

(५३)

धरयौ पग पेलि दसमत्थ हू के मत्थ पर,
जोरौ आइ हत्थ समरत्थ बाहु-बल मैं।
यह कहि कोपि कै कपीस पाउँ रोपि करि,
सेनापति बीर बिरझानौ बैरि-दल[1] मैं॥
फूस ह्वै फनिंद गए पब्बै चकचूर भए,
दिग्गज गरद, दल[2] दारुन दहल मैं।
पाइ बिकराल के धरत ततकाल, गए
सपत पताल फूटि पापर से पल मैं॥

(५४)

धरयौ है चरन दससीस हू के सीस पर,
ईस की असीस कौं गरब सब लोपि कै।
सेनापति महाराजा राम की दुहाई मोहिं,
तोरौं गढ़ लंक[3], चकचूर करौं कोपि कै॥
आइ कै उठावौ[4] बाहु-बल कौं गुमान जाहि,
दीपति बढ़ावौ सुभटाई की सु ओपि कै।
बैरिन तरजि, भुज ठौंकि कै गरजि, कही
महा बली बालि के कुमार पाउँ रोपि कै॥

(५५)

बालि कौं सपूत, कपि-कुल-पुरहूत, रघु-
बीर जू कौं दूत, धारि[5] रूप बिकराल कौं।
जुद्ध-मद गाढ़ौ, पाउँ रोपि भयौ ठाढ़ौ, सेना-
पति बल बाढ़ौ, रामचंद भुवपाल कौं॥

---

[१] पर दल (क) (ख) (ग); [२] दिल (क); [३] लंका (ख) (न); [४] उठावै (न); [५] धारी (क) (ग) (ज) धरि (न)।

कच्छप कहलि रह्यौ, कुंडली टहलि गए,
दिग्गज दहलि, त्रास पर्‌यौ चकचाल कौं।
पाउँ के धरत, अति भार के परत, भयौ
एकै है[1] परत मिलि सपत पताल कौं॥

(५६)

सीता फेरि दीजै, लीजै ताही की सरन, कीजै
लंक हू निसंक, ऐसे जीजै आप है भली।
सूल-धर हर तैं न ह्वैहै धरहरि, कुंभ-
करन, प्रहस्त, इंद्रजीत की कहा चली॥
देखौ[2] सब देव, सिद्ध बिद्याधर सेनापति,
धीर बीर बानी सौं पढ़त[3] बिरुदावली।
सागर के तीर, संग लछन प्रबल बीर,
आयौ राजा राम दल जोरि कै महाबली॥

(५७)

पजरत पाउक, न चलत पवन कहूँ[4],
नैंक न रहत लागि[5] तेज ससि सूर सौं।
भूलि जात गरज, सकल सात सागरन,
लीन ह्वै तरंग मीन रहैं पयपूर सौं॥
अमर समर तजि, भाजैं भयभीत मन,
सेनापति कौन समुहात[6] ऐसे[7] सूर सौं।
महा बली धराधर राज कौं धरन हार,
जब चढ़ै कोपि दसकंधर गरूर सौं॥

---

[१] एक ही (च) एकई (ञ); [२] देखै (न); [३] पठत (क); [४] कहू (ञ); [५] लगि (ञ); [६] सम होत (च); [७] अति (क) (ख) (ग) (ज) नर (ञ)।

(५८)

वीर रस मद माते, रन तैं न होत हाँते,
दुहू के निदान अभिमान चाप बान कौं।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
हिय हरषत, जुद्ध करत बखान कौं॥
सेनापति सिंह सारदूल से[1] लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान[2] कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं॥

(५९)

सारंग धनुष कुंडलाकृति बिराजै बीच,
तामस तैं लाल मुख लाल कौं लसत है।
कान-मूल कर, हेम-बान कौं करत झर,
ताकौं सुर नर चलत न (?) दरसत है॥
ताकी उपमा कौं सेनापति को बखानि सकै,
एक अंस[3] मन उपमाहिं[4] परसत है।
मंडल के बीच भानु-मंडल उदित मानौं,
तेज-पुंज किरन समूह बरसत है॥

(६०)

काढ़त निषंग तैं, न साधत[5] सरासन मैं,
खैंचत, चलावत, न बान पेखियत है।
स्रवन मैं हाथ, कुंडलाकृति धनुष बीच,
सुंदर बदन इकचक[6] लेखियत है॥

---

[१] सों (ज); [२] देवता जुधान (क) (ख) (ग) (ट); [३] अंग (ज); [४] मनु रूप माहि (क) (ग) (ज) मानों उपमा को (ट); [५] साजत (ख); [६] एक टक (ज)।

सेनापति कोप ओप ऐन हैं अरुन-नैंन,
संवर-दलन मैंन तैं[1] बिसेखियत है।
रह्यौ नत ह्वै कै अंग ऊपर कौं संगर मैं
चित्र कैसौ लिख्यौ राजा राम देखियत है॥

(६१)

जिनकी पवन फौक, पंछिन मैं पंछिराज,
गौरव मैं गिरि, मेरु मंदर के नाम के।
पोहैं दिगपाल बपु, अंबर बिसाल[2] बसैं,
भाल मध्य निकर दहन दिन-धाम[3] के॥
अनल कौं जल करैं, जल हू कौं थल करैं,
अगम सुगम[4], सेनापति हित काम के।
बज्र हू तैं दारुन, दनुज-दल-दारन, वे
पब्बय-बिदारन, प्रबल बान राम के॥

(६२)

जुद्ध-मद-अंध दसकंधर के महा बली,
बीर महा बीर डारे बानर बितारि[5] कै।
कोऊ तुंग स्रृंगनि, उतंग भूधरन कोऊ,
जोई हाथ परैं सोई डारत उखारि कै॥
जौ कहूँ नरिंद सेनापति रामचंद, ताकी
बाहु अध-चंद सौं न डारै निरवारि कै।
तौतौ[6] कुंभकरन चलाइवे कौं फूल जिमि,
लेतौ मारतंड हू कौं मंडल उचारि कै॥

---

[१] सो (न); [२] विलास (ख); [३] बिन धाम (ख) (ट); [४] सुभग (न); [५] विदारि (ज); [६] तौलौं (न)।

(६३)

चंडिका-रमन, मुंड-माल[1] -मेरु करिबे कौं,
मुंड कुंभकरन कौ माँग्यौ चित चाइ कै।
सेनापति संकर के कहे अनगन गन,
गरब सौं दौरे हर-बर सब धाइ कै॥
जोर कै उठायौ, जुरि-मिलि कै सबन तौहीं[2],
गिरि हू तैं गरुऔ, गिर्‌यौ है डगुलाइ कै।
हाली भुव, गगन की आली[3] चपि चूर भई,
काली भाजी, हँस्यौ है कपाली[4] हहराइ कै॥

(६४)

पच्छन कौं धरे, किधौं सिखर सुमेर के हैं,
बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धहिं करत हैं।
किधौं मारतंड के द्वै मंडल अडंबर सौं,
अंबर मैं किरन की छटा बरसत हैं॥
मूरति कौं धरे सेनापति द्वै धनुरबेद,
तेज रूपधारी[5] किधौं अस्त्रनि अरत हैं।
हेम-रथ बैठे, महारथी[6] हेम-आनन सौं,
गगन मैं दोऊ[7] राम-रावन लरत हैं॥

(६५)

सोहत बिमान, आसमान मध्य भासमान[8],
संकर, बिरंचि, पुरहूत, देव, दानौ है।
करत बिचार, कहत न समाचार हर-
पत सब चार दस-मुख आगे मानौ है॥

---

[१] रुंडमाला (ख) (ग); [२] तोऊ (ख); [३] गगन को चाली (ग); [४] पिनाकी (ग); [५] रूपधारे (ग); [६] महारथ (क) (ख) (ग); [७] बैठे (ग); [८] भासमान मध्य आसमान (ट)।

सेनापति सारदा की देखौ चतुराई, बात
कही पै दुराई मन बैरी तैं सकानौ है।
अमर बखानैं राम-रावन के समर कौं,
गिरि भुव अंबर मैं रावन समानौ है॥

(६६)

सुर अनुकूल भरे, फूल बरसत फूलि[1],
सेनापति पाए हैं समूह सुख साज के।
जै जै सद्द भयौ, दसकंधर-दलन हू कौं,
गूँजे हैं[2] दिगंत दस परत अवाज के॥
जुद्ध मध्य जूझि दसकंध के परत, नाद
संकर बजायौ, सिद्ध भए मन काज के।
भुवन के भय भाजे, दिग्गज गँभीर गाजे,
बाजे हैं नगारे दरबार देवराज के[3]॥

(६७)

पावक प्रचंड, राम पतिनी प्रवेस कीनौ[4],
पतिब्रत पूरी पै न त्रासै परसति है।
सत्त सिय रानी जू के आगि सियरानी जाति,
हियरा हिरानी देव-सभा दरसति है॥
सेनापति बानी सौं न जाति है बखानी, देह
कुंदन तैं अधिकानी बानी सरसति है।
लागत ही लूक मानौं लागत पिलूक[5] नभ,
होति जै जै[6] कूक जगाजोति परसति है॥

---

[१] फूल (क) (ख) (ग) (ज); [२] गरजे (ज); [३] बाजे बहु बाजे दरवाजे देवराज के (ज); [४] कर्यौ (क); [५] उलूक (ज); [६] जैसे (क) (ख) (ग)।

(६८)

सोहैं संग सिय रानी दृग देखि सियरानी,
सेनापति नियरानी सबै आस फलि कै।
फूल के बिमान, आसमान मध्य भासमान,
कोटि सुरपति दिनपति डारे बलि कै॥
आनँद मगन मन, चौदहौ भुवन जन,
देखिबे कौं आए नरदेव-देव चलि कै।
दसरथ-नंद रघुकुल-चंद रामचंद,
आयौ दसकंधर के दल दलमलि कै॥

(६९)

भए हैं भगत भगवंत के भजन-रस[1],
ह्वै रहे बिबेकी, जग[2] जान्यौ जिन[3] सपनौ।
सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
पायौ मनोरथ, सब काहू अप-अपनौ॥
यह अदभुत, सेनापति है भजन कोई[4],
कह्यौ न बनत तन-मन कौं अरपनौ।
जैसौ हनूमान जान्यौ भजन कौं रस, जिन
राम के भजन ही लैं जीबौ माँग्यौ अपनौ॥

(७०)

कीनी परिकरमा छलत बलि बामन की,
पीछे जामदगनि कौं दरसन पायौ है।
पाइक भयौ है, लंक-नाइक-दलन हू कौं,
दै कै जामवंती भलौ कान्ह[5] कौं मनायौ है॥

---

[१] रत (ञ); [२] जन (ट); [३] जिय (न); [४] कोऊ (ज); [५] काहू (ट)।

ऐसे मिलि औरौ अवतारन कौं जामवंत,
अति सिय-कंत ही कौं सेवक कहायौ है।
सेनापति जानी यातैं[1] सब अवतारन मैं,
एक राजा राम गुन-धाम करि गायौ है॥

(७१)

भए और राजा राजधानियौं अनेक भईं,
ऐसौ पेम[2] नेम पै न काहू[3] बनि आयौ है।
अति अनुराग, सब ही तैं बड़भाग, पूरौ
परम सुहाग, जो अजुध्या एक पायौ है॥
रही बाँह-छाँह, राजा राम की जनम[4] भरि,
भूलि हू न सेनापति और उर आयौ[5] है।
अंत समै जाकौं, देव लोकन के थोक छाँड़ि,
तीनि लोक नाथ लोक पंद्रहौं बनायौ है॥

(७२)

पाए सब काम, बड़े धनी ही की बाँह-छाँह,
भाँति हू न जानी सपने हू मैं अनाथ की।
कोऊ सुरराज, जमराज हू तैं डरपै न,
और-सौं प्रनाम करिबे की चरचा थकी॥
सेनापति जग मैं जे राखे ते अमर कीने,
बाकी संग लीने, दै मुकति निज साथ की।
साँचे हैं सनाथ एक साकेत-निवासी जीउ,
साँची है रजाई एक राजा रघुनाथ की॥

---

[१] एते (ञ); [२] प्रेम (ट); [३] काऊ (ख); [४] भजन (ट);
[५] छायौ (ञ)।

(७३)

राम महाराज जाकौं सदा अविचल[1] राज,
वीर बरिवंड जो है दलन दुवन कौं।
कोऊ[2] सुरासुर, ताकी सरि कौं न पूजै, कौन
तारौ धरै धाम धाम निधि के उवन कौं॥
ताकी तजि आस, सेनापति और आस जैसे,
छाँड़ि सुधा-सागर कौं, आसरौ कुँवन कौं।
दुख तैं बचाउ, जातैं होत चित चाउ, मेरे
सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौं॥

(७४)

होति निरदोष, रवि-जोति सी ज़गमगति,
तहाँ कविताई कछू हेतु न धरति है।
ऐसौई सुभाउ हरि-कथा कौं सहज जातैं,
दूषन बिना ही[3] भूषन सौं सुधरति है॥
कीने हैं कबित्त कछू राम की कथा के, तामैं
दीजियै न दूषन कहत सेनापति है।
आप ही बिचारौ तुम जहाँ खर-दूषन[4] हैं,
सो अखर दूषन[5] सहित कहियत है॥

(७५)

सिवजू की निद्धि[6], हनूमानहू की सिद्धि[7], बिभी-
षन की समृद्धि बालमीकि नैं बखान्यौ है।
बिधि कौं अधार, चारयौं[8] वेदन कौं सार, जप[9]-
जज्ञ कौं सिंगार, सनकादि उर[10] आन्यौ है॥

---

[१] निहचल (न) इकछत (ज); [२] कोई (ख); [३] विहीन (ज); [४] पर दूषन (ज); [५] सोई पर दूषन (ख); [६] निधि (क) (ख)(ज) (ट); [७] सिधि (क) (ख) (ज) (ट); [८] धरयो (न); [९] जय (क) (ट); [१०] मन (ज)।

सुधा के समान, भोग-मुकति निधान,[1] महा
मंगल निदान[2] सेनापति पहिचान्यौ है।
कामना कौं कामधेनु, रसना कौं विसराम
धरम कौं धाम राम-नाम जग जान्यौ है॥

(७६)

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं
विसद वरन जाकी सुधा सम वानी है॥
भुवपति रूप देह धारी पुत्र सील हरि
आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी
राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है॥

[इति रामायण वर्णनम्]

---

[१] निदान (क); [२] निधान (क) विधान (ग)।

पाँचवीं तरंग

रामरसायन वर्णन

(१)

दै कै जिन[1] जीव, ज्ञान, प्रान, तन, मन, मति,
जगत दिखायौ, जाकी[2] रचना अपार है।
दृगन सौं देखै, बिस्वरूप है अनूप जाकौं,
बुद्धि[3] सौं विचारै, निराकार निरधार[4] है॥
जाकौं अध-ऊरध, गगन, दस-दिसि[5], उर
ब्यापि रह्यौ तेज, तीनि लोक कौं अधार है।
पूरन पुरुष, हृषीकेस गुन-धाम राम,
सेनापति ताहि बिनवत[6] बार बार है॥

(२)

राम महाराज, जाकौं सदा अबिचल[7] राज,
बीर बरिवंड जो है दलन दुवन कौं।
कोऊ[8] सुरासुर, ताकी सरि कौं न पूजै, कौंन
तारौ धरै धाम धाम निधि के उवन कौं॥
ताकी तजि आस, सेनापति और आस, जैसे
छाँड़ि सुधा-सागर कौं आसरौ कुँवन कौं।
दुख तैं बचाउ जातैं होत चित चाउ, मेरे
सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौं॥

---

[१] निज (ख); [२] ताकी (ट); [३] हिय (ख) (ट); [४] निराकार निराधार (ट); [५] दिसि दस (न); [६] ताही को प्रनाम (ट); [७] निहचल (न) इकछत (न); [८] कोई (ख)।

(३)

पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तैं उबार्‌यौ[1] जिन,
जाकौं[2] नाभि-कमल, बिधाता हू कौ भौन है।
ध्यावैं सनकादि, जाहि गावैं बेद-बंदी, सदा
सेवा कै रिझावैं सेस, रवि, ससि, पौन है[3] ॥
ऐसे रघुबीर कौं, अधीर ह्वै सुनावौ पीर,
बंधु भीर आगे सेनापति भली[4] मौन है।
साँवरे-बरन, ताही सारंग-धरन बिन,
दूजौ दुख-हरन हमारौ और कौन है॥

(४)

सोचत न कौहू, मन लोचत[5] न बार बार,
मोचत न धीरज, रहत मोद घन है।
आदर के भूखे, रूखे रूख सौं अधिक रूखे,
दूखे दुरजन सौं न डारत बचन है॥
कपट बिहीन, ऐसौ कौन परबीन, जासौं
हूजियै अधीन सेनापति मान[6] धन है।
जगत-भरन, जन[7] रंजन-करन, मेरौ[8]
बारिद-बरन राम दारिद हरन है॥

(५)

देव दया-सिंधु, सेनापति दीन-बंधु सुनौ,
आपने[9] बिरद तुम्हैं कैसे बिसरत हैं।
तुम ही[10] हमारे धन, तोसौं बाँध्यौ पेम-पन,
और सौं न मानै मन, तोही सुमिरत हैं॥

---

[१] बचायो (ज); [२] जाके (ज); [३] रवि ससि सेस पौन है (न) (ज); [४] भलौ (क) (ख) (न); [५] लोचन (क) (ग) (न); [६] प्रान (ख); [७] मन (ख); [८] मेरे (क) (ख) (ग); [९] अपने (न); [१०] तुही है (क) (ख) (न) तैही है (ज)।

तोही सौं बसाइ, और सूझै न सहाइ, हम
यातें अकुलाइ, पाइ तेरेई परत हैं।
मानौं कै न मानौं, करौ सोई जोई जिय जानौं,
हम तौ पुकार एक तोही सौं करत हैं॥

(६)

लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी,
ईस महामाया हू कौं निगमन गायौ है।
लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत, जाकौं
नंदन विधाता, हर नाती जाहि भायौ है॥
चारि दिगपाल हैं बिसाल भुजदंड, जाके
सेस सुख-सेज, तेज तीनि लोक छायौ है[1]।
महिमा अनंत सिय-कंत राम भगवंत,
सेनापति संत भागिवंत काहू पायौ है॥

(७)

अगम, अपार, जाकी महिमा कौं पारावार,
सेवै बार बार परिवार सुरपति कौं।
धाता कौं बिधाता, भाव भगति सौं राता, देव
चारि बर दाता, दानि जाता को सुपति कौं॥
तीनि लोक नाइक है, बेद गुन-गाइक है,
सरन सहाइक है सदा सेनापति कौं।
जगत कौं करता है, धरा हू कौं धरता है[2],
कमला कौं भरता है[3] हरता बिपति कौं॥

---

[१] सुख सेज तेज तीन लोक जस छायौ है (न); [२] कमला कौ भरता है (ख); [३] सब सुष करता है (ख)।

(८)

छाँड़ि कै कुपैंड़ै, पैंड़ै परे जे बिभीषनादि,
ते हैं तुम तारे, चित चीते काम करे हैं।
पैंड़ौ तजि बन मैं, कुपैंड़ै परी रिषि-नारी,
तारी ताके दोष मन मैं न कछू धरे हैं॥
पैंड़ौ तजि हम हू, कुपैंड़ै परे तारिबे कौं,
तारियै अपार कलमष भार भरे हैं।
सेनापति प्रभु पैंड़ै परे ही जौ तारत हौ,
तौब हम तारिबे कौं तेरे पैंड़ै परे हैं॥

(९)

चाहत है धन जौ तू[१], सेउ[२] सिया-रमन कौं,
जातैं बिभीषन पायौ राज अबिचल है।
चाहै जौ अरोग, तौ सुमिरि एक ताही, जिन
मर्‌यौ फेरि ज्यायौ साखा-मृगन कौ दल है॥
चाहै जौ मुकति, जोहै[३] पति रघुपति, जिन
कोसल नगर कीनौ मुकत सकल है।
सेनापति ऐसे राजा राम कौं बिसारि जौ पै[४],
और कौं भजन कीजै, सो धौं कौन फल है॥

(१०)

सुख सरसाउ,[५] किधौं दुख मैं बिलाइ जाउ,[६]
जैसी कछु[७] जानौ, तैसी होउ गति काइ की।
जग जस कहौ, किधौं जाइ अपजस कहौ,
नाहीं[८] परवाह काहू बात के सहाइ की॥

---

[१] चाहत जौ धन तौ तू (क) चाहत है तू जो धन (ख) [२] सेइ (ख); [३] तो है (क); [४] जाकौ (क) (ख) (ग) (न) जो तै (म); [५] सरसाइ (ज); [६] मिलाइ जाइ (ज); [७] कहू (क) (ग); [८] नाहिं (न)।

और हौं न चाहौं, चित चाहत हौं ताही नित,
सेनापति जाकी तीनि लोक इक नाइकी।
हूजियौ न दूरि, मेरे जिय की अमर-मूरि,
रहौ भरपूरि एक प्रीति हरि राइ की॥

(११)

नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति,
सेनापति चेत कछू,[१] पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर, पाप
करम न कर मूढ़, सीस भयौ सेत है॥
आवै बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
पुन्न के बनिज तन-मन किन देत है।
आवत बिराम, बैस बीती अभिराम, तातैं
करि बिसराम[२] भजि रामैं[३] किन लेत है॥

(१२)

कीनौ[४] बालापन[५] बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के[६] रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पींजरा मैं सेना-
पति भजु रामैं, जो हरैया दुख पीर कौं॥
चितहिं चिताउ भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसौ ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह,
जीभै अवलेह देह सुरसरि-नीर कौं॥

---

[१] कहा (ज); [२] बिसरामै (ज); [३] राम (ख); [४] बीत्यो (न); [५] बालपन (ख); [६] को (क) (ग)।

(१३)

को है उपमान ? भासमान हू तैं भासमान,
परम निदान[1] सेनापति के सहाइ कौं।
तेज कौं अधार, अति तीछन, सहस-धार,
एकै सरदार हथियार[2] समुदाइ कौं॥
अमर अवन, दल दानव दवन[3], मन
पवन गवन[4], पुजवन जन[5] चाइ कौं।
कामना कौं बरसन, सदा सुभ दरसन,
राजत सुदरसन चक्र हरि राइ कौं॥

(१४)

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि,
कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाइ कै।
जातैं दारा नसी, बास तातैं बारानसी, किधौं
लुंज ह्वै कै बृंदाबन कुंज बैठ जाइ कै॥
भयौ सेतु अंध ! तू हिए कौं हेतु बंध जाइ,
धाइ सेतुबंध के धनी सौं[6] चित लाइ कै।
बसौ कंदरा मैं, भजौ खाइ कंद रामैं, सेना-
पति मंद ! रामैं मति सोचौ[7] अकुलाइ कै॥

(१५)

कीनौ है प्रसाद, मेटि डारयौ है बिषाद[8], दौरि
पाल्यौ प्रहलाद, रछा कीनी दुरदन की[9]।
दीनन सौं प्रीति, तेरी जानी यह[10] रीति, सेना-
पति परतीत कीनी, तेरीयै सरन की॥

---

[१] विधान (ट); [२] है हथ्यार (ज); [३] दमन (क) (ख) (ट); [४] गमन (क) (ट); [५] मन (ज); [६] मौ (क); [७] सोवो (क); [८] सब हरयौ है विषाद (न); [९] कीनी है दुरद की (ज); [१०] जानियत (ख)।

कीजै न गहर, बेग मेरौ दुख हर, मेरे
आठ हू पहर आस रावरे चरन की।
सूझत न और कोई निरभय ठौर राम
देव सिरमौर, तो लौं दौर मेरे मन की॥

(१६)

कोई[1] परलोक सोक भीत अति बीतराग,
तीरथ के तीर बसि पी रहत नीर ही।
कोई तपकाल बाल ही तैं तजि गेह-नेह,
आगि करि आस-पास जारत सरीर ही॥
कोई छाँड़ि भोग, जोग धारना सौं मन जीति[2] ,
प्रीति[3] सुख-दुख हू मैं साधत समीर[4] ही।
सोवै सुख सेनापति, सीतापति के प्रताप,
जाकी[5] सब लागै पीर ताही रघुबीर ही॥

(१७)

ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ, तन
कंथा पहिराऊँ, करौं साधन जतीन के।
भसम चढ़ाऊँ, जटा सीस मैं बढ़ाऊँ, नाम
वाही के[6] पढ़ाऊँ, दुख-हरन दुखीन के॥
सबै बिसराऊँ, उर तासौं उरझाऊँ, कुंज
बन बन छाऊँ[7] , तीर भूधर नदीन के।
मन बहिराऊँ, मन ही मन[8] रिझाऊँ, बीन
लै कै कर गाऊँ, गुन वाही परबीन के॥

---

[१] कोऊ (ज); [२] मारि (न); [३] सीत (न); [४] सरीर (ख);
[५] जाके (न); [६] को (ज); [७] धाऊँ (ज); [८] मन मन ही (ज)।

(१८)

करुना-निधान, जातैं पायौ तैं बिमल ज्ञान[1] ,
जाके दीने प्रान, तन, मन, धारियत है।
जगत कौं करतार, बिस्व हू कौं भरतार,
हिय मैं निहार, सब ही निहारियत है॥
सेनापति तासौं, प्रेम प्रीति परतीति[2] छाँड़ि,
उत्तम जनम पाइ, क्यौं बिगारियत है।
सब ही सहाई, बर-दानि, सब[3] सुखदाई,
ऐसौ राम साँईं, भाई यौं बिसारियत है[4] ॥

(१९)

धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौ[5] ,
गीध हू कौं बंधु सबरी कौं मिहमान है।
पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
छाती बिप्र-लात कौं धरैया तजि मान है॥
ब्याध अपराध-हारी, स्वान समाधान-कारी,
करै छरीदारी, बलि हू कौं दरबान है।
ऐसौ अवगुनी! ताके सेइबे कौं तरसत,
जानियै न कौंन[6] सेनापति के[7] समान है॥

(२०)

रोस करौं तोसौं, दोस तोही कौं सहस देहुँ,
तोही कान्ह कोसौं बोलि अनुचित बानियै।
तुही एक ईस, तोहि तजि और कासौं कहौं,
कीजै आस जाकी अमरष[8] ताकौं मानियै॥

---

[१] जान (क) (ख); [२] परतीति प्रेम प्रीति (ज); [३] बड़ो (ज); [४] ऐसो प्रभु माधौ भाई यौं विसारियतु है (न); [५] सखा धीवरन को सहाई वनचरन को (ज); [६] करे (ज); [७] को (ज); [८] अमरस (ख)।

जीवन हमारौ, जग-जीवन तिहारे हाथ,
सेनापति नाथ न रुखाई मन आनियै।
तेरे पगन की धूरि, मेरे प्रानन की मूरि (?)
कीजै लाल सोई, नीकी जोई जिय जानियै[1] ॥

(२१)

पान चरनामृत कौं, गान गुन-गनन[2] कौं,
हरि-कथा सुनि[3] सदा हिय कौं हुलसिबौ।
प्रभु के उतीरन की, गूदरीयौ चीरन की,
भाल, भुज, कंठ, उर, छापन कौं लसिबौ ॥
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
बृंदाबन सीमा तैं न बाहिर निकसिबौ।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की,
माल गरे गुंजन की, कुंजन कौं बसिबौ ॥

(२२)

बिनती बनाइ, कर जोरि हौं कहत तातैं,
जातैं तुम करता जगत उतपत्ति के।
तुम सरनागत कौं देत हौ अभय दान,
तुम ही हौ दाता अबिचल अधिपत्ति[4] के ॥
सदा इह लोक, पर लोक, तिहू लोकन मैं,
लोकपाल पालिबे कौं, हरता बिपत्ति के।
सेनापति ईस, बिसे बीस, मोहिं महाराज[5] !
तेरौई भरोसौ दसरथ चक्रवत्ति के ॥

---

[१] सोई जोई नीकी मन जानियै (ज); [२] गुन गानन (ज); [३] सुने (क) (ग); [४] आधिपत्ति (क) (न); [५] मोहिं बीस बिसे महाराज (न)।

(२३)

मोहिं महाराज आप नीके पहिचानैं, रानी
जानकीयौ जानैं, हेतु लछन कुमार को।
बिभीषन, हनूमान, तजि अभिमान, मेरौ
करैं सनमान, जानि बड़ी सरकार को॥
एरे[1] कलिकाल! मोहिं कालौ न निदरि सकै,
तू[2] तौ मति मूढ़ अति[3] कायर गँवार को॥
सेनापति निरधार, पाइपोस-बरदार,
हौं तौ राजा रामचंद जू के दरबार को।

(२४)

गिरत गहत बाँह, घाम मैं करत छाँह,
पालत[4] बिपत्ति माँह, कृपा रस भीनौ है।
तन कौं बसन देत, भूख मैं असन, प्यासे
पानी हेतु सन[5], बिन माँगें आनि दीनौ है॥
चौकी तुही देत, अति हेतु कै गरुड़-केतु!
हौं[6] तौ सुख सोवत न सेवा परबीनौ है।
आलस की निधि, बुधि बाल, सु जगतपति!
सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है॥

(२५)

श्री बृंदाबन-चंद, सुभग धाराधर सुंदर।
दनुज-बंस-बन-दहन, बीर जदुबंस[7]-पुरंदर॥
अति बिलसति बनमाल, चारु[8] सरसीरुह लोचन।
बल बिदलित[9] गजराज, बिहित बसुदेव बिमोचन॥
सेनापति कमला-हृदय, कालिय-फन-भूषन चरन।
करुनालय सेवौं[10] सदा, गोबरधन गिरिवर-धरन॥

---

[१] क्यों रे (क) (ख) (ज); [२] तै (ज); [३] महा (न); [४] पालक (क) (न); [५] सव (ख); [६] सो (ख) (ग) (न) (छ); [७] जय बंस (न); [८] लाल (न); [९] विदलति (ग); [१०] पालन (न)।

(२६)

निगमन गायौ, गजराज काज धायौ, मोहिं[1]
संतन बतायौ, नाथ पन्नगारि-केत है।
सेनापति फेरत दुहाई तोहि[2] टेरत है,
हेरत न इत, जानियै न कित चेत है॥
और हैं न तोसे, सोवे[3] कौन के भरोसे कछू
ह्वै रहे इकौसे, हौं न जानौं कौन हेत है।
तू कृपा-निकेत, तेरौ दीनन सौं हेत, मोहिं
मोह दुख देत, सुधि मेरी क्यौं न लेत है॥

(२७)

बारन लगाई ही पुकार एक बार, ताकौं
बार न लगाई, रछिपाल भगतन के।
देव[4] सिरताज तुम, आज[5] महाराज बैठि
रहे तजि लाज, काज मो गरीब जन के॥
सेनापति राम भुवपाल जू कृपाल, आज
जानि जन[6] हूजियै सरन असरन के।
धाइ हरि राइ, ह्वै सहाइ आइ दूरि करौ,
त्रास लछ मन के सु भैया लछमन के॥

(२८)

आदर बिहीन, नाहिं[7] परद्वार दीन जाइ[8],
होत है भली न[9] बात सुनि अनबात की।
सदा सुख पीन, राम-नाम[10] रस लीन रहै,
कौहू[11] चित चिंता न करत प्रान-गात की॥

[१] मोइ (ख); [२] तोइ (ख); [३] वे वे (क) (ग) (न) (ज); [४] सिव (न); [५] आयु (न); [६] जिय (न); [७] नाहीं (क) (ख) (न); [८] जोइ (क) (म); [९] मलीन (ज); [१०] राम (क); [११] कोऊ (ख) केहू (ज)।

आसरौ न और कौं करत काहू ठौर कौं, जु
सेनापति एक हरि राइ की कृपा तकी।
जाके सिर पर आज राजत है महाराज,
ताहि कहौ परी परवाह कौंन बात की ॥

(२९)

तुम करतार जन[1] रच्छा के करन हार,
पुजवन हार मनोरथ चित चाहे के।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,
हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के ॥
जौ कौहू[2] कहौ कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के।
आपने करम करि हौं ही निबहौंगौ, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के? ॥

(३०)

तू है निरवान कौं निदान ज्ञान[3] ध्यान करै
तेरौ चतुरानन, बसैया नाभि-भौन कौं।
सोई[4] सिरजन हार, भार कौं धरन हार,
तू है प्रभु पावक, पुहुमि, पानी, पौन कौं ॥
दीजियै न पीठि, इत कीजियै दया की दीठि[5],
सेनापति पाल्यौ है तिहारे एक लौन कौं।
आपु ही कृपाल पालौ राम भुवपाल, और
दूसरौ न तोसौं, पैंडौ देखत हौं कौंन कौ? ॥

---

[१] जग (न); [२] कहू (ख); [३] गान (क); [४] साई (ज);
[५] डीठि (क) (ज)।

(३१)

धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार,
सो न करतार तू बिचार बैठि गेह रे।
राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है,
जीभ[1] कौं निरंतर जपाउ तू हरे हरे! ॥
मंजन बिमल सेनापति मन-रंजन तू,
जानि कै निरंजन परम पद लेह रे।
कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है[2] बीच देहरे? कहा है बीच देह रे? ॥

(३२)

निगमन हेरि, समुझाइ, मन फेरि राख,
मन ही कौं घेरि रूप देखि मचलत[3] है।
सेनापति देख राम तोही मैं अलेख, धरि
भगत कौं भेष कत बिस्व कौं छलत है ॥
तोरि मरौ पाउ करौ कोटिक उपाउ, सब
होत है अपाउ, भाउ चित्त कौं फलत हैं।
हिए न भगति जातैं होत सुभ-गति[4], तन
तीरथ चलत मन ती रथ चलत है ॥

(३३)

केतौ करौ कोई, पैयें करम लिख्यौई, तातैं
दूसरी न होई,[5] उर सोई[6] ठहराइयै।
आधी तैं सरस गई बीति कै बरस[7], अब
दुज्जन दरस बीच न रस[8] बढ़ाइयै ॥

---

[१] जीव (ज); [२] कहीं है (ज); [३] मचलत (क) (ख) (ग), [४] हिए न भगत जाते होत न भगत (ज); [५] होइ (ज), [६] सोइ (ज), [७] बीत गई है बरस (ज); [८] रस न (ज)।

चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित, सेना-
पति है सुचित राजा राम जस[1] गाइयै।
चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै॥

(३४)

सागर अथाह, भैंर भारी, बिकराल गाह,
जद्यपि पहार हू तैं दीरघ लहरि है।
देखि न डराहि कतराहि[2] मति बार बार,
बाउरे कछू न तेरौ तऊ तौ बिगरि है[3]॥
बाँध्यौ जिन सिंधु, जो[4] है दीनन कौं बंधु, जिन
सेनापति कुंजर की कीनी धरहरि है।
राम महाराज, धरि बिरद की लाज, सोई
साजि कै जहाज कौं निबाहि पार करिहै॥

(३५)

एरे मन मेरे, खोए बासर घनेरे, करि
जोष[5] अभिलाष अजहूँ न उह रत[6] है।
तजि कै बिबेक, राम-नाम कौं सरस रसैं,
सेनापति महा मोह ही मैं बिहरत है॥
जद्यपि दुलभ तऊ और अभिलाष, दैव
जोग तैं सुलभ ज्यौं घुनच्छर परत है।
कीजियै कहाँ लौं तेरे मन की बड़ाई, जातैं
मरेन के जीबे कौं मनोरथ करत है॥

---

[1] रघुपति गुन (ज); [२] कदराहि (न); [३] बावरे तऊ न तेरो कछू पै बिगरि है (क); [४] सो (ख); [५] लाख (ज); [६] उभरत (ख)।

(३६)

अरि करि आँकुस बिदारयौ हरिनाकुस है,
दास कौं सदा कुसल, देत जे हरष हैं।
कुलिस करेरे, तोरा तमक[1] तरेरे[2], दुख
दलत दरेरे कै, हरत कलमष हैं॥
सेनापति नर होत ताही तैं निडर, डर
तातैं तू न कर, बर करुना बरष हैं।
अति अनियारे, चंद-कला से उजारे, तेई
मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख हैं॥

(३७)

करि धीर नादै, कीनौ पूरन प्रसादै दौरि,
पाल्यौ प्रहलादै जिन ज्यायौ भाँति सौं भली।
कीजै न बिबादै नित्त, छाँड़ि कै बिषादै, मन
ताही कौं सदा दै, जातैं दास कामना फली॥
पावै सुख साजै, जग मध्य सो बिराजै, सो मि-
टावै जमराजै, रोग-दोष की कहा चली।
कहत सदा 'जै', सेनापति भय भाजै, जाके
सिर पर गाजै नरसिंह सौं महाबली॥

(३८)

जोर[3] जलचर, अति क्रुद्ध करि जुद्ध कीनौ,
बारन कौं परी आनि बार[4] दुख-दंद की।
है कै नकवानी दीन-बानी कौं सुनाइ, जौ लौं[5]
लै कै कर पानी, पूजा करै जगबंद की॥

---

[१] तपकि (अ); [२] सरेरे (ख); [३] जुरि (ख); [४] अनिवार (क) (ख) (ग); [५] कै जौ (क)।

तौ लौं दौरि दास की पुकार लाग्यौ दीन-बंधु,
सेनापति प्रभु मन हू की गति मंद की।
जानी न परति, न बखानी जाति कछू, ताही[1]
पानी मैं प्रगट्यौ, किधौं बानी मैं गयंद की ॥

(३९)

ग्राह के गहे तैं अति व्याकुल बिहाल भयौ,
प्रान-पत ताने[2], रह्यौ एक ही उसास कौं।
तहाँ सेनापति, महाराज बिना और कौंन,
धाइ आइ साँकरे, सँघाती होइ दास कौं ॥
गाढ़ मैं गयंद, गरुड़ध्वज के पूजिबे कौं,
जौ लौं कोई कमल लपकि लेइ पास कौं।
तौ लौं, ताही बार, ताही बारन के हाथ पर्‌यौ,
कमल के लेत हाथ कमला-निवास कौं ॥

(४०)

चीर के हरत बलबीर जू बढ़ायौ चीर[3],
दौरि मारि डार्‌यौ ना दुसासन प्रगटि कै।
सेनापति जानि[4] याकौं जान्यौ है निदान, सुनि
जुगति बिचारौ जौब रावरे मन टिकै ॥
जोई मुख माँग्यौ, सोई दीनौ बरदान, ओप
दीनी द्रौपदी कौं, रही पट सौं लपटि कै।
रोवत मैं श्रीबर[5] कहत कही छीवर, सु
मेरे जान यातैं चले छीवर उपटि कै[6] ॥

---

[१] देखौ (ज); [२] प्रान पति ताने (ख) प्रार पर तायें (झ); [३] वीर (क); [४] जानं (क); [५] सीवर (ज); [६] रहे छीबर ही पटि कै (ज)।

(४१)

पारथ की रानी, सभा बीच बिललानी, दुसा-
संन अभिमानी, दौरि गही केस पास मैं।
तबहीं बिचारी, सारी खैंचत पुकारी 'कान्ह !
कहाँ हौ ? परी हौं नीच लोगन के त्रास मैं' ॥
सेनापति त्यौंहीं[1] , पट कोटिक उपटि चले,
चारयौ बेद उठे जस गाइ कै अकास मैं।
बैरिन के बास मैं, बिपत्ति के निवास मैं, ज-
गन्निवास वा समैं, दिखाई[2] प्रीति बास मैं ॥

(४२)

द्रौपदी सभा मैं आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
कौरव कुपित कह्यौ काहू[3] कौ न मानहीं।
लच्छक नरेस, पै न रच्छक उठत कोई,
परी है बिपत्ति पति लागी पतता नहीं[4] ॥
जब[5] स्याम सुंदर अनंत हरे पीत-बास[6] !
कहि करि टेरी लाज जात है निदान हीं।
सेनापति तब मेरे जान तेई हरि नाम,
ह्वै गए बसन हरि नाम के समान हीं ॥

(४३)

पति उतरति, देखौ परी है बिपति अति,
द्रौपदी पुकारैं, सेनापति जदुनाइकै।
दुरजन भीर जानि ताकी तब पीर, बर[7]
दीनौ बलबीर, वेद उठे जस गाइ कै ॥

---

[१] तौही (क) (ग); [२] जनाई (ज); [३] काऊ (ख); [४] पतिताान की (ज); [५] तब (ख); [६] बासदेव (ज); [७] बरु (क) (ग)।

खैंचि खैंचि थाक्यौ, न उसास है दुसासन मैं,
अंध ज्यौं, धरनि घूमि गिरयौ भहराइ कै।
मंदर मथत छीर-सागर के छीर जिमि,
पैयत न छीर[1] चीर चले उफनाइ कै॥

(४४)

पढ़ी और बिद्या, गई छूटि न अबिद्या, जान्यौ
अच्छर न एक, घोख्यौ[2] कैयौ तन[3] मन है।
तातैं कीजै गुरु, जाइ जगत-गुरू कौं, जातैं
ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानंद घन है॥
मिटत है काम-क्रोध, ऐसौ उपजत बोध,
सेनापति कीनौ सोध, कह्यौ निगमन है।
बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है॥

(४५)

सोहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौं, सदा कर त्रिसूल है॥
कहा भटकत! अटकत क्यौं न तासौं मन?
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल-फूल है॥

---

[१] पैयै न उछीर (क) (ख) (ग); [२] देखो (ग); [३] जन (ग)।

(४६)

हित उपदेस लेह[1] , छाँड़ि दै कलेस, सदा
सेइयैं महेस, और ठौर कहा भटकै।
सदन उषित रहु, संतत सुखित, मति
होउ तू दुखित, जोग-जाग मैं निपट कै॥
चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक,
जिनैं लेत कोई कहूँ भूलि हू न हटकै।
सेनापति सेवक कौं चारि बरदानि, देव
देत हैं समृद्धि जो पुरंदर के खटकै॥

(४७)

जाकौं महा जोगी, जोग-साधन करत हठि,
जाकौं सब जगत करत जज्ञ जाप है।
जहाँ चतुराननौ अनेक जतनन जात,
होत है न जाकौं सनकादि कौं मिलाप है॥
ताही हरि-लोक गए कोसल-निवासी जीउ
जे है[2] थिर जंगम, न देख्यौ भव-ताप है।
सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तौ महाराजा[3] रामचंद कौं प्रताप है॥

(४८)

पति के अछत, सुरपति जिन पति कीनौ,
जाके नख-सिख, रोम-रोम भर्यौ पाप है।
देह दुति गई, तई[4] , बन मैं पखान भई[5] ,
लाग्यौ बिकराल रिषिराज कौं सराप है॥

---

[१] लेइ (ख); [२] ते हैं (ख); [३] महाराज (क); [४] नई (ख); [५] मई (क)।

सोई है अहिल्या, सिय-सिवा के समान भई,
पतिव्रत पाइ, पायौ सती कौं प्रताप है।
सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तौ महाराजा रामचंद कौं प्रताप है॥

(४९)

महा मद-अंध दसकंध सनबंध छाँड़ि,
जाके लात मारी, न बिचारी होत पाप है।
पाइ अपमान, जातुधान की[१] सभा के बीच,
बाम हू बिसारि, चल्यौ करि परिताप है॥
सोई बिभीषन, दिगपाल सौं बिराजत है,
पायौ पद पूरौ पुरहूत कौं दुराप है।
सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तौ महाराजा रामचंद कौं प्रताप है।

(५०)

जाही हनूमान के अछत अपमान पाइ,
भाज्यौ भानु-सुत, करि जियौ[२] जाप थाप है।
कौहू बस्यौ मंदर मैं, कौहू मेरु कंदर मैं
बस्यौ बल मंद रह्यौ करत सँताप है॥
सोई तरि सिंधु कौं, निसंक लंक जारि आयौ,
लायौ द्रोन अचल मिटायौ परिताप है।
सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तौ महाराजा रामचंद कौं प्रताप है॥

---

[१] जातुधानक (क) (ग); [२] हियौ (ज)।

(५१)

यह कलिकाल बढ़्यौ दुरित कराल, देखिं
आई दुचिताई, सुचिताई सब लूट हीं।
हम तप हीन, जाइ तरैं कत दीन, तोसी
दूसरी नदी न, देखि फिरे चहुँ खूँट हीं॥
सेनापति सिव-सिर-संगिनी, तरंगिनी तू,
तोहि[1] अचवत पचवत काल कूट हीं।
तजि कै अपाइ, तीर बसैं सुख पाइ, गंगा!
कीजै सो उपाइ, तेरे पाइ ज्यौं न छूटहीं॥

(५२)

यह सरबस चतुरानन कमंडल कौं,
सेनापति यह चरनोदक है हरि को।
यह ईस-सीस हू की सोभा हैं परम, साढ़े
तीन कोटि तीरथ मैं याकी सरवरि को?॥
छाँड़ि देह तप तू, भुलाइ डार सबै जप,
कौन की है चप तोहि, तेरौ और अरि को?।
मेटि जम-दुंद, द्वार नरक कौं मूँद, बेनी
मैंनका की गूँद, बूँद[2] पी कै सुरसरि को॥

(५३)

कोई महा पातकी मरयौ हो जाइ मगह मैं,
सो तौ बाँधि डारयौ बीच नरक समाज के।
कीनौ गर-जोरि और नारकीन बीच घेरि,
जे हे निसि-बासर करैया पाप काज के॥

---

[१] तोइ (ख); [२] गुंद बुंद (ख)।

ताही के करंकै सेनापति गंग न्हैयान कौं,
लागत पवन जान आए सुर साज[1] के।
साँकरैं कटाइ, जमदूत रपटाइ, सोइ[2]
लै चल्यौ छुटाइ बंदीवान जमराज के॥

(५४)

यह सुरसरि, कौंन करै सुर सरि याकी,
भू पर जो ऊपर है तीरथ समाज के।
धरम अधार धार याकी निरधार दाता
याही कै तरैंगे[3] सेनापति सुभ काज के॥
को कहै बखानि, अवलोकन करत जाके,
सोक न रहत, ओक होत सुख साज के।
थोक नसैं पापन के, दोक जल-कन चाखैं,
ओक भरि पियैं लोक जीतैं जमराज के॥

(५५)

राम जू के पाइ, मुनि-मन न सकत पाइ,
पैयै जौ समाधि, जोग, जप, तप, करियै।
मोह-सर सरसाने, हम कलि-मल साने,
पैड़ौ राम पाइ गहिवे[4] कौं अटकरियै॥
एकै है उपाइ, राम-पाइन के पाइवे कौं,
सेनापति वेद कहैं अंध की लकरियै।
राम-पद-संगिनी, तरंगिनी है गंगा, तातैं
याहि पकरे[5] तैं पाइ राम के पकरियै॥

---

[1] पर साज (ख); [2] सो तौ (ख); [3] के तरंगे (ख) के तरगे (क) (ग); [4] पाइबे (ख); [5] परसे (ख)।

(५६)

सुर लोक सीतल करत अवनीतल तैं,
गई धरनीतल, बटोही तीनि बाट की।
गनैं कौंन गुन जाके, सुर-नर मुनि थाके,
मति अटकति चतुरानन से भाट की॥
सोहति अधार, हेम-कंजन कौं निरधार,
गंगा जू की धार, निधि सोभान के ठाट की।
कछू बाँधि लीनी, कछू सेनापति लटकति,
छापेदार पाग मानौं पुरुष बिराट की॥

(५७)

कीने सौ जनम ही मैं, जे अघ जन मही मैं
दूरि जन होत धूरि तनकौं जु छूजियै।
पाइ मघ वाके धरि, पाइ मघवा के धाम,
करै दुसमन सो[१] समन, सो नर[२] दूजियै॥
भीजैं जाके बारि पद, पावै दानवारि पद,
सेनापति नै करि बिनै करि जौ पूजियै।
देखैं सुरसिंधु-रन चढ़ैं सुर-सिंधुरन,
कूल-पानि हू पियैं त्रिसूल-पानि हूजियै॥

(५८)

पतित उधारै हरि-पद पाँउ धारै, देव-
नदी नाँउ धारै, कौंन तीनि-पथ धावई।
ईस सीस लसै (बसै?)[३] विधि के कमंडल मैं
काकौं[४] भगीरथ नृप तप तन तावई॥

---

[१] सौं (क) (ग); [२] सौं जु (क) (ग); [३] यहाँ पर एक शब्द नहीं है। पं० शिव अधार पाँडे ने इस स्थान पर 'बसै' शब्द होने की कल्पना की है—संपादक; [४] ताकौं (ख)।

सब सरितान कौं बिसारि करि आप हरि,
आपनी बिभूतिन मैं कौंन कौं गनावई।
एते गुन-गन सेनापति कौंन तीरथ मैं ?
तातैं[1] सुरसरि जू की पदवी कौं पावई ॥

(५९)

राम जू की आन कोई तीरथ न आन देख्यौ,
गंगा की समान होतौ बेद तौ बतावतौ।
सम सरिता की, जौब होती सरि ताकी, तौ पै
याही कौं कन्हैया क्यौं बिभूति मैं गनावतौ ॥
सगर-कुमारन कौं सेनापति तारन कौं,
तीरथ जौ कोऊ सुरसरि सम पावतौ।
गंगा ही के अरथ भगीरथ बिरथ है, तौ
काहे कौं बिरथ तप करि तन तावतौ ॥

(६०)

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै
ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समैं।
ब्याधि के अरंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं ॥
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं[2] सहस बानी,
जौ पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं ॥

---

[१] ताने (क); [२] दै (ख)।

(६१)

कोह कौं घटाइ, लोभ मोहन मिटाइ, काम
हू तैं निबटाइ करि, करति उधार है।
देखैं वारि दीन, दारिदी न होत सपने हू,
पावै राज बसु, ताके[1] बस बसुधा रहै॥
रोग करै दूरि, भोग राखै भरपूरि, एक
अमर करन मूरि मानहू सुधा रहै।
धरम अधार, सेनापति जानी निरधार,
गंगा तेरी धार कामधेनु तैं दुधार है॥

(६२)

बिस्व की जुगति, जीतै जोग की जुगति हू कौं,
भुकति मुकति देत, लावति न पल है।
जाकौं पौन लागैं, दल दुरित के भागैं, जाके
आगे न चलत जमराज हू कौं बल है॥
सेनापति प्रीति-रीति, कीजै परतीति करि,
गंगा जप-तप नेम-धरम कौं फल है।
रूप न बरन, उतपति न मरन, जाके
कर न चरन, ताके चरन कौं जल है॥

(६३)*

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके,
लागे सुर दैन, सेनापति सुख दाइकै।
तौही कही आप, सुर न दीजै प्रबीन, हौं अ-
लापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइकै॥

---

[1] राज वंस जाके (क) (ग)।

* इस कवित्त के पहले 'क' तथा 'ग' प्रति में एक कवित्त दिया हुआ है जो कि खंडित है। 'ख' तथा 'ज' प्रति में वह नहीं पाया जाता है। 'क' प्रति में वह इस रूप में पाया जाता है :—

धोखे 'सुर नदी जै' के कहत, सुनत, भए
तीन्यौ तीनि देव, तीनि लोकन के नाइकै।
गाइन गरुड़-केतु भयौ द्वै सखाऊ भए
धाता महादेव, बैठे देव लोक जाइ कै॥

(६४)

लहुरी[1] लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके[2]
बीच परे भौंर फटिका से सुधरत हैं।
परे परवाह पानि ही मैं जे बसत सदा,
सेनापति जुगति अनूप बरनत हैं॥
कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि,
देखे उड़ि जात पात-पात ह्वै नसत हैं।
सोहत गुलेला से बलूला सुरसरि जू के,
लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं॥

(६५)

जाकी नीर-धार, निरधार निरधार हू कौं,
परम अधार आदि अंत और अबहूँ[3]।
सुख कौं निधान, सेनापति सन्निधान जो है,
मुकति निदान भगवान मानी भव हूँ॥

जाही लोक तीरथ के थोक पहुँचावत
× × न न्हाइ न्हाइ जिन में।
× × × ×
× × सेनापति जान्यो मन में॥
तीरथ सकल एतो वासी भुवतल ही के
धरि जे सकत क्यों हू पगन पगन में।
यह तौ त्रिपथगा है जानै त्रिभुवन पथ
यातैं सुर पुर पहुँचावति हैं पल में॥
—संपादक

[१] लहुरो (क); [२] ताके (क) (ग); [३] अबहू (ख)।

ऐसी गंगा रानी बेद बानी मैं बखानी, जग
जानी सनमानी, दीप सात खंड नव हूँ।
कामधेनु हीन, सुरतरु वारि दीन, जाकौं
देखैं बारि दीन दारिदी न होत कबहूँ ॥

(६६)

रहौ पर लोक ही के सोक मैं मगन आप,
साँची कहौं हिन्दू कि मुसलमान राउरे।
मेरी सिख लीजै, जामैं कछुव[1] न छीजै,
मन मानै तब कीजै तोसौं कहत उपाउ रे ॥
चारि बर दैनी, हरिपुर की नसैनी गंगा,
सेनापति याकौं[2] सेइ सोकहिं मिटाउ रे।
न्हाइ कै बिसुन-पदी, जाह तू बिसुन-पद
जाह्नवी न्हाइ जाह नबी पास बाउरे ॥

(६७)

कहा जगत आधार? कहा आधार मान कर?।
कहा बसत बिधु मध्य? दीन बीनत कह घर घर? ॥
कहा करत तिय रूसि? कहा जाचत जाचक जन?।
कहा बसत मृगराज? कहा कागर[3] कौं कारन? ॥
धीर बीर हरषत कहा? सेनापति आनंद घन!
चारि बेद गावत कहा? 'अंत एक माधव सरन' ॥

(६८)

को मंडन संसार? गीत मंडन पुनि को है?।
कहा मृगपति कौं भच्छ? कहा तरुनी मुख सोहै? ॥
को तीजौ अवतार? कवन जननी-मन-रंजन?।
को आयुध बलदेव हत्थ दानव-दल-गंजन? ॥
राज अंग निज संग पुनि कहा नरिंद राखत सकल?।
सेनापति राखत कहा? सीतापति कौं बाहु बल ॥

---

[१] कछूव (क) (ग); [२] याह (ख); [३] कागद (ग)।

(६९)

को पर नारी पीउ? करन हंता पुनि को है?
को बिहंग पुनि पढ़इ? कौंन ग्रह पंकज कौं है?
को तरु[1] प्रान निधान? कवन वासी भुजंग मुख?
को हरषत घन देखि? कवन बाढ़त तुसार दुख?
आदान दान रच्छन करन को कृपान धारै समर?
सेनापति उरधरत कह? जानकीस जग मोद[2]कर॥

(७०)

असरन सरन, सकल खल करषन,
दसरथ तनय, सघन अघ धरषन।
जलज नयन, चर अचर अयन, जल
सदन सयन, अरचन जन हरषन॥
अचल धरन, गज दरद दलन, जग
रछन करन, सस-धर गन दरसन।
नरक हरन, 'जय' कहत तरत नर,
अरचत चरन गगन-चर अनगन॥

(७१)

जी मैं[3] दरद न छयौ सकल मदन तरु(?)
केतिक सदन काज काटै तैं[4] हरे हरे।
पाइ नर तन भयौ राम सौं रत न बर,
कंचन रतन पेट काज के हरे हरे॥
अबहूँ तू[5] चेत मन! सीस[6] भयौ सेत, सेना-
पति सिख देत, जप हेतु सौं हरे हरे।
और न जुगति जासौं होति आसु गति, देति
भुगति मुकति हरि भगति हरे हरे॥

---

[1] तनु (क) (ख) (ग); [2] मोह (ज); [3] जामैं (क) (ख) (ग); [4] ते (क) (ख) (ग); [5] तौ (ज); [6] मूढ़ सीस (ज)।

(७२)

संतन के तीर, सेनापति बरतीं रहि कै[1],
तीरथ के तीर बसि बासर बराइहौं[2]।
माया के बिलास, तातैं ह्वै करि उदास, हरि
दासन की गनती मैं आप हू गनाइहौं ॥
राखौं और साध न, चलौंगौ मन[3] साधन कै,
बिना जोग साधन परम-पद पाइहौं।
बिषै की कतार, ताकी करि हटतार, कोऊ[4]
लै कै करतार करतार गुन गाइहौं ॥

(७३)

लोली लल्ला लल्लली[5] लैली[6] लीला[7] लाल।
लालौ लीलौ लोल लै[8] लै लै लीला लाल ॥

(७४)

रे रे रामा मैं रमै,[9] रोम रोम मैं रारि।
रमौ रमा मैं राम मैं, मार मार रे[10] मारि[11] ॥

(७५)

लीला लोने नलिन[12] लौं, ललना नैंनन लीन।
लोल लोल लाली निलै,[13] नील लाल लौ लीन ॥

(७६)

मौन नेम, नामौ नमै[14], मुनि मन[15] मानै[16] मैंन।
मन-माने[17] नामी, मनौं मीन मानिनी नैंन ॥

---

[1] वर तीर हिये (ज); [2] बसाइ हौं (ज); [3] मंत (ख) (ग); [4] कौहू (क) (ग) कहू (ख); [5] लल्लला (क); [6] लै (ज); [7] लाला (ग); [8] लौ (क) (ग); [9] रमैं (क) (ख); [10] रै (क) (ग); [11] मारि मरू रे मारि (ज); [12] ललिन (क); [13] लालीनि लै (क) (ख); [14] मनैं (क) (ग); [15] मनि (क); [16] मानैं (क) (ग) मानौ (ज); [17] मुन (ज)।

(७७)

रे रे सूरौ ! सुरसरी सौंरौ[1], संसौ सास ।
रोस रूसि[2] संसार सौं सौंरै सो रस-रास[3] ॥

(७८)

दानी दिन दिन दादनी दाना दाना दीन ।
दानौ-दंदन[4] दादि दै दाना दाना दीन ॥

(७९)

हरि हरि हारी, हारिहै[5] हेरे रूरी हेरि ।
हीरे हीरे[6] हार[7] है, रे हरि हीरै हेरि ॥

(८०)

तो रति राती राति तैं[8], रेती तारे तीर ।
तंत्री तैं[9] रूरी ररै, त्री तेरी तरु[10] तीर ॥

(८१)

अब सपरे सुरसरि करै सिव केसव विधि धाम[11] ।
अबस परे सुरसरि करै सिव के सब बिधि वाम[12] ॥

(८२)

मारगु मानी को पकरि, छाँड़्यौ ती छन तीर ।
मार गुमानी कोप करि, छाँड़्यौ तीछन तीर[13] ॥

(८३)

सुख से ना पति पाइ है, भगतिन मन मैं जानि ।
सुख सेनापति पाइहै, भगति नमन मैं जानि ॥

---

[१] सोरौ (ज); [२] रासि (ज); [३] सौरैं सौंर सुरास (क); [४] दानी (क) (ज); [५] हेरिहै (ज); [६] होरे होरे (ज); [७] हारु (क) (ग); [८] ते (ज); [९] तू (ज); [१०] तनु (क); [११] धाम (क); [१२] धाम (ज) सुभ जन कों करि कै टरै जव संतन की नारि (क) [१३] हरि मैं तजि संसार मैं मिलै अभय पद जाइ (क) ।

परिशिष्ट

सूचना :—निम्नलिखित १७ छंद 'व' प्रति में पाए जाते हैं जो सं० १९४१ की लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य प्राचीन प्रति में ये नहीं पाए जाते हैं इसीसे इन्हें मूल-ग्रंथ में नहीं दिया गया है। रचना-शैली की दृष्टि से ये सेनापति कृत जान पड़ते हैं। अधिकांश छंदों में 'सेनापति' भी लिखा हुआ मिलता है।

—संपादक

(१)

चंद से न तारे है न भारे कनकाचल से
प्रान से न प्यारे न उजारे और बाम से।
संकर से सिद्ध न समृद्ध न पुरन्दर से
धाता से न वृद्ध है न वेद और साम से॥
इंदिरा सी दार न उदार पारिजात से न
वात से न बली अभिराम है न काम से।
गंगा सी नदी न है नदीस से न सरवर
सेना से न दीन है न दीनबंधु राम से॥

(२)

तोसो एक तुही और दूसरो न राजा राम
तेरे ई रचे है लोक सुर नर नाग रे।
सोई वीतराग तिन कीने जर जाग सेना-
पति ताकी भाग जाको तोसों अनुराग रे॥
आप तन देखिए न देखौ करतूति मेरी
अधम उधारिबे की तेरे सिर पाग रे।
मोसो अपराधी है न तोसो है सहनहार
मोसे अवगुनी है न तोसे गुन आगरे॥

(३)

जैसे जल मीन अति दीन हौं अधीन तेरे
राम परबीन क्यों रुखाई लीजियतु है।
तुही जित तित कहौं जाहि ये अनत वैकि
तक हे ते न नेक इत उठि दीजियतु है॥
धरा के अधार जग रछा के करनहार
जो न तुम ऐसे कैसे धरती जियतु है।
वेद कहै सत्यसंध सेनापति दीनबंधु
देव दयासिंधु दया क्यों न कीजियतु है॥

(४)

दानि तू निदान ज्ञान प्रान के निधान
जानत आदि अंत और अबहू।
सेनापति सेवक ते साहेब जगतपति
एकै दीप सात हू अखंड खंड नव हू॥
और सब साथिन को साथ हैं सराइ कैसो
तेरो पूरो साथ न वियोग छिन लव हू।
× × ×
× × ×॥

(५)

राम सत्यसंध दयासिंधु दीनबंधु यह
रीति हैं तिहारी तीनि लोक माँझ गाई है।
चारि वरदानि महा जान पत होत तुही
सेनापति संतन के साकरे सहाई है॥
सेवक जजाल जाल मैं बँध्यो कृपाल लाल
पालिवे के ठौर मे कहा कठोरताई है।
दै कै निरभय बाह राखौ निज छत्त छाह
जानकी के नाह हिय माह दुचिताई है॥

(६)

साथी भय हाथी के बचायो प्रहलाद धाइ
द्रोपदी के लाज काज वेदन मे भाखे हौ।
सब समरथ करतार सबही के याते
सब घर व्यापी सेनापति अभिलाखे हौ ॥
दीनबधु दीन के न वचन करत कान
मौन ह्वै रहे हौ कछू भाँति मन माखे हौ।
याते राजा राम जगदीस जिय जानी जात
मेरे कर करम कृपाल कीलि राखे हौ ॥

(७)

महामोह कंदनि मै जकतु जकंदनि मै
दिन दुखदंदनि मै जात है बिहाइ कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाइ कै ॥
आवै मन ऐसी घरवार परिवार तजौ
डारौ लोक लाज के समाज बिसराइ कै।
हरिजन पुंजनि मे वृन्दावन कुंजनि मे
रहौ बैठि कहूँ तरवर तर जाइ कै ॥

(८)

सब गोपी अरु कूबरी सेनापति सब भोग।
ते आलिंगति गिरधरै परी एक रति योग ॥

(९)

राधे मिलि हरि तुम भये से सेनापति सम रीति।
बरसाने सुख सो रहौ नीलांबर सों मीति ॥

(१०)

चल चित बाजी हारि है जतन करै जो लाखु।
सेनापति तब जीति है मन मुहरा मैं राखु ॥

(११)

गूढ़ार्थ—

जोति सेत ते पाइये संतति नीकी होइ।
सेनापति जो तप करै संपत पावै सोइ॥

(१२)

सेनापति जो कामिनी अंधी कछू लखै न।
कविन बखाने कमल से ताही तिय के नैन॥

(१३)

सेनापति बरन्यो तुरंग उरग दमके पाइ।
तीनि पाइ की भाँति ज्यों चलत चारि हू पाइ॥

(१४)

पाइ एक सौ साठि हैं तिन में एक चलै न।
ताके सम वाजी चलै सेनापति हारै न॥

(१५)

आदि अंत जाके है आदि।
अन्त न जाके सो चौ वादि॥

(१६)

देह बिना हौं हू वरु जात।
निसि दिन सोच कहौं सो बात॥

(१७)

जित पाटी सिर वोर है कीनी खरी अनूप।
सेनापति बारह खरी तिय पलका सम रूप॥

———

टिप्पणी

पहली तरंग

श्लेष वर्णन

(१)

निरंतर=अविच्छिन्न, स्थायी। बहिरंतर=बाहर भीतर। धन=समूह। अनवरत=निरन्तर, हमेशा। संतत=सर्वदा।

(२)

पचि=बहुत अधिक परिश्रम करके। खचित=चित्रित। चिंतामनि="एक कल्पित रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय, वह पूर्ण कर देता है"। ठकुरानी=मालकिन। अघ-खंडन=पापों को काटने वाली।

(३)

परिहरि रस रोसौ=राग-द्वेष का परित्याग कर, वीतराग होकर। ताही कविताई कौं......नओसौ है=जिस कवित्व-शक्ति को कवियों ने कठिन तपश्चर्या द्वारा प्राप्त किया है, उसी कवित्व-शक्ति की कीर्त्ति को मैं प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ यद्यपि मुझे नया-नया वर्ण-ज्ञान हुआ है। तात्पर्य यह कि मुझे अभी वर्ण-ज्ञान भी ठीक-ठीक नहीं हुआ है किंतु मेरा हौसला यह है कि मैं बड़े कवियों की कीर्त्ति को प्राप्त करूँ; मुझे भी उनका सा यश मिले। पायौ बोध-सार......इ०=अहल्या को सरस्वती के ज्ञान का मूल भाग इतनी सुगमता से मिल गया जैसे कोई व्यक्ति अपनी रक्खी हुई वस्तु उठा लाता है। खरोसौ=निश्चित सा।

(४)

(गुरू-वंदना)

अर्थ :—(तुम) राजाओं (की) सभा (के) भूषण (हो), दूसरे के दोषों को छिपाते हो (और) शरीर पाकर (तुम ने) किसी क्षण भी कटु वचन नहीं कहा। महा ज्ञानियों के (तुम) राजा (हो), समस्त कलाओं से परिपूर्ण हो; सेनापति (कहते हैं कि तुम) गुणों के भांडार हो (और) दूसरों को भी गुण देने

वाले हो (अर्थात् दूसरों को गुणी बनाते हो)। तुम्हीं ने कुछ बताया है (इससे) (मैं ने) कुछ कविता बनाई है; उसमें (अर्थात् हमारी कविता में) योग्यता संदिग्ध रूप में ही होगी (मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि मेरी कविता उत्कृष्ट होगी)। (अतएव) हे कवियों के नेता, बुद्धि के अग्रगण्य (सर्व श्रेष्ठ) गोसाईं ! (मैं) शिर झुका कर कहता हूँ (कि आप हमारी कविता की त्रुटियों को) सुधार लीजिए।

(५)

(वंश-परिचय)

गंगाधर=शिव। अनूप=अनूप शहर, जो सेनापति का जन्म-स्थान था।

(६)

शब्दार्थ :—कोई है अभंग........प्रवाह की :—कोई पद (अर्थ की दृष्टि से) स्वतः पूर्ण है (तथा) किसी के खंड करने पड़ते हैं। (पर पंक्ति के) संपूर्ण पदों पर विचार-पूर्वक देखने से (कविता में) अमृत का सा (मधुर) प्रवाह है।

विशेष :—'अभंग' तथा 'सभंग' से कवि का संकेत श्लेषालंकार के भेदों की ओर है। जहाँ पूरे शब्द का अर्थ और होता है, किंतु उसके भंग करने पर दूसरा होता है, वहाँ सभंग-पद-श्लेष होता है। जहाँ समूचे शब्द से ही दो अर्थ निकल आते हैं वहाँ अभंग-पद-श्लेष होता है।

(७)

शब्दार्थ :—कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै='अरबीन' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'कीने अरबी न........इ०' पाठ रह रहा होगा। उस स्थिति में उक्त पंक्ति का अर्थ यों किया जा सकता है :—यद्यपि मेरी कविता गुण-रहित तथा दोष-युक्त है फिर भी यदि मैं उसे अरबी न कर दूँगा अर्थात् उसे जटिल न बना दूँगा तो कोई प्रवीण व्यक्ति उसे अवश्य सुनेगा। कुछ लोगों के अनुसार कवि ने 'परबीन' के जोड़ पर 'अरबीन' यों ही लिख दिया है इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। बोल-चाल में ऐसे निरर्थक शब्द पाए जाते (जैसे—रोटी-ओटी)। उक्त दोनों मतों में से प्रथम अधिक युक्ति-युक्त जचता है रस रूप यामैं धुनि है=इस कविता में रस-ध्वनि है। रासै अरचत........दु- चुनि है=ऐसा कोई महात्मा नहीं है जो भूषण-रहित और सदोष कविता बना

ख्याति पा सके। इसी से सेनापति दोनों काम करते हैं—राम की पूजा करते हैं और अपने काव्य में उनकी चर्चा किया करते हैं (राम-कथा संबंधी काव्य बनाते हैं) तथा पदों को चुन-चुन कर कविता बनाते हैं। अपनी ख्याति के लिए अपने काव्य को सावधानी से बनाने के साथ-साथ राम की पूजा और चर्चा भी करते हैं क्योंकि कोई कार्य, चाहे जितनी सावधानी के साथ किया जाय, बिना भगवत्कृपा के उसमें सफलता नहीं मिल सकती।

(८)

शब्दार्थ :—दोषै=१ दोष को २ रात्रि को। पिंगल=१ छंदःशास्त्र २ पीत वर्ण। बुध कवि=१ बुद्धिमान् कवि २ बुध तथा शुक्र नक्षत्र। उपकंठ= १ कंठ में २ समीप। कनरस=कर्णरस, गाना-बजाना अथवा अन्य किसी बात के सुनने का आनंद। विशद=१ सुन्दर २ स्पष्ट, साफ़। सविता=सूर्य।

अर्थ :—मानों उस (कविता) की छवि उदय होते हुए सूर्य की छवि है; सेनापति कवि की कविता (इस प्रकार) शोभित हो रही है।

कविता की छवि के पक्ष में—दोष को नहीं रखती, छंदःशास्त्र के लक्षणों को पुष्ट करती है (छंदोभंग आदि दोष उसमें नहीं हैं); जो (कविता) बुद्धिमान् कवियों के कंठ (में) ही बसती है (विद्वान् कवि जिसे मुखस्थ कर लेते हैं)। पद देखने (पढ़ने) पर (कविता) मन को हर्ष उत्पन्न करती है (चित्त प्रसन्न कर देती है), (जिस) कर्णरस (से) (कविता) छंद (को) भूषित करती है उसे कौन छोड़ दे ? (अर्थात् सुन्दर कर्णरस से विभूषित छंद सभी को प्रिय हैं)। अक्षर सुन्दर हैं, (कविता) ईख ('ऊखै') के रस ('आप') के समान (रस) (उत्पन्न) करती है (कबिता ईख के समान मधुर रस उत्पन्न करती है); जिससे संसार का अज्ञान दूर हो जाता है (काव्य का अध्ययन करने से लोग बुद्धिमान् हो जाते हैं)।

सूर्य की छवि के पक्ष में :—(उदय होते हुए सूय की छवि) रात्रि को नहीं रखती (रात्रि को विनष्ट कर देती है), पीत वर्ण के लक्षण को पुष्ट करती है (पीत वर्ण की रोशनी होती है); जो बुध तथा शुक्र के समीप ही रहती है (लगभग उषाकाल के समय ही बुध तथा शुक्र नक्षत्रों का उदय होता है)। देखने पर कमलों को ('पदमन कौं') हर्ष उत्पन्न करती है (सूर्योदय के समय ही

कमल विकसित होते हैं); (उदय होते हुए सूर्य की छवि के) जिस रस को कोक नहीं तजता, (उसी से) (सूर्य का) मंडल ('छंद') शोभित होता है (तात्पर्य यह कि जिस छवि को कोक बहुत प्यार करता है उसी से सूर्य-मंडल शोभायमान है)। आकश स्वच्छ हैं, ऊषा को अपने समान कर लेती है (ऊषा थोड़े समय बाद सूर्योदय के रूप में परिवर्त्तित हो जाती है); (जिस छवि से) संसार का अंधकार ('जड़ता') दूर हो जाता है।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

विशेष :—'जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है' के स्थान पर 'जगत की जातैं जड़ताऊ बिनसति है' पाठ होने से इस पंक्ति का प्रवाह अधिक अच्छा हो जाता किंतु पोथियों में पहला पाठ होने के कारण वही रक्खा गया है।

(९)

शब्दार्थ :—तुक=१ अंत्यानुप्रास २ घुंडी, जो तीर के अग्र भाग पर लगी होती है। ज्यारी=साहस। पच्छ=१ काव्य में वर्णित वस्तु २ तीर में लगा हुआ पर। गुन=१ काव्य के गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद) २ डोरी, धनुष की प्रत्यंचा।

अर्थ :—सेनापति कवि के कवित्त अत्यंत शोभा पाते (हैं), मेरी समझ (से) (ये मानों) (किसी) पक्के धनुर्द्धारी के बाण हैं।

कवित्त-पच्छ में :—अंत्यानुप्रास सहित शुभ फल को धारण करते हैं; मर्म की बात कहते हैं (अर्थात् दूर की कौड़ी लाते हैं), जो धीर व्यक्तियों के साहस हैं (जिन्हें कंठस्थ करने से विद्वानों को बड़ा धैर्य रहता है)। (कवित्तों में) विभिन्न-पच्छ लगते हैं (कवि की इच्छानुसार श्लिष्ट कवित्तों के दोनों पच्छों का अर्थ निकलता चला आता है), गुणों सहित शोभित हैं, कानों से मिलते (ही) वास्तविक कीर्त्ति (को) प्रकाशित (करते हैं) (अर्थात् सुनते ही उनका वास्तविक महत्व स्पष्ट हो जाता है)। जिसके हृदय में भली प्रकार चुभ जाते हैं (जो उनके अर्थ को समझ जाता है) वही (हर्ष से) प्रसन्न हो उठता (है); (ये) शीघ्र ही असर करते (हैं) (प्रसाद गुण विशेष रूप से है), स्त्री-पुरुष के (सभी के) मन (को) मोहित कर लेते हैं।

बाण-पच्छ में :—तुकों (के) सहित उत्तम गाँसी ('फल') को धारण करते हैं; जो (बाण) सीधे दूर तक जाते हैं (और) धीर व्यक्ति (के)

के साहस हैं (धीर व्यक्ति ऐसे ही बाणों के रहने से हृदय की दृढ़ता रख पाते हैं)। (जिनमें) नाना प्रकार के पच्छ लगते हैं (और चलाने के समय) प्रत्यंचा (के) साथ शोभित होते हैं। (जिनका) आदि भाग कानों के मूल (से) मिलते (ही) अर्थात् कानों तक खींचकर चलाए जाने पर) कीर्त्ति (को) उज्वल करने वाला है (विपक्षी को नष्ट कर अपनी उज्वल कीर्त्ति प्रकाशित करते हैं)। जिसके हृदय में भली प्रकार चुभ जाते हैं, वही (पीड़ा से) शिर पीटने लगता है; तुरंत ही चुभ जाते हैं, स्त्री-पुरुष के (अर्थात् जिस किसी के) लगते हैं मन (को) मोहित कर देते हैं (बेहोश कर देते हैं)।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(१०)

शब्दार्थ :—बानी = १ चमक २ सरस्वती। सुबरन = १ सुवर्ण २ अच्छा वर्ण। अरथ = १ धन, संपत्ति २ शब्दों का अभिप्राय। अलंकार = १ आभूषण २ काव्यालंकार। चरन = १ कौड़ी २ छंद का चतुर्थांश। थाती = धरोहर।

अवतरण :—कवि, कदाचित्, किसी राजा से अपने काव्य को सुरक्षित रखने की प्रार्थना कर रहा है।

अर्थ:—मैं (ने) धन की धरोहर के समान राज्य को कवित्तों की (धरोहर) सौंपी है।

थाती-पक्ष में :—जहाँ कान्ति-युक्त सुवर्ण की मोहरें हैं, (जो थाती) बहुत प्रकार की संपत्ति के समुदाय को रखती है। इस (थाती में) बहुत आभूषण हैं, (इनकी) संख्या कर लीजिए (अर्थात् इन्हें गिन लीजिए), ऐसी सुन्दर सामग्री को ऊपर (अर्थात् बाहर) मत रखिए (इसे किसी तहखाने आदि सुरक्षित स्थान में रखिए)। हे महाजन ! (आज कल) चार कौड़ियों की (भी) चोरी हो जाती है; सेनापति (कहते हैं) इसी से (धरोहर रखने वाला) ब्याज (सूद) को छोड़ कर कहता है (कि) (आप इसकी) रक्षा कर लीजिए, जिसमें इसे कोई न चुराए (अर्थात् मैं सूद नहीं चाहता, केवल अपनी थाती को सुरक्षित रखना चाहता हूँ)।

कवित्त-पक्ष में:—जहाँ सरस्वती के साथ, सुन्दर वर्ण सुख में रहते हैं (अर्थात् कविता में सुन्दर वर्ण हैं और सरस्वती का वास है), (कविता) अनेक प्रकार के अर्थ-समुदाय को धारण करती है। इस (काव्य) में अनेक प्रकार के अलंकार हैं, (उनकी) संख्या कर लीजिए (गिन लीजिए); ऐसे रसयुक्त साज को (सर्वदा)

मति के ऊपर रखिए (अर्थात् इसे कभी न भूलिए)। हे श्रेष्ठ व्यक्ति ! (आजकल) चार चरणों (तक) की चोरी हो जाती है (लोग दूसरे का पूरा कवित्त चुरा लेते हैं)। इसी से सेनापति विलंब ('व्याज') को छोड़ कर कहते हैं (कि आप) (इसे) बचा लीजिए जिसमें (इसे) कोई चुरा न पाए।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

(११)

शब्दार्थ :—सीतै=१ शीतलता को २ सीता को। उज्यारी=१ चाँदनी २ स्वच्छता। सुधाई=१ अमृत ही २ सरलता। खर=१ तीक्ष्ण २ एक राक्षस जो रावण का भाई था। तेज=१ ताप २ प्रताप। कला=१ चंद्रमा का सोलहवाँ भाग २ कौतुक, लीला। करन=१ किरण २ हाथ। तारे=१ नक्षत्र २ उद्धार किए।

अर्थ :—सेनापति (ने) राजा रामचंद्र तथा पूर्णिमा के उदय हुए चंद्र, दोनों की एकता वर्णित की है (दोनों को एक कर दिखलाया है)।

चंद्र-पक्ष में :—जिस (चंद्रमा) की कीर्त्ति (रूपी) चाँदनी देश देश (में) (तथा) विश्व (भर में) व्याप्त है, (जो) शीतलता को साथ लिए हुए (है) (अर्थात् जो शीतल है), जिसमें केवल अमृत ही है (अन्य कोई वस्तु है ही नहीं)। देवता, मनुष्य (तथा) मुनि जिसके दर्शन (करने) को तरसते हैं; (जो) तीक्ष्ण ताप नहीं रखता, जिसमें कला का सौंदर्य है। जो (अपनी) किरणों के बल से रात्रि के कलंक (अंधकार) को पराजित कर लेता है, (जिसके) नक्षत्र सेवक हैं (जिनकी) गणना नहीं (हो) पाई है।

राम-पक्ष में :—जिनकी कीर्त्ति (की) उज्वलता देश देश (में) (तथा) विश्व (भर में) व्याप्त है, (जो) सीता को साथ लिए हुए (हैं), जिनमें केवल सरलता है (अर्थात् जो नितांत सरल हैं)। देवता, मनुष्य (तथा) मुनि जिनके दर्शन (करने) को तरसते हैं; जो खर के तेज को नहीं रखते (अर्थात् उसके प्रताप को नष्ट कर देते हैं); (जिनमें) लीला का सौंदर्य है (अर्थात् जो अनेक अपूर्व लीलाएँ करते हैं)। (जो) निडर ('निसाक'—निःशंक) (होकर) बाहु-बल से लंका को जीत लेते हैं; (जिन्होंने) (अनेक) सेवकों को तार दिया है, जिनकी गणना नहीं हो सकी है।

अलंकार :— श्लेष।

विशेष :—'कला'—चंद्रमा में सोलह कलाएँ मानी जाती हैं—अमृत, मानदा, पूषा, पुष्टि, तुष्टि, रति, धृति, शशनी, चंद्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा और पूर्णामृता। "पुराणों में लिखा है कि चंद्रमा में अमृत रहता है जिसे देवता लोग पीते हैं। चंद्रमा शुक्ल पक्ष में कला कला करके बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवीं कला पूर्ण हो जाती है। कृष्ण पक्ष में उसके संचित अमृत को कला कला करके देवता गण इस भाँति पी जाते हैं—"।

(१२)

शब्दार्थ :—सारंग=१ चातक २ वंशी। घन रस=१ प्रचुर जल २ प्रचुर आनंद। मोर=१ मयूर २ मेरा। जीवन अधार=१ जल का आश्रय २ प्राणा-धार। गरज करन हार=१ गरजने वाला २ आवश्यकता की पूर्ति करने वाला। संपै=१ विद्युत् २ संपत्ति, ऐश्वर्य।

अर्थ :—(हे) सखी! काले मेघ (क्या) आए हैं मानों कृष्ण (आए) हैं।

मेघ-पक्ष में :—(मेघ) प्रचुर जल बरसाते हैं (जिससे) चातक (अपनी) बोली सुनाता है (स्वाति-बिंदु के लिए रट रहा है), मयूर (के) मन (को) प्रसन्न करता है तथा अत्यंत सुन्दर है। जल (का) आश्रय (है), वृहत् गर्जन करने वाला (है), गरमी (को) हरने वाला (है), मन (को) कामोदीप्त करता है। सेनापति (कहते हैं कि) जिसकी सुन्दर (और) शीतल छाया (में) संसार तन (तथा) मन में बहुत विश्राम पाता है। वृष्टि करने वाले ('बरसाऊ') (मेघ) तेरे सामने विद्युत् (को) साथ लिए हुए (आए हैं)।

कृष्ण-पक्ष में :—(कृष्ण) वंशी-ध्वनि (को) सुनाते हैं। प्रचुर आनंद (की) वृष्टि करते हैं, मेरे मन (को) प्रसन्न करते हैं (और) अत्यंत सुन्दर हैं। प्राणाधर बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, (हृदय के) संताप (को) हरने वाले हैं (और) मन-कामना (को) देते हैं (पूर्ण करते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) जिनकी सुन्दर (और) शीतल छाया (में) संसार (के लोग) तन (तथा) मन (में) विश्राम पाते हैं। ऐश्वर्य (को) साथ लिए हुए (विभूति से युक्त), (तथा) (उस ऐश्वर्य की) वर्षा करने वाले (कृष्ण) तेरे सामने (आए हैं)।

अलंकार:— उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष।

बिशेष :—'कवित्त रत्नाकर' की समस्त पोथियों में इस कवित्त की प्रथम पंक्ति एक सी ही मिलती है। किंतु इस पाठ के रहने से गति-भंग दोष आ जाता है। पंक्ति के आरंभ में ही दो विषम पदों ('सारंग' तथा' सुनावै') के बीच में सम पद रक्खा हुआ है जिसके कारण लय बिगड़ गयी है ("दोय विषमन बीच सम पद राखिए ना, राखे लय भंग होत अति ही बिगरि कै")। यदि उक्त पंक्ति का पाठ यों होता तो दोष का परिहार हो जाता—

"सारंग सुनावै धुनि, रस बरसावै घन,
मन हरषावै मोर अति अभिराम है"।

(१३)

शब्दार्थ :—लाह=१ लाख २ कान्ति। नग=१ पेड़, २ रत्न, मणि। सिंगार हार=१ हर सिंगार नामक वृक्ष २ शृंगार की माला। छाया=१ साया २ दीप्ति कान्ति। सोंन जरद=१ सोन जुही, पीली जूही २ पीली नहीं है ('सो न जरद')। जुही की=१ स्वर्ण यूथिका की २ हृदय की ('जु ही की')। रौस=१ क्यारियों के बीच का मार्ग २ गति, चाल। रंभा=केला। निवारी=जूही की जाति का एक फैलने वाला पौधा। सरस=१ रस-युक्त २ भाव पूर्ण। वनमाली=१ बादल २ कृष्ण। रस=१ जल २ प्रेम। फूल भरी=१ पुष्पों से युक्त २ रजोधर्मा। मृदुलता=१ कोमल लता २ कोमलता।

अर्थ :—नव-यौवना स्त्री कामदेव की वाटिका के समान जान पड़ती है।

वाटिका-पक्ष में :—(वाटिका) लाख (के वृक्षों) सहित शोभित होती है। हर सिंगार वृक्ष (वहाँ पर) शोभित है; सोनजुही (तथा) जूही (के वृक्षों की) छाया अत्यन्त प्रिय है (अर्थात् भली मालूम होती है)। जिसकी रौस मनोहर है, आमों की बगिया (अभी) बाल्यावस्था में है (वृक्ष छोटे छोटे हैं), (जिसका, रूप-माधुर्य अनुपम है, (तथा जिसमें) रंभा तथा निवारी (के वृक्ष) हैं। (जो) रसीले कुल की है (अर्थात् जिसमें उत्तम श्रेणी के पौधे लगाए गए हैं), सेनापति (कहते हैं कि) जिसे बादल प्रचुर जल (से) सींचते हैं, (और जिसे) मैं ने पुष्पों से भरा-पूरा देखा है। बन की जो समस्त शोभा है, (वह) कोमलता का भांडार है अथवा (वाटिका की) समस्त शोभा दर्शनीय है (और वह अर्थात वाटिका) कोमल लताओं का भांडार है।

स्त्री-पक्ष में :—(नव-यौवना) कान्ति-युक्त शोभित है, शृंगार (के) हार (में) रत्न शोभा पा रहे हैं; (उसकी) दीप्ति में ज़र्दी नहीं है (चेहरे पर पीलापन नहीं है), (और वह) हृदय की अत्यंत प्यारी (भली) है। जिसकी चाल मन-मोहक है, (जो) बाल मनोहर बनी है, (जिसका) रूप-माधुर्य अनुपम है, उस पर रंभा (नामक अप्सरा) निछावर कर दी गई है (अर्थात् उसकी सुन्दरता के कारण रंभा भी तुच्छ जान पड़ती है)। (जो) भाव-पूर्ण (मुद्रा से) जा रही है, सेनापति (कहते हैं कि) जिसे (स्वयं) कृष्ण प्रचुर प्रेम द्वारा सींचते हैं (जिससे कृष्ण बहुत प्रेम करते हैं), (और जिसे) मैंने रजोधर्म युत देखा है। (उसकी) समस्त शोभा युवावस्था की है (और वह) कोमलता का भांडार है।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(१४)

शब्दार्थ :—सुभ = १ कल्याणकारी २ उत्तम। सुहाग = १ सौभाग्य २ सुहागा। भाग = १ ललाट २ हिस्सा, अंश। रसाल = मनोहर। नाहै = १ पति को २ मालिक को। जर = धन। रती = १ काम-क्रीड़ा २ रत्ती। आगरी = १ चतुर २ निधि। बानी = १ बोली २ आभा या दमक। तोरा = टोटा, कमी। रूपौ = १ सौंदर्य २ चाँदी। नीधन = निर्धन। बाट = १ मार्ग २ बाँट।

अर्थ :—यह श्रेष्ठ स्त्री सुवर्ण की मोहर के समान है।

स्त्री-पक्ष में :—जिसका चेहरा मंगल-प्रद है (और जिसके) ललाट पर सौभाग्य (का चिन्ह) रक्खा है; जब पति को दिखलाई पड़ती है तो पूर्णतया मनोहर लगती है। धन के बल से चलती है, (धन खर्च करने पर ही प्राप्त होती है) रति में चतुर है, अनुपम वाणी है (और) जहाँ (धन का) टोटा है वहाँ बात नहीं करती। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें रूप भी है (और) अनेक गुण (भी) हैं; जिसको देख कर निर्धन का हृदय तरसता है. (जो) मार्ग (के) काँटों (पर) भी पैर रख कर धनी (मनुष्यों) के यहाँ जाती है।

मोहर-पक्ष में :—जिसका उत्तम चेहरा सुहागा का (कुछ) अंश (देकर) सँवारा गया है, जब अपने स्वामी को दिखलाई पड़ती है तो पूर्णतया मनोहर लगती है। धन के बल से चलती है (धनी व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर सकते हैं), रत्तियों की (जो) निधि (है), जहाँ (धन का) टोटा है (वहाँ) बात नहीं

करती (निर्धन व्यक्ति उसे नहीं खरीद सकते)। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें कई गुना चाँदी भी है (एक तोले की मोहर से कई तोले चाँदी खरीदी जा सकती है); जिसे देख कर निर्धन का हृदय तरसता है। बाँट तथा काँटे ही में पैर रख कर (तौली जाकर) धनी (मनुष्यों) के यहाँ जाती है।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

(१५)

शब्दार्थ :—कौल=१ वादा, कथन २ अच्छी जात की। रंचक=छोटी। लोल=हिलती-डोलती, कंपायमान। नथ=१ नथनी २ तलवार की मूठ पर लगा हुआ छल्ला। अतोल=अनुपम, बेजोड़।

अर्थ :—स्त्री-पक्ष में-(जो) वादे की सच्ची है (बात की धनी है), जिसका सौंदर्य दिन-दिन बढ़ता जाता है; (घूँघट के भीतर) छोटी सी, कंपायमान, सुन्दर नथनी झलकती है (कभी-कभी दिखलाई दे जाती है)। (यह) मित्रता करके रहती है, साथ (में) बिजली के समान (चंचल भाव से) रमण करती है ('संग रमै दामिनी सी'); निदान, जिसके बिछुड़ने पर कौन धैर्य धर सकता है? (अर्थात् इसके वियोग से कोई धैर्य नहीं धारण कर सकता)। यह नव-यौवना स्त्री, सचमुच, कामदेव की तलवार के समान (है), (किंतु) मन (में) एक अनुपम आश्चर्य होता है। सेनापति (कहते हैं कि जब कोई इसे अपने) बाहु-पाश में रखता है, तो बार-बार जैसे-जैसे (यह) मुड़ जाती है (नटती है अथवा निषेध-सूचक क्रियाएँ करती है) वैसे-वैसे (यह) अमोल कहलाती है (आश्चर्य इस बात में है कि यद्यपि यह सहज में आलिंगन नहीं करने देती—इधर-उधर मुड़ कर भली प्रकार आलिंगन करने में बाधा पहुँचाती है—फिर भी रसिक-जन इन चेष्टाओं पर मुग्ध होकर इसे बहुत ही उत्तम कहते हैं)।

तलवार पक्ष में :—(जो) अच्छी जात की है (अर्थात् बहुत बढ़िया लोहे की बनी है), जिसकी कान्ति दिन-दिन बढ़ती जाती है। छोटा सा कंपायमान, सुन्दर छल्ला चमकता है। (तलवार) मित्रता करके रहती है (मौक़े पर काम आती है), संग्राम (में) बिजली के समान (चलती है); निदान, जिसके बिछुड़ने पर कौन धैर्य धारण कर सकता है? (अर्थात् इसके न रहने पर वीरों का धैर्य छूट जाता है)। (किंतु) मन (में) एक अनुपम आश्चर्य होता है। (युद्ध-स्थल में) सेना-नायक जब (इसे) हाथ (में) धारण करता है, तो (चलाते

समय अथवा वार करते समय) बार-बार, जितनी ही (अधिक) रुड़ती है (लपती है) उतनी ही अमोल कही जाती है (प्राय: लचीली वस्तुओं की प्रशंसा नहीं होती, किंतु तलवार जितनी लपती है उतनी ही अच्छी समझी जाती है, यही आश्चर्य की बात है) ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

(१६)

शब्दार्थ :—नारि=१ स्त्री २ गरदन । चाहैं=१ चाहती हैं २ देखते हैं। बनी=१ वाटिका २ नव विवाहिता। तरुन=१ युवा (पुरुष) २ वृक्षों । हातौ (सं० हात)=पृथक्, अलग। लता=१ सुन्दरी स्त्री २ कोमल कांड या शाखा। मिहीं=महीन ।

अर्थ :—प्यारी महीन मेहँदी (अर्थात् पिसी हुई मेहँदी) की बराबरी को पहुँचती है (अर्थात् महीन पिसी मेहँदी के समान है।)

मेहँदी-पक्ष में :—जिसे बार-बार सब स्त्रियाँ चाहती हैं, सेनापति (कहते हैं कि जो) नए वृक्षों के बीच, वाटिका ('बनी') (में) रहती है। (मेहँदी) सब्जी का (जो) नाता है, उसे अलग कर डालती है (अर्थात् तोड़ी जाने पर वाटिका की अन्य हरी-भरी चीजों से अपना संबंध तोड़ देती है) (और) हाथ (को) पाकर (उसे) लाल करती है; जो स्नेह से (बड़े यत्न से) पनपती ('सरसति') है। शरीर (के) साथ (के) लिए पिस जाती है; अनुराग ('रस') के स्वाभाविक रंग में (अर्थात् लाल रंग में) मिल कर रचती है (और) शोभित होती है। जिस (मेहँदी) में कोमल शाखा की सुन्दरता भली बन पड़ी (है) (अर्थात् जिसकी कोमल शाखाएँ बड़ी सुन्दर हैं) ।

स्त्री-पक्ष में :—जिसे गरदन मोड़-मोड़ कर सब देखते हैं; नव विवाहिता वधू नव युवक के हृदय (में) बसती है। जी के समस्त संबंधों (को) पृथक् कर देती है (अर्थात् अन्य समस्त संबंधियों से अपना नाता तोड़ देती है); लाल (प्रिय) (को) पाकर हाथ में करती (है) (अपने वश में करती है), (और) जो स्नेह (युक्त) शोभित होती है। प्रिय (के) (अंग) (के) साथ के लिए विनम्र होकर रहती (है); स्वाभाविक काम-क्रीड़ा ('रस रंग') में लिप्त (होकर)

अनुरक्त रहती (है) (और) शोभित होती है। जिसमें सुन्दरी स्त्री (की सी) सुन्दरता खूब बन पड़ी (है) (अर्थात् जो सुन्दरी स्त्रियों के समान है)।

अलंकार :—श्लेष।

(१७)

शब्दार्थ :—घरी=१ घड़ी २ तह। तन सुख=१स्वस्थ शरीर २ एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा ('तनसुख') । मिहीं=१ कोमल, मृदुल २ महीन, पतला। बरदार=१ श्रेष्ठ स्त्री ('बर दार') २ ऐंठन वाली, बटी हुई (बल दार)।

अर्थ :—विधाता (ने) कामिनी को कामदेव की पगड़ी के समान बनाया है।

कामिनी-पक्ष में :—उत्तम घड़ी (में) प्राप्त होती है, शरीर सुखी (है) (अर्थात् स्वस्थ शरीर की है), सर्व-गुण संपन्न है; नवीन, अनुपम, (और) मृदुल रूप का सौंदर्य है। अच्छी (स्त्रियों से) चुन कर आई (है) (अर्थात् अच्छी स्त्रियों में सर्व-श्रेष्ठ है), कई युक्तियों से मिली है; प्रिय (स्त्री) ज्यों-ज्यों मन (को) अच्छी लगी, त्यों-त्यों सिर चढ़ा दी गई है (बहुत बढ़ा दी गई है)। श्रेष्ठ स्त्री पूर्ण (रूप से) गज-गामिनी (है) (और) अत्यंत मनोहर है; सेनापति (कहते हैं कि) बुद्धि (को) उपमा सूझ गई है (अर्थात् कामिनी पगड़ी के समान है यह उपमा मुझे सूझ गई है)। (कामिनी) (अपने) प्रेम से (लोगों को) अच्छी प्रकार वश में कर लेती है (और) छवि थिरकाए रहती है (सौंदर्य से युक्त रहती है)।

पाग-पक्ष में :—सुन्दर तह मिलती (है) (पगड़ी भली प्रकार घड़ी की हुई है), तनसुख (कपड़े की है), सर्व गुणों से संपन्न है; नवीन अनुपम महीन रूप का सौंदर्य है (अर्थात् सुन्दर नए महीन कपड़े की बनी हुई पगड़ी है)। सुन्दर (पगड़ी) चुन कर आई है, कई युक्तियों से हस्तगत हुई है; प्रिय (पगड़ी) जैसे-जैसे मन को अच्छी लगी वैसे-वैसे शिर पर पहनी गई है (जितनी ही अच्छी लगी उतनी ही जी भर कर व्यवहार में लाई गई है)। पूरे गजों की (अर्थात् १८ गज की है, लंबाई में किसी प्रकार छोटी नहीं है), बटी हुई अत्यंत सुन्दर (पगड़ी) है। (ऐसी पगड़ी को) प्रीति से (रुचि से) अच्छी प्रकार (शिर पर) बाँधना चाहिए (और) छवि थिरका कर रखना चाहिए (पगड़ी को धारण कर अपने मुख को शोभान्वित करना चाहिए)।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

(१८)

शब्दार्थ :—सुघराई=१ प्रवीणता, निपुणाई २ राग विशेष। ललित=१ सुन्दर २ राग विशेष। गौरी=१ गौर वर्ण की २ राग विशेष। सूहा=१ लाल रंग २ राग विशेष। गूजरी=पैरों में पहनने का एक आभूषण।

अर्थ :—गूजरी की थोड़ी (सी) मनोहर झनकार में हम (ने) एक बाला देखी (जो कि) राग-माला के समान शोभायमान है (गूजरी की झनकार करती हुई बाला राग-माला सी जान पड़ती है)।

बाला-पक्ष में :—निपुणता से युक्त (है), रति-क्रीड़ा के उपयुक्त सुन्दर अंग शोभायमान (हैं), (अपने) घर ही में रहती है। गौर वर्ण वाली, सुन्दर (अभिराम) बनाई हुई रस-युक्त शोभित है, लाल रंग (के) स्पर्श (से) (अर्थात् सिंदूर आदि के मस्तक पर धारण करने से) कल्याण की वृद्धि करती है। सेनापति (कहते हैं कि) जिसके सुन्दर स्वरूप (में) मन उलझ जाता है (जिसके दर्शन से लोग मोहित हो जाते हैं); (जो अपनी) वीणा में मृदु-ध्वनि (रूपी) अमृत बरसाती है।

राग-माला पक्ष में :—साथ (में) सुघड़ाई लिए हुए है (तथा) (भगवान्) के ध्यान के योग्य ललित (के) अंग (में) शोभायमान है (ललित राग को लिए हुए है जो कि भगवान् का ध्यान करने में विशेष सहायक सिद्ध होता है); (राग-माला) (अपने) घरों (में) ही रहती है (अपने निश्चित पर्दों अथवा सुरों से बाहर नहीं जाती)। गौरी नव रसों (से पूर्ण है)। श्रेष्ठ रामकली शोभित होती है (जो कि) सूहे के स्पर्श (से) कल्याण (सी) शोभित होती है (सूहे के स्वरों के मिश्रण से कल्याण के समान जान पड़ती है)। सेनापति (कहते हैं कि) जिस (राग-माला) के सुन्दर रूप में मन उलझ जाता है; (जो) वीणा में (बजाए जाने पर) मृदु-ध्वनि (रूपी) सुधा (की) वृष्टि करती है।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा।

विशेष :—इस कवित्त में वर्णित राग-माला के समस्त राग प्रातः काल गाए जाने वाले हैं।

(१९)

शब्दार्थ :—चीर=वस्त्र। दसा=१ स्थिति २ अवस्था। मैन=१ मोम २ कामदेव। निधान=१ आधार २ आश्रय। तम=१ अंधकार २ त्रिगुणों (सत,

रज, तम) में से एक। रोसन=१ प्रदीप्त २ प्रसिद्ध। पतंग=१ फतिंगा २ प्रेमी। तरुन=युवा, जवान। समादान="वह आधार जिसमें मोम की बत्ती लगा कर जलाते हैं"।

अर्थ :—हे प्रिये ! तुम तो निदान गृह की शमादान हो।

शमादान-पक्ष में :—(शमादान) अनेक प्रकार से, वस्त्रों द्वारा लपेटी (हुई), सर्वदा शोभा देती है; जिसके बीच का भाग तो मोम का आधार है (जिसके बीच में मोमबत्ती लगाई जाती है)। (जो) अंधकार को नहीं रखती, सेनापति (कहते हैं कि जो) अत्यंत प्रदीप्त है, जिसके बिना (कुछ) नहीं दिखलाई पड़ता (है), अंधकार के कारण संसार व्याकुल हो जाता है। फतिंगे (आकर) (उस पर) गिरते हैं, (वह) उन युवकों के मन (को) मोहित करती है; (उसकी) ज्योति खराब नहीं ('रद न') होती, (फतिंगों की) प्रीति अंत (तक) (रहती) है। चिकनाहट का पूर्ण भांडार (है) (जिसके) शरीर की उज्वलता प्रकाशमान हो रही है।

स्त्री-पक्ष में :—(जो) सर्वदा अनेक प्रकार के वस्त्रों से लपेटी (अर्थात् अनेक प्रकार के वस्त्र पहने हुए) शोभा देती है। जिसकी मध्यावस्था कामदेव का आश्रय है। (जो) तम को नहीं रखती (अर्थात् जो क्रोधी नहीं है), सेनापति (कहते हैं कि जो) अत्यंत प्रसिद्ध है; जिसके बिना (जिसके वियोग से) कुछ नहीं सूझता, संसार व्याकुल हो जाता है। प्रेमी (आकर) पड़ते हैं (उसके वश में हो जाते हैं), (वह) उन युवकों के मन (को) मोहित करती है; (उसके) दाँतों की द्युति होती है (और वह) अंत तक सुन्दर प्रीति (करती है)। स्नेह की वह पूरी निधि है (और उसके) शरीर की आभा दीपित (प्रकाशित) है।

अलंकार :—अभेद रूपक, श्लेष।

(२०)

शब्दार्थ :—पुजवति=पूर्ण करती है। हौस=कामना, हौसला। उरबसी=१ हृदय पर पहनने का एक आभूषण २ उर्वशी नामक अप्सरा।

अर्थ :—(हे) लाल ! नव-यौवना बाला लाई (हूँ); (वह) मानों फूल की माला है।

बाला-पक्ष में :—जिसे सब चाहते हैं, (जो) रति के भ्रम (में) रहती है ('भ्रम रहै') (अर्थात् उसे देखकर लोगों को रति का भ्रम हो जाता है; वे उसे रति समझने लगते हैं), (जो) भव्य है (और) उर्वशी का हौसला पूर्ण

करती है (उर्वशी के टक्कर की है)। भली प्रकार बनी (हुई), रस-पूर्ण नव-यौवना है; सेनापति (कहते हैं कि) प्यारे कृष्ण की प्रेमिका है। सुगंध धारण करती है, अब संपूर्ण गुणों का भांडार (है), कलिकाल (में) ऐसी सब अंगों (से) कौन विकसित हुई है? (अर्थात् कलिकाल में ऐसी सर्वांगीण सुन्दरी कोई नहीं है)। जिस प्रकार (यह) प्रभाहीन न हो, (इसे) कंठ (से) लगा कर हृदय (से) लगा लीजिए।

माला-पक्ष में :—समस्त भौंरे जिसे प्रीति कर चाहते हैं, जो प्रसिद्ध उर्वशी के हौसले (को) पूर्ण करती है (उर्वशी से भी बढ़कर है)। भली प्रकार बनाई गई है, रस-युक्त (है), (जो) (अभी) नई बनी है ('नव जो बनी है'); सेनापति (कहते हैं कि जो) प्यारे कृष्ण को प्रिय है। सुगंध (को) धारण करती है, संपूर्ण डोरी (जिस) का निवास-स्थान है। ऐसी सर्वांगीण प्रस्फुटित कलिका कौन प्राप्त करता है? ('कौन कलिका लहै')। जिस प्रकार (यह) सूख न जाय, (इसे) कंठ (से) लाकर हृदय (पर) धारण कर लीजिए।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष।

(२१)

शब्दार्थ :—भारे=१ भारी, बड़े २ भरे हुए। मित्र=१ नायक २ सूर्य। तपति=गरमी, जलन। तामरस=कमल।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (हे) प्रिये! तू (ने) ही संसार की शोभा धारण की है (संसार की समस्त शोभा तुझ में ही देखी जाती है), तू पद्मिनी है (और) तेरा मुख कमल है।

स्त्री-पक्ष में :—तेरे केश बड़े हैं, नायक (ने) (उन्हें अपने) हाथों से सँवारा है; तुझ ही में अत्यंत सुन्दर प्रीति मिलती है। गरमी शान्त करने को (तथा) हृदय शीतल करने को, तेरे शरीर का स्पर्श केले (के स्पर्श) से (भी) बढ़कर है। आज इस (स्त्री का) नाम प्रत्येक घर (तथा) (समस्त) नगर (में) लिया जाता है (इसकी रूप-चर्चा सर्वत्र हो रही है); जिसके हँसते ही चंद्रमा की छवि ('दरस') मलिन (हो जाती) है।

कमल-पक्ष में :—(कमल) केसर अथवा पराग (से) भरे हैं ('केसर हैं भारे'), सूर्य (ने) (अपनी) किरणों से तेरे (दलों को) सुधारा है (अर्थात

तुझे विकसित किया है)। तुझ ही में अत्यंत मीठा मधु ('रस') मिलता है। गरमी शान्त करने को (तथा) हृदय शीतल करने को, तेरे शरीर का स्पर्श (तेरा स्पर्श) केले (के स्पर्श) से (भी) बढ़कर है। आज प्रत्येक घर (में) (तू) 'पुरइन' (कमल) (के) नाम से प्रसिद्ध है, जिसके प्रस्फुटित होने से ही चंद्रमा की छवि मलिन (हो जाती) है (अर्थात् कमल के खिलते ही चंद्रमा अस्त जाता है)।

अलंकार :—रूपक, श्लेष।

(२२)

अर्थ :—मैं (ने) भावती को (प्रियतमा को) इन्द्रपुरी के समान शोभित देखा है।

भावती-पक्ष में :—जहाँ सरस ('सुरस') शोभा ('भा') का निवास है (जो) पृथ्वी का सार (है), जिसमें ऐरावत की गति भी पाई जाती है (अर्थात्) जो (गजगामिनी है)। देखने पर हृदय (में) बस गई ('उर वसी'), इस प्रकार की दूसरी कैसे है ? (अर्थात् दूसरी स्त्रियाँ इस प्रकार की नहीं हैं); छवि में (द्युति में) किसी की (सी) नहीं ('काहू की न') (है), (और) जो हृदय को हर लेती है। सेनापति (कहते हैं कि) सचमुच जिसकी शोभा कहते नहीं बनती; उसके बिना (अर्थात् प्रियतम के बिना) पल (भर) (भी) चैन (से) किसी प्रकार नहीं रहती ('कल पल ता बिना न कैसे हू रहति है')। कृष्ण जिसके जागरण कराने वाले होते हैं (कृष्ण के कारण जो रात को जगती है)।

इन्द्रपुरी-पक्ष में :—जहाँ देवताओं (की) सभा, सुन्दर इन्द्र ('सु वासव') (और) सुधा का सार है; जिसमें ऐरावत की चाल भी मिलती है (जहाँ ऐरावत देखने को मिलता है)। देखने में उर्वशी के समान और (अर्थात् दूसरी स्त्री) कैसे (है) ? (तात्पर्य यह कि उर्वशी के टक्कर की दूसरी स्त्री नहीं है); (मैंने) मेनका की भी छवि ('द्युति') देखी, जो हृदय को हर लेती है। सेनापति (कहते हैं कि) जिस इन्द्राणी की शोभा कहते नहीं बनती (वह) (वहाँ है); (इन्द्रपुरी) कल्पतरु (से) रहित किसी प्रकार नहीं रहती (अर्थात् कल्पतरु वहाँ सर्वदा पाया जाता है)। जिसके विहारी (अर्थात् जिसमें रहने वाले) जागरण करने वाले होते हैं (जिस इन्द्रपुरी के निवासी देवता हैं जो कभी नहीं सोते)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

विशेष :—अन्तिम पंक्ति में यति-भंग दोष है।

(२३)

शब्दार्थ:—पासा=१ प्रेम-पाश २ हाथी दाँत अथवा हड्डी के बने हुए तीन चौपहल टुकड़े जिन्हें फेंक कर, चौसर खेलने में, गोटों की चाल निश्चित की जाती है। नरद=१ ध्वनि, नाद २ चौसर खेलने की गोटी। बिसाति=१ आधार २ चौपड़ खेलने का कपड़ा जिस पर खाने बने हुए होते हैं। मीठी=प्रिय। चौपर=चौपड़, एक प्रकार का खेल जो चार रंग की चार चार गोटियों द्वारा खेला जाता है।

अर्थ:—प्रिय स्त्री निश्चित रूप से मानों सजाई हुई चौपड़ है।

स्त्री-पक्ष में:—सेनापति (कहते हैं कि) उसके प्रेम-पाश की सुन्दरता का वर्णन नहीं करते बनता (जिन युक्तियों से वह लोगों को अपने प्रेम में फँसा लेती है उनका वर्णन करना कठिन है), वह (मधुर) ध्वनि करती है ('सो नरद करि रहै'—अर्थात् मधुर वाणी से बोलती है), (उसने) सुन्दर दाँत धारण किए हैं (उसके दाँत अत्यंत सुन्दर हैं)। वह शोभा का आधार (है) (शोभा से परिपूर्ण है), अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण करती है, (उसका) मुख प्रवीण है (मुख से उसकी प्रवीणता झलकती है), गिन गिन (कर) क़दम रखती है (गज-गामिनी है)। विधाता (ने) संसार (में) (उसे) कामदेव से बचने का उपाय ('को उपाउ') बनाया है (उसी की शरण में जाने से कामदेव से रक्षा होती है); जिस (स्त्री) के वश (में) संत (भी) पड़ जाते हैं (जिसे देख संत भी मोहित हो जाते हैं), (तथा) (वे) कहते हैं (कि हम) (इस पर) निछावर हैं (अपने को निछावर कर देते हैं) अथवा जिसके वश (में) पड़ने से संत (जन) कहते हैं (कि) बाला (का) त्याग कर दो ('संत कहै तजु बारी है')। स्त्री विजय की निधि है (सब पर विजय प्राप्त करती है), (तथा) हार को धारण करती है।

चौपड़-पक्ष में :—सेनापति (कहते हैं कि) पासे की सुन्दरता वर्णन करते नहीं बनती, सोलह गोटें हाथी दाँत द्वारा सुधारी गई हैं (सुधार कर बनाई गई हैं)। बिसात शोभा वाली (है) (सुन्दर है), अनेक प्रकार के वस्त्रों (को) धारण करती है (बिसात के खाने नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों द्वारा बनाए गए हैं), (उसका) मुख चौकोर है (बिसात कपड़े के चार चौकोर टुकड़ों द्वारा बनाई गई है),

(जिसमें) गोटें गिन-गिन कर चली गई हैं। (गोटों को) पिटने से बचाकर कोई (व्यक्ति) यत्न करने पर (बाज़ी) को पाता है (जीत जाता है); संसार (में) जिसके वश (में) पड़ने से सज्जन (लोग) जुवाड़ी कहते हैं (चौपड़ खेलने वालों को लोग 'जुवाड़ी' की संज्ञा देते हैं)। (चौपड़) जीत की निधि है (खूब जिता देती है), (तथा) धन (की) हार को (भी) धारण करती है (कभी-कभी हरा भी देती है)।

अलंकार:—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(२४)

शब्दार्थ :—धन = १ युवती की २ संपत्ति। तारें = १ आँख की पुतली २ ताटंक।

अवतरण :—एक पक्ष में नायिका अपने प्रियतम को अन्य स्त्रियों में अनुरक्त होने के कारण तथा उससे उदासीन रहने के कारण उलाहना दे रही है। दूसरे पक्ष में कोई सुनार अपने स्वामी के पास ताटंक बना कर लाया है और उससे इस बात का उलाहना देता है कि वह अन्य लोगों के प्रति अधिक कृपा-दृष्टि रखता है तथा उसकी अवहेलना करता है।

नायिका-पक्ष में :—(हे) प्रियतम ! तुम्हारी अनेक अमूल्य प्रियतमाएँ हैं इसी से मेरे कंचन-वर्ण (वाले) शरीर (को) अपमानित करते हो। (हम) (तुम्हारे) पैरों पड़ती हैं (किंतु तुम्हें हमारा कुछ भी ध्यान नहीं); प्रार्थना करने से भी जो स्त्रियाँ अधर नहीं देती हैं उन्हीं की ओर तुम आकृष्ट होते हो। मार्ग में टकटकी लगाकर (हे) प्रियतम ! (तुम्हें) अनेक प्रकार (से) तौला (तुम्हारी प्रतीक्षा कर तुम्हारे वचनों की सत्यता परखी अर्थात् नियत समय पर न आने से तुम्हारे वादों तथा तुम्हारे प्रेम को समझ लिया); (तुम्हें) प्राण सहित (सब कुछ) अर्पण कर दिया, तिस पर भी तुम हठ करते हो (हमारे यहाँ नहीं आते)। नीच व्यक्तियों (को) पीछे छोड़ कर (उनका साथ छोड़ कर) हम ने तुम्हें दूना मन दिया है (दुगने चाव से तुम्हें प्रेम किया है) किंतु (हे) नाथ ! तुम यहाँ पैर तक नहीं रखते (एक बार भी नहीं आते हो)।

सुनार-पक्ष में :—हे स्वामी ! तुम्हारे अगणित (तथा) अमूल्य संपत्ति है, इसी से तुम मेरे थोड़े से सोने (को) निरादृत करते हो। (हम) पैरों पड़ते

हैं, प्रार्थना भी करते हैं (किंतु तुम हमारी एक बात भी नहीं सुनते हो); तुम को जो आधी रत्ती भी नहीं देते (हैं) उन्हीं की ओर तुम आकृष्ट होते हो (उन्हीं से प्रसन्न रहते हो)। मैंने ताटंकों (को) बँटों में मिला कर अनेक प्रकार से तौला (जिससे आप को संतोष हो जाय), (तथा) कुछ जिदा तौला है, फिर भी तुम हठ करते हो (कि अभी कम तौला है)। हम (ने) तुम्हें दूने मन से (यह आभूषण) दिया है (अर्थात् बड़े उत्साह पूर्वक तौल से कुछ अधिक दिया है); (फिर भी) नीच व्यक्तियों (को) पीछे रख कर (उन्हें सहारा देकर) हे नाथ ! तुम (अब भी) पावना निकालते हो (अब भी कहते हो कि हमें कुछ मिलना है)।

अलंकार :—श्लेष, मुद्रा (मन, अधमन तथा पाव आदि तौलों के नाम आ गए हैं)।

(२५)

सून सेज रत........ करति है :—१ (संयोगिनी-पक्ष में) पुष्प-शैय्या में अनुरक्त होकर रति-क्रीड़ा करती है। २ (वियोगिनी-पक्ष में) रति-शैय्या सूनी है, जो कामनाओं की केलि किया करती है। आगामी संयोग के सुखों की कल्पना में ही तल्लीन रहती है। जाके घरी है बरस—१ (संयोगिनी-पक्ष में) संयोग-सुख के कारण एक वर्ष भी घड़ी भर के बराबर है। २ (वियोगिनी-पक्ष में) जिसके लिए घड़ी भर समय भी एक वर्ष के समान है।

(२६)

शब्दार्थ :—धन=१ स्त्री २ संपत्ति। अनुकूल=१ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त रहता हो २ वह व्यक्ति जो किसी बात का पक्षपाती हो। बनिजु=१ स्त्री ('बनि जु') २ व्यापार की वस्तु। लछि पाइहै=१ देख पाओगे २ लक्ष्मी अथवा संपत्ति पाओगे। पतियार=१ विश्वास करने योग्य अथवा विश्वसनीय २ पतवार। बन=१ बन कर २ जल। बल्ली=१ लता २ मल्लाहों का बाँस। आसना=प्रेमिका।

अर्थ :—स्त्री-पक्ष में—स्त्री मोती, मणि (तथा) माणिक्य द्वारा पूर्ण (है) (मोती, मणि आदि उसके आभूषणों में लगे हुए हैं); विशुद्ध (आभूषणों के) बोझ (से) भरी हुई अनुकूल (नायक) (के) मन (को) अच्छी लगेगी। स्त्री जिसके घर (में) रहेगी उसी का उत्तम भाग्य (समझना चाहिए), सेनापति

(कहते हैं कि) जब (तुम) (उसे) देख पाओगे (तब) प्रसन्न होगे। तुम विश्वसनीय (हो) (तुम विश्वास-पात्र हो, उसे धोखा नहीं दोगे) (अतएव) तुम्हीं उसके हाथ पकड़ो (उससे विवाह कर लो), सुन्दर लता बन, तुम्हारे हृदय ('तौ ही') (से) भली प्रकार लग कर ठहरेगी (लता के सदृश तुमसे चिपटी रहेगी), (वह) रस-सिंधु (के) मध्य (में है) (अर्थात् अत्यंत रस-पूर्ण है) मानों सिंहल (द्वीप) से आई (है); (यही नहीं) तुम्हारी प्रेमिका भी (है), (इसके) गुण ग्रहण करो (इसकी विशेषताओं को देखो), (यह) (तुम्हारे) समीप आएगी (तुम्हारी होकर रहेगी)।

नौका-पक्ष में :—मोती, मणि, माणिक्य (आदि) संपत्ति द्वारा पूर्ण (है) बहुत बोझ (से) लदी है, अनुकूल (व्यक्ति) (के) मन (को) अच्छी लगेगी (जो धन की इच्छा करता है उसे रुचेगी)। जिसके घर (में) व्यापार की (वह) सामग्री रहेगी उसी का उत्तम भाग्य (समझना चाहिए), सेनापति (कहते हैं कि) जब (उस) संपत्ति (को) पाओगे (तब) प्रसन्न होगे। उसके (उस नौका के) तुम पतवार (तथा) तुम्हीं कर्णधार (माँझी) (हो), तुम्हीं जल (में) सुन्दर (अथवा मजबूत) बल्ली लगा कर (उसे) ठहराओगे। तुम्हारी आशा (से) सिंधु (के) जल (के) बीच (है); वह मानों सिंहल (द्वीप) से आई है; नौका (की) रस्सी पकड़ो, (वह) किनारे आएगी (तुम्हारे ही लिए वह नौका सिंहल द्वीप से आई है, उसकी डोरी पकड़ कर खींच लो तो किनारे आ जायगी)।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—सिंहल द्वीप :—भारतवर्ष के दक्षिण की ओर का एक द्वीप जो प्राचीन काल में व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि यहाँ की स्त्रियाँ अत्यंत रूपवती होती थीं। कुछ लोग इसे रामायण वाली लंका कहते हैं।

(२७)

शब्दार्थ :—तूल = १ तुल्य २ रूई, कपास। चौंर = चँवर, लकड़ी अथवा सोने चाँदी की डंडी में लगा हुआ सुरागाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो राजाओं अथवा देवताओं के सिर पर डुलाया जाता है।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि स्त्री) हरे (तथा) लाल वस्त्र (पहने हुए) देखी जाती है, वारी स्त्री ('वारी नारी') निदान बुढ़िया (की भाँति) (अर्थात् बुढ़िया के लक्षणों से युक्त) घर (में) बसती है।

युवा-पक्ष में :—देखने में नवीन है, पर्वत (के आकार के) कुच सीने (पर) (शोभित) हो रहे हैं, (मैंने उसे अच्छी प्रकार) देखा, (तू भी) भली प्रकार (से) (उसे) देख, (उसके) मुख में दाँत हैं। वर्षों में सोलह (की है), नवीन (है), एक (ही) निपुण है (अर्थात् बड़ी चतुर है); यौवन के मद (से) पूर्ण, मंद (गति) (से) ही चलती है। (उसके) केश मानो चँवर (के) समान (हैं) (जो) उसके बीच (उसके शिर पर) झलक रहे हैं, वस्त्र के (अन्दर के) (अर्थात् घूँघट के) कपोल, (तथा) मुख शोभा धारण करने वाले हैं।

वृद्धा-पक्ष में :—देखने में झुकी है (कमर झुक गई है), कुच सीने (पर) गिर गए हैं (लटक गए हैं); (मैंने उसे अच्छी प्रकार) देखा, (तू भी) भली प्रकार देख ले, (उसके) मुख में (एक भी) दाँत नहीं है ('रद न है')। वर्षों में नवासी (से भी) एक (वर्ष) अधिक है (अर्थात् ८९+१=९० वर्ष की है); धीरे धीरे चलती (है), (उसमें) यौवन (का) मद नहीं है। केश मानो रूई के चँवर (के समान) (हैं) (जो) उसके बीच (अर्थात् शिर पर) झलक रहे हैं; कपोल पिचके हुए (हैं) (तथा) मुख शोभा धारण करने वाला नहीं है ('सोभा धर न बदन है')।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा।

(२८)

शब्दार्थ :—इंद्रनील=नीलम। पद्मराग=कमल के रंग वाले। तारे=१ नेत्र २ ताले। तारी=१ निद्रा २ ताली। तासौं लगे तारे........इ०=१ (यदि) उस (स्त्री) (से) नेत्र लग गए (तो) फिर किसी प्रकार नींद नहीं पड़ती; (जिन लोगों के) मन (उसके सौंदर्य) (में) लीन हो गए हैं वे अब ('ते+अब') किस प्रकार निकल सकते हैं? (अर्थात् उसके प्रेम में फँस जाने से मन अपने वश में नहीं रहता है) २ उस (कोठरी में) ताले लगे हुए (हैं), फिर किसी प्रकार ताली नहीं लगती; (जो) रत्न ('मन') (उसमें) फँस गए (हैं) वे अब किस प्रकार निकल सकते हैं। (अर्थात् कोठरी में ताला लग जाने से उसके भीतर के रत्न लोगों को अप्राप्य हो जाते हैं क्योंकि उस कोठरी के ताले में दूसरी ताली नहीं लग सकती)।

अलंकार :—प्रस्तुत कवित्त प्रधानतया सांग रूपक है, केवल अन्तिम पंक्ति श्लिष्ट है।

(२९)

शब्दार्थ :—ज्यारी=हृदय की दृढ़ता, साहस। गोसे=१ एकान्त स्थान २ कमान की दोनों नोकें। तीर=१ समीप २ वाण।

अर्थ :—(हे सखी !) कृष्ण ऐसे फिर गए (चले गए) जैसे कमान फिर जाती है (कृष्ण के रूठ कर चले जाने से वैसी ही विवशता होती है जैसी कमान के फिर जाने से)।

कृष्ण-पक्ष में :—कृष्ण का दूसरा ही रुख हो गया है इससे (हे) सखी ! (अब हृदय को) कैसे साहस हो; (कृष्ण को वश में करने की) युक्तियाँ व्यर्थ हुईं; (अपना) कुछ भी वश नहीं है (अपने क़ाबू के बाहर की बात है)। (कभी) एकान्त (में) नहीं मिलते, (उनके) समीप (होने) का किस प्रकार संयोग हो (यदि एकान्त में मिलें तो उनकी सहचरी बनने के लिए उनसे प्रार्थना करूँ); पहले का सा रुझान किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है (पहले जो अनुरक्ति उन्होंने दिखलाई थी उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है) लाल (का) श्याम वर्ण चित्त (में) चुभ रहा है; (यह) दुखदाई वर्षाऋतु किस प्रकार व्यतीत होती है (लाल के वियोग में वर्षाऋतु किस प्रकार व्यतीत हो)। हाथ पकड़ने से पाँच (भले) आदमियों से लज्जा आती है (यदि मैं किसी दिन मार्ग में उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोकने का विचार करूँ तो लोक-लाज का संकोच होने लगता है)।

कमान-पक्ष में :—(कमान) का रुख दूसरा हो गया (है) (उसके दोनों सिरे ऊपर की ओर घूम गए हैं), इससे (हे) सखी ! धैर्य किस प्रकार हो। (कमान के) जोड़ व्यर्थ हो गए हैं (अर्थात् वे अब काम नहीं करते हैं), (अपना) कुछ भी वश नहीं है (अपनी शक्ति के बाहर की बात है)। कमान के सिरे (अब) नहीं मिलते, तीर (चलाने का) संयोग किस प्रकार हो (धनुषकोटि के न मिलने के कारण तीर नहीं चलाया जा सकता है); (कमान का) पहले का सा झुकाव किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। सेनापति (कहते हैं कि पक्षियों आदि के) लाल

(तथा) श्याम (आदि) रंग चित्त (में) चुभ रहे हैं, दुखदाई वर्षा ऋतु किस प्रकार व्यतीत (हो) सकती है । (कमान को) हाथ (में) लेने से पाँच आद-मियों से लज्जा आती है (ऐसी बेढँगी कमान हाथ में लेकर पाँच भले आदमियों के सामने निकलने में लज्जा लगती है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष ।

विशेष :—कमान-पक्ष में 'सेनापति लाल स्याम रंग......इ०' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। अन्य किसी समुचित अर्थ के अभाव के कारण उपर्लिखित अर्थ दे दिया गया है यद्यपि वह बहुत संतोष-जनक नहीं है ।

(३०)

शब्दार्थ:—सीरक=शीतल । रजाई=१ लिहाफ २ आज्ञा । दुसाल=१ दुशाला २ दूना सालने वाले अर्थात् बहुत अधिक वेदना उत्पन्न करने वाले ।

अर्थ:—प्रिय स्त्री समस्त शीत दूर करने वाले वस्त्रों का समूह है; (फिर) हृदय के अन्दर स्थान देने से (अर्थात् हृदय में धारण करने से) शीत क्यों नहीं हरती ?

स्त्री वस्त्रों के समूह के रूप में:—समस्त रात्रि साथ सोने पर हृदय शीतल हो जाता है; थोड़ा सा आलिंगन करने से रजाई (का सा सुख) मिलता है । वही उरोज (अर्थात् उस स्त्री के उरोज) हृदय से लग कर दुशाला हो जाते हैं (उरोजों का स्पर्श दुशाले के समान सुख-दायक है); (स्त्री का) शरीर नवीन सुवर्ण से (भी) अधिक स्वच्छ (है) । जिस (स्त्री) के शरीर (को) थोड़ा सा छूने से तनसुख (कपड़े) (की) राशि (के छूने का सा अनुभव होता है); सेनापति (कहते हैं कि) (जिसे) समीप लेने से (जिसके समीप रहने से) कामदेव स्थिर (रहता) है ('थिर मार है') (स्त्री के समीप रहने से काम-पीड़ा नहीं सताती है) ।

स्त्री-पक्ष में :—(जिसके) साथ समस्त रात्रि सोने पर हृदय शीतल हो जाता है; (जिसे) आलिंगन (आदि) करने से (रति-क्रीड़ा की) आज्ञा मिलती है । वही उरोज (अर्थात् उस स्त्री के उरोज) हृदय से लग कर बहुत अधिक पीड़ा उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं (उरोजों का स्पर्श काम-पीडा को बहुत अधिक बढ़ा देता है); (उसका) शरीर नवीन सुवर्ण से (भी) अधिक स्वच्छ (है) ।

जिसके शरीर के थोड़ा सा छू जाने से शरीर (को) सुख (की) राशि (अर्थात् अत्यंत सुख) (का) (अनुभव होता है); सेनापति (कहते हैं कि) (जिसे) समीप रखने से स्थिरता ('थिरमा') रहती है (अर्थात् चित्त सावधान रहता है)।

अलंकार:—रूपक, श्लेष।

विशेष:—(१) इस कवित्त में रूपक अलंकार को इस ढंग से श्लेष के साथ मिला दिया गया है कि दोनों पक्षों को निर्धारित करना कठिन हो जाता है। कदाचित् उपर्लिखित दोनों पक्ष ही कवि को अभीष्ट रहे होंगे।

(२) कवि ने 'थिरता' के स्थान पर 'थिरमा' शब्द गढ़ लिया है क्योंकि दूसरे पक्ष में वह पद-भंग श्लेष द्वारा 'थिर मार है' का अर्थ निकालना चाहता है।

(३१)

शब्दार्थ:—अरुन=१ लाल २ सूर्य। अधर=१ ओठ २ आकाश अंतरिक्ष। जुव जन=१ युवा पुरुष २ सर्वदा युवा रहने वाले देवता। कवि=१ पंडित २ शुक्राचार्य। मंद गति=शनिश्चर जिसकी चाल अन्य नक्षत्रों से बहुत धीमी मानी गई है। तम=राहु जो कि श्याम वर्ण का माना जाता है। अंबर=१ वस्त्र २ आकाश। रासि=१ ढेरी, समूह २ सूर्य-पथ के मंडल के एक भाग को राशि कहते हैं। राशियाँ बारह मानीं जाती हैं। नवग्रह=फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह माने गए हैं।

अर्थ:—मेरी समझ में बाला नवग्रहों का समूह है।

बाला-पक्ष में:—लाल ओठ शोभित हो रहे हैं, समस्त मुख चंद्रमा (सा) (शोभित हो रहा है)। उस स्त्री का दर्शन मंगल-प्रद (है)। (बुद्धि) बुद्धिमानों (की) बुद्धि से (भी) बड़ी है। सेनापति (कहते हैं कि) जिससे समस्त युवा पुरुष (उसके) सेवक ('जीवक') हैं (उक्त गुणों के कारण युवा पुरुष उसके दास बनने को तैयार हैं); (वह) पंडिता (है), अत्यंत मंद गति (से) (गज-गामिनी सी) मनोहर (चाल) चलती है। (उसके) केश अंधकार (के वर्ण वाले) हैं (अर्थात् काले हैं), (वह) कामदेव की विजय (के) भांडार (की) पताका ('केतु') है (अर्थात् उसी के द्वारा कामदेव ने सारे संसार पर विजय प्राप्त की है); जिस

(स्त्री) की ज्योति के समूह (से) संसार जगमगा रहा है । वस्त्रों (में) शोभित होती है (और) सुख (के) समूहों का भोग कराती है (अर्थात् लोगों को अनेक सुखों का उपभोग कराती है) ।

नवग्रह-पक्ष में :—पूर्व आकाश (में) शोभित है, कलाओं सहित चंद्रमा (का) मंडल (भी) (शोभा पा रहा है), मंगल दर्शनीय (है), बुद्धि द्वारा बुध भव्य ('बिसाल') है (अपनी बुद्धिमत्ता के कारण बुध बहुत मनोहर लगता है) । सेनापति (कहते हैं कि) जिसे सब देवता लोग बृहस्पति कहते हैं ('जीव कहैं'), (वह विराजमान है); शुक्र (भी है), अत्यंत मंद गति (शनि) मनोहर (गति से) चल रहा है । केश (के रंग वाला) राहु है (राहु श्याम वर्ण का है), केतु कामनाओं की विजय का भंडार है (पाप-ग्रह होने के कारण केतु लोगों की इच्छाओं को पूर्ण नहीं होने देता, उसके पास ऐसे कष्ट-कर फल देने की सामग्री है कि लोगों की मनोकामना कभी पूर्ण ही नहीं होने पाती, वह सब पर विजय प्राप्त करता है), जिन (नवग्रहों) (की) ज्योति के समूह (द्वारा) संसार जगमगाता है (सारे संसार में रोशनी होती है) । (ऐसी नवग्रहों की माला) आकाश (में) शोभित होती है (और) राशियों के सुखों (तथा दुःखों) का उपभोग कराती है ।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष ।

(३२)

अवतरण :—एक पक्ष में कोई स्त्री अपनी सहचरी के कपोल के काले तिल का वर्णन कर रही है, दूसरे पक्ष में कोई व्यक्ति काली तिल्ली का वर्णन कर रहा है ।

अर्थ :—कपोल के तिल के पक्ष में :—कमल (रूपी) मुख के साथ ही जिसका जन्म (हुआ है), अंजन (का) सुन्दर रंग जिसकी समता (को) नहीं पहुँचता है । सेनापति (कहते हैं कि यह तिल) जब, जिसे, थोड़ा सा (भी) दिखलाई पड़ता है (तो उसे मुग्ध कर देता है), (इसे देख कर) अत्यंत विरक्त मुनियों का हृदय भी प्रेम-युक्त हो जाता है । (तेरे कपोल का तिल तेरे) रूप को बढ़ाता है, समस्त रसिक जनों को अच्छा लगता है, (लोगों के हृदय में) मधुर प्रेम उत्पन्न करता है (लोग तुमसे प्रेम करने लगते हैं), किंतु (वह) स्वयं नष्ट नहीं होता है (तिल का सौंदर्य एक सा ही बना रहता है) । (हे) सखी ! कृष्ण

('वनमाली') (ने) (अपना) मन (तुम्हारे) फूल (के से मुख) में बसाया है (अर्थात् तुम्हारे कमल-मुख में उनका चित्त रम गया है); तेरे कपोल (पर) (जो) बहुमूल्य तिल है वह शोभा पा रहा है।

तिल्ली-पक्ष में :—मुख (रूपी) कमल के साथ ही जिसका जन्म हुआ है (कमलों के खिलने के साथ ही तिल के पौधे ने भी जन्म लिया है), अंजन का सुन्दर रंग (भी) जिसकी समता (को) नहीं पहुँचता (अर्थात् तिल अंजन से भी अधिक काले वर्ण का है)। (तिल का पुष्प) अत्यंत विरक्त मुनियों (के) हृदय को भी सरस कर देता है; सेनापति (कहते हैं कि यह) जब, जिसे, थोड़ा सा दिखलाई पड़ता है (तो उसे मुग्ध कर देता है)। (पेरे जाने पर अथवा तेल बनाए जाने पर तिल) रूप को बढ़ाता है, समस्त रसिक जनों को अच्छा लगता है (और) मीठा तेल उत्पन्न करता है किंतु स्वयं विनष्ट नहीं होता है (खली के रूप में वह फिर दूसरे काम में आता है)। (हे) सखी ! वन (के) माली (ने) (इस तिल को) मनों फूलों में बसाया है।

अलंकार :—श्लेष, रूपक, प्रतीप ('वदन सरोरुह'—प्रसिद्ध उपमान कमल को उपमेय कहा गया है तथा उपमेय मुख को उपमान का स्थान दिया गया है)।

विशेष :—'तिल'—तिल्ली आषाढ़ मास में बोई जाती है (जब कमल खिलते हैं) और क्वाँर में काटी जाती है। इसकी एक दूसरी फ़सल भी होती है जो चैत में काटी जाती है। इसका तेल मीठा होता है। इसे फूलों में बसा कर अनेक प्रकार के सुगंधित तेल बनाए जाते हैं। किसी बड़े हौज़ में एक तह तिल्ली की बिछा दी जाती है तथा उसके ऊपर एक तह फूलों की; इसी प्रकार हौज़ भर दिया जाता है। फूलों के सड़ कर सूख जाने पर वे फेंक दिए जाते हैं और तिल्ली को पेर कर तेल निकाल लिया जाता है।

(३३)

शब्दार्थ :—बीच=१ तरंग, लहर २ मध्य भाग। रंग=१ युवावस्था २ आनंद-उत्सव। काम=१ कामदेव २ कारीगरी, रचना, बनावट। भुव=१ भौंह २ पृथ्वी। अंबर=१ वस्त्र २ आकाश। चटमट=चपल। सुद्ध=१ शुद्ध २ सीधा। चितै=१ देख कर २ चित्त को। ललन=प्रिय नायक।

अर्थ :—प्रिये ! नायक (के) सामने तेरे नेत्र नट (के) समान नाचते हैं।

नेत्र-पक्ष में :—कानों को छूते हैं (अर्थात् बहुत बड़े हैं); कुंडल के (समीप) तरंग-वत् जाते हैं; युवावस्था में कामदेव के योद्धा के समान क्रीड़ा करते हैं। चंचल भ्रू सहित वस्त्र (के) अन्दर (अर्थात् घूँघट में) खेलते हैं; देखते ही (प्रेम-पाश में) बाँध लेते (हैं), (नेत्रों की) चितवन चपल रहती है। शुद्ध, गुणवान् ऊँचे वंश (वाले व्यक्ति को) देख कर शीघ्र ही (जा) लगते हैं (उससे प्रीति जोड़ते हैं); रति (के समय) हावभाव ('कला') करते हैं (और) देख कर (मन को) अत्यंत मुग्ध (कर देते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) (नेत्रों ने) नायक ('प्रभु') (को) (अपने) संकेतों के वश (में) कर लिया (है)।

नट-पक्ष में :—हाथ (से) नहीं छूते (बिना हाथ से छुए ही), कुंडल के मध्य भाग (से) होकर (निकल) जाते हैं; आनंद-उत्सव के समय खेल-तमाशा करते हैं; (अपनी) कारीगरी (में) योद्धाओं के समान (हैं) (अपनी कला में योद्धाओं के समान कठिन से कठिन काम कर दिखलाते हैं)। पृथ्वी (तथा) आकाश में चंचलता से खेलते हैं, देखते ही नजर बाँध देते हैं (जादू आदि के प्रभाव से कुछ का कुछ कर दिखाते हैं) (और) (बहुत) फुर्तीले रहते हैं। रस्सी सहित (अर्थात् डोरियों से बँधा हुआ) ऊँचा (तथा) सीधा बाँस देख, दौड़ कर (उस पर) चढ़ जाते हैं (और) कलाबाजी करके चित्त को बिल्कुल मोहित करते हैं। सेनापति (कहते हैं कि) (इन्होंने) श्रेष्ठ स्वामी (को) भली प्रकार ('नीके') वश में किया (है)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

विशेष :—'कुंडल'—(१) कान का एक आभूषण विशेष (२) रस्सी का वह गोल फंदा जिसे नट लोग शून्य में बाँसों की सहायता से बाँध कर तैयार करते हैं। वे उस फंदे के भीतर से कलाबाजी खाते हुए निकलते हैं और अनेक प्रकार के खेल-तमाशे दिखलाते हैं।

(३४)

भूलि कै भवन भरतार जनि रहियै :—प्रियतम के आने पर नायिका अपने श्लिष्ट-कथन द्वारा उलाहना भी देती है और साथ ही उसे रात्रि में ठहरने को भी कहती है—१ प्रियतम ! (आप) भूल कर (भी) (मेरे) घर (में) मत रहिए। २ प्रियतम ! ('भरता') भूल कर (ही) (मेरे) घर (एक) रात रहिए ('रजनि रहियै')।

(३१)

शब्दार्थ :—केसौ=१ कृष्ण २ केश। पति=१ प्रतिष्ठा २ स्वामी। करन=१ कर्ण २ कान। बीर=१ बहादुर २ "एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कान में पहनती हैं। यह गोल चक्राकार होता है और इसका ऊपरी भाग ढालुआँ और उठा हुआ होता है तथा इसके दूसरी ओर खूँटी होती है जो कान के छेद में डाल कर पहनी जाती है। इसमें ढाई तीन अँगुल लंबी कंगनीदार पूँछ सी निकली रहती है जिसमें प्राय: स्त्रियाँ रेशम आदि का झब्बा लगवाती हैं। यह झब्बा पहनते समय सामने कान की ओर रहता है"। संतनु=१ चंद्रवंशी राजा शांतनु २ संत लोग। तनै=१ पुत्र को २ शरीर को। अनी=सेना।

अर्थ :—(यह) महाभारत की सेना (है) या बनी-ठनी सुन्दर स्त्री है।...

महाभारत की सेना के पक्ष में :—जहाँ (पर) अर्जुन की मर्यादा (की रक्षा के) लिए अत्यंत बड़े कृष्ण (हैं), अत्यंत चाल (वाली) (अर्थात् अत्यंत तेज) घोड़ों की (पंक्ति) भली भाँति (से) सुधारी (हुई) है। मणि (के) समान वीर कर्ण दुर्योधन के साथ (हैं), शांतनु (के) पुत्र (भीष्म) (को) देख कर (लोगों ने) सुध-बुध भुला दी है (भीष्म को देख कर लोग घबड़ा से गए हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) नकुल का शील सर्वदा शोभित होता है (भला लगता है), देखिए भीमसेन (के) शरीर (की) शोभा महान् है। जिस (महाभारत की सेना) के (गुण) 'आदि' (तथा) 'सभा' पर्व ('आदि सभा परब') कहते हैं वह तैयार हो रही है ('सो सपरति')।

स्त्री-पक्ष में :—जहाँ केश भी अत्यंत बड़े (हैं), पति (के) कार्य (में) अड़ नहीं है ('अर जु न पति-काज') (अर्थात् स्त्री पति का काम करने में अड़ती नहीं, किसी प्रकार का हठ नहीं करती; तुरंत कर डालती है); (उसकी) चाल बहुत अच्छी (है) ('गति अति भली'), (जो) विधाता (रूपी) बाजीगर की बनाई हुई है। कानों (के) बीर मणि-युक्त (है) ('करन बीर मनी सौं')। (तथा) जो स्त्री की बाली ('दुर') के साथ (हैं) ('जो धन के दुर संग'), संतो (ने) शरीर को देखकर (ब्रह्म का) ध्यान भी ('सुरत्यौ') भुला दिया है (स्त्री के शरीर को देखकर संतों का ध्यान भंग हो गया है)। सर्वदा अनुकूल (प्रसन्न) शोभित होती है ('सोहत सदानकूल'); सेनापति (कहते हैं कि उसके

सामने) शील क्या है ? (अर्थात् बड़ी शीलवान् है), (उसके) बड़े नेत्रों ('भीम सैन') (को) देखिए, शरीर (की) कान्ति महान् है। जिस (स्त्री) के कहने आदि से सभा पराधीन हो जाती है (अर्थात् जिसकी बातचीत आदि सुन कर लोग अपने वश में नहीं रहते, उस पर मुग्ध हो जाते हैं)।

अलंकार :—संदेह, श्लेष, रूपक, उपमा।

विशेष :—१ 'दुर'—यह शब्द फ़ारसी का है। यहाँ पर कान की बाली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदा :—

"काल्ह कुँवर को कनछेदनों है हाथ सुहारी भेली गुर की।
कंचन के द्वै दुर मँगाय लिए कहै कहा छेदन आतुर की।"

(सूर)

२ 'सपरना' क्रिया के प्राय: दो अर्थ पाए जाते हैं। पश्चिमी प्रदेशों में यह स्नान करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। पूर्वी प्रदेशों में इसका प्रयोग तैयार होने के अर्थ में होता है। यहाँ पर यह पूर्वी अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

(३६)

शब्दार्थ :—पति=१ स्वामी २ प्रतिष्ठा, मर्यादा। अरगजा=एक सुगंधित लेप जो कपूर, केशर और चंदन आदि को मिला कर बनाया जाता है। नासि कै=१ नष्ट करके २ नाक को।

अर्थ :—मान-पक्ष में—(मान के कारण नायिका ने) लाल रंग में ही रँगे हुए वस्त्र धारण कर रक्खे हैं; अवगुण (रूपी) ग्रन्थि पड़ी (हुई) है जिससे (मान) ठहरता है (अर्थात् नायक में किसी दुर्गुण के होने के कारण ही नायिका मान किए हुए है)। यौवन के प्रेम (के) साथ भली प्रकार मिला कर रक्खा है (फिर भी मान शांत नहीं होता—रति की प्रबल इच्छा उत्पन्न करने वाली युवावस्था के होते हुए भी नायिका ने मान कर रक्खा है)। (मान) कामाग्नि से भी जल कर शांत नहीं होता है। सेनापति (कहते हैं कि) जिस (मान) के प्रभाव से पति अलग है ('पति है अरग'); इससे (अर्थात् नायक-नायिका को पृथक् कर देने वाले गुण के कारण) संभोग (के) सुख को नष्ट कर अच्छा लगता है (मान पहले नायक-नायिका को पृथक् कर रति-सुख को नष्ट कर देता है किंतु बाद में उसका फल बहुत ही मधुर होता है—कुछ काल तक वियोगावस्था में रहने के

कारण नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम और भी बढ़ जाता है)। (मान) सुख का भांडार (है), संसार को त्रिविध वायु (शीतल, मंद, सुगंध) (के) मिलने से (संपर्क से) मान (ऐसे उड़ जाता है) जैसे कपूर उड़ जाता है।

कपूर-पक्ष में :—लाल रंग (से) रँगे हुए वस्त्र में ही रक्खा गया (है)। अब रस्सी ('अब गुन') (की) गाँठ पड़ी हुई है जिससे (वह) ठहरता है (कपूर को लाल कपड़े में रख कर सुतली से गाँठ दे दी गई है जिससे वह उड़ नहीं गया है)। जो (कपूर) बन की घुँघची ('जो बन की रती') से भली भाँति मिलाकर रक्खा गया है; (जो) कामाग्नि से जल कर बुझता नहीं है (अर्थात् विरहिणियों के शरीर पर लेप किए जाने पर भी जल कर भस्म नहीं होता—वैसे ही बना रहता है)। सेनापति (कहते हैं कि) हे कपूर ! तू ('तैं') अरगजा की प्रतिष्ठा (तथा) गौरव (है) (बिना कपूर के मिलाए अरगजा की बड़ाई नहीं होती है); इससे (तुझ से) (लोगों को) अत्यंत प्रेम (तथा) सुख (है), (क्योंकि तू) नाक को अच्छा लगता है (तेरी गंध सूँघने में अच्छी है)। (तू) सुख का भांडार (है); तीनों लोकों (स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक, तथा पाताल) (की) वायु के मिलने से (कपूर उड़ जाता है)।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, विशेषोक्ति (कपूर कामाग्नि के संसर्ग से भी जल कर भस्म नहीं होता "जहँ परिपूरन हेतु ते प्रगट होत नहिं काज")।

विशेष :—कपूर-संरक्षण-विधि में लिखा हुआ है कि कपूर को लाल रंग से विशेष प्रेम होता है। लाल रंग के वस्त्र अथवा लाल रंग की घुँघची में रखने से वह उड़ता नहीं है। लाल रंग के वस्त्र में रख कर डोरे अथवा सुतली आदि से गाँठ दे देने पर तो वह और भी सुरक्षित हो जाता है। गाँठ के कारण हवा से उसका संसर्ग बहुत कम हो जाता है।

(३७)

शब्दार्थ :—अपसर=१ अप्सरा २ वाष्प-कण। लौंग=लौंग की आकार का एक आभूषण, इसे स्त्रियाँ कान अथवा नाक में पहनती हैं। यहाँ पर कवि का अभिप्राय कान की लौंग से जान पड़ता है। लुगाई=स्त्री।

अर्थ :—स्त्री (को) लौंग सा कर, वाणी (के) व्याज (से) वर्णित किया है, जिन्होंने (इस) भेद से (इस भेद को समझ कर) विचार किया है (उन्होंने) उसके (उस वर्णन के) दो प्रकार (से) (अर्थ) लगाए हैं।

स्त्री-पक्ष में :—जो अप्सरा ही की अनुपम शोभा धारण (किए) रहती है (तथा) (जो) सुन्दर सौंदर्य वाली चतुर स्त्री ('सु नारी') है। सेनापति (कहते हैं कि) उसके हृदय (में) एक प्रियतम ही रहते हैं (दूसरे के लिए वहाँ स्थान नहीं है): संसार (में) कामदेव ('मैन') की मूर्ति (है) (अर्थात् कामदेव के उपासक उसी की सेवा करते हैं), (उसने) सुन्दर रत्न धारण किया है ('रतन सु धारी है')। उसे देखने से (लोगों) की प्रीति बढ़ गई है (उसके दर्शन पाने से लोग उस पर और आसक्त हो गए हैं) (तथा) दूसरी बालाओं (के) सौंदर्य (को) (उसने) जला दिया है (श्रीहीन कर दिया है); (वह) सर्वदा शुभ आभूषणों को धारण करती है, (उसके) शरीर (की) कान्ति महान् है।

लौंग-पक्ष में :—जो वाष्प-कण ही की अनुपम शोभा (को) धारण (किए रहती है) (लौंग पर जड़े हुए रत्न वाष्प-कण के सामान जान पड़ते हैं), सुन्दर सौंदर्य लिए हुए (है), चतुर सुनारी है (अर्थात् उसके बनाने में सुनार ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया है)। सेनापति कहते हैं कि (उसके रत्न) ('मन') बाला में ही रहते हैं (लौंग के चारों ओर जड़े हुए रत्न कान में पहनी जाने वाली बाली से बिल्कुल मिले हुए रहते हैं);(ऐसी) एक मूर्ति संसार में नहीं (है) (लौंग की टक्कर का दूसरा कोई आभूषण नहीं है), (वह) रत्नों (द्वारा) सुधारी (गई) है। (उसे) देखने से (नायिका पर) अनुराग बढ़ गया (है) तथा केशों का सौंदर्य क्षीण हो गया (है) (अर्थात् लौंग के रत्नों की चमक के सामने केशों का सौंदर्य फीका पड़ गया है); (सौभाग्यवती स्त्री उसे) शुभ आभूषणों में रखती है (समझती है), (उसके) अंग की कान्ति महान् है (बड़ी सुन्दर लौंग है)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

(३८)

शब्दार्थ :—गौरी=१ पार्वती २ उज्वल। मदन कौं=१ कामदेव को २ मर्दों को। रमै=१ रमता है २ रमा अथवा लक्ष्मी को। नगन=१ नग्न २ पर्वत। जानि=ज्ञानी। उमाधव=उमा के पति शिव।

अर्थ :—शिव-पक्ष में—जिसका नंदी (गण) सर्वदा हाथ (में) आसा (लिए हुए) विराजमान है (शिव की सेवा के लिए उनके गण सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं), (जिसके) शरीर का वर्ण कपूर से भी अच्छा है। (जो) शयन

(का) सुख रखता है (योग-निद्रा में सोया करता है), जिसके मस्तक ('जाके सेखर') (में) सुधा (की) द्युति रहती है (जिसके मस्तक पर चंद्रमा शोभित है), जिसके (हृदय में) पार्वती की प्रीति (है) (पार्वती जिसे बहुत प्रिय हैं), जो कामदेव को नष्ट करने वाला है (काम को जिसने भस्म किया है)। जो समस्त भूतों के मध्य निवास करता है (और उन्हीं में) रमण करता है, हृदय (पर) साँपों (को) धारण करता (है), नग्नों का वेष धारण करता है (दिगंबर वेष में रहता है)। ज्ञानी बिना कहे हुए ही (बिना बताए ही) जान लेते (हैं) (उससे परिचित हैं), सेनापति मा : कर (समझ-बूझ कर), मन के भेद को छोड़ कर (भेद-बुद्धि का परित्याग कर) बहुधा शिव को कहते हैं (शैवों तथा वैष्णवों के झगड़े को छोड़ कर सेनापति शिव का गुण-गान करते हैं)।

विष्णु-पक्ष में :—(जो) 'सदानंदी' (है) (जो सर्वदा आनंदमय है), जिसका आशा कर (लोगों की रक्षा करने वाला वरद-हस्त) विराजमान है, (जिसके) शरीर का वर्ण कपूर से भी अच्छा है। जो शयन-सुख रखता है (क्षीरसागर में शयन किया करता है), जिसके (ऊपर) सुधा द्युति (वाला) (अर्थात् श्वेत वर्ण का) शेष रहता है (जिसके ऊपर शेषनाग अपना फन किए रहता है), जिसकी शुभ कीर्ति ('कीरति') (है), जो मर्दों को नष्ट करने वाला है। जो समस्त भूतों (चराचर) के अन्दर वास करता है (सब में व्याप्त है), रमा (लक्ष्मी) (को) हृदय (में) धारण करता है, (जिसका) भोगी वेष है (जिसका वेष विलासियों का सा है अर्थात् जो शिव आदि की भाँति दिगंबर नहीं रहता है, सांसारिकों की भाँति वस्त्र आदि पहने रहता है), (जो) पर्वतों (को) धारण करता है (कृष्णावतार में जिसने गोबर्द्धन को उठाकर ब्रजवासियों को इन्द्र के कोप से बचाया था)। ज्ञानी बिना कहे ही जान (लेते) हैं (उन्हें बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती), सेनापति मान कर (समझ-बूझ कर), मन (की) भेद-बुद्धि को छोड़ कर अक्सर ('बहुधाउ') माधव (विष्णु) को कहते हैं (उनका गुण-गान करते हैं) (जो ज्ञानी हैं वे तो शिव तथा विष्णु के ऐक्य को जानते ही हैं किंतु सेनापति समझने-बूझने पर इस तत्व पर पहुँचते हैं)।

अलंकार :—श्लेष, यमक।

(३९)

शब्दार्थ :—बल्ली=१ लता २ वह डंडा जिससे नाव खेते हैं। राम बीर=१ बलराम के भाई कृष्ण २ वीर रामचंद्र । तिमिर=१ अंधकार २ मत्स्य विशेष। जोग=१ योग २ उपाय। आगर=चतुर, दक्ष।

अर्थ :—(जो गोपियाँ) कृष्ण के रहने पर कुंजों में रति-क्रीड़ा करने में निपुण थीं, वे ही कृष्ण के बिना वियोग का समुद्र हो गईं ।

गोपियों के पक्ष में :—(विरह के कारण) किसी प्रकार कालक्षेप नहीं करते बनता, लताएँ अच्छी नहीं लगतीं, सोचते (सोचते) लोगों का मन बहुत जड़ हो गया है (अर्थात् विरहाग्नि से मुक्त होने का कोई उपाय सूझता ही नहीं है)। दीनों के नाथ (कृष्ण) नहीं हैं (अनुपस्थित हैं), इससे (गोपियों की) किसी (वस्तु) पर अनुरक्ति नहीं बन पड़ती ('यातैं काहू पै रत न बनै'); सेनापति (कहते हैं कि) कृष्ण निःशोक करने वाले हैं। जहाँ (कोई) बड़ा अहीर (चिंता के कारण) लंबी आहें भर रहा है ('जहाँ भारी अहिर दीरघ उसास लेत है') (गोपियों की विरह-दशा गोपों को चिंतित कर रही है); (गोपियों के सम्मुख) विकट अंधकार है (क्योंकि) (उद्धव ने) गोपियों को योग का मार्ग बताया है (उद्धव ने गोपियों को योग द्वारा कृष्ण-प्राप्ति का मार्ग बताया, इसी से उन्हें कुछ नहीं सूझता है)।

सागर-पक्ष में :—(समुद्र में) (नाव) नहीं खेते बनती, (क्योंकि वहाँ) किसी प्रकार भी भली-भाँति बल्ली नहीं लगती; सोचते (सोचते) सब लोगों का मन बहुत जड़ हो गया है। (यह) नदियों का नाथ (है) (अर्थात् समुद्र है) इस कारण किसी (से) तैरते (भी) नहीं बनता (है)। सेनापति (कहते हैं कि समुद्र) वीर राम (के) शोक को दूर करने वाला (है)। (जहाँ) दीर्घ निःश्वास लेता हुआ बड़ा सर्प रहता है; भयानक मत्स्य (है); (ऐसे सागर ने) पंथ (बनाने के) उपाय को बताया। (सेतु बाँधने के समय समुद्र ने राम को नल-नील की सहायता लेने की राय दी थी क्योंकि नल-नील को यह वर था कि वे जिस पत्थर को छू लेंगे वह तैरने लगेगा)।

अलंकार :—श्लेष।

(४०)

शब्दार्थ :—पट=१ वस्त्र २ दरवाजा। प्रापति=प्राप्ति, आमदनी। घटी= १ घड़ी २ कमी। भोगी=१ सांसारिक सुखों का उपभोग करनेवाला व्यक्ति २ सर्प।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि हमारे) शब्दों की रचना (पर) विचार करो, जिसमें दानी तथा कंजूस एक से कर दिए गए हैं।

दाता-पक्ष में :—(याचकों के माँगने पर दानी व्यक्ति) 'नहीं' नहीं करते (किसी से यह नहीं कहते कि हम तुम्हें नहीं देंगे), थोड़ी (वस्तु) माँगने पर संपूर्ण देने (को) कहते हैं; याचकों को देख कर वार वार वस्त्र देते हैं। जिनको मिल जाते हैं (उन्हें) प्राप्ति का उत्तम अवसर होता है (जिससे भेंट हो जाती है उसे निहाल कर देते हैं), निश्चय (ही) (ये) सर्वदा सब लोगों (के) मन (को) अच्छे लगे हैं (सर्वदा सब लोगों के प्रिय रहे हैं)। भोग-विलास करने वाले बन कर रहते हैं (और) पृथ्वी में शोभित होते हैं; सुवर्ण नहीं जोड़ते ('कनक न जोरैं'), (उनके यहाँ) दान (के) समूहों ('परिवार') (के) पाठ (होते) हैं (उनके यहाँ सदा यही चर्चा होती है कि आज एक व्यक्ति को इतना मिला तथा दूसरे ने अमुक वस्तुएँ पाईं)।

सूम-पक्ष में :—(याचकों के माँगने पर) 'नहीं नहीं' करते हैं (याचकों से स्पष्ट कह देते हैं कि हम तुम्हें कुछ नहीं देंगे), थोड़ी (वस्तु) माँगने पर शब्द ही नहीं कहते ('सबदै न कहैं') (मुख से बोलते ही नहीं), याचकों को देख कर वार वार किंवाड़ बन्द कर लेते हैं। जिनको मिल जाते हैं (उन्हें) आमदनी की विशेष कमी हो जाती है (सूम का मुख देखने पर प्राप्ति बहुत कम हो जाती है); निश्चय (ही) सदा सब लोगों (के) मन (को) अच्छे नहीं लगे हैं। सर्प होकर पृथ्वी के अन्दर विलास करते हैं (रहते हैं), थोड़ा थोड़ा (करके) (वस्तुओं को) जोड़ते हैं (तथा) दान (के) पाठ (की) परिवा रहते हैं ('परिवारहैं')।

अलंकार :—श्लेष, यमक।

विशेष :—१ सूमों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि मृत्यु के बाद वे सर्प हो कर अपने गड़े हुए धन की रक्षा करते हैं।

२ प्रतिपदा को अनध्याय रहता है। सूमों के यहाँ सर्वदा ही दान के पाठ की प्रतिपदा रहती है अर्थात् उनके यहाँ कभी यह सुनने में ही नहीं आता कि आज उन्होंने किसी को कुछ दिया है।

(४१)

शब्दार्थ :—होत=१ पास में धन होने की अवस्था, संपन्नता २ वित्त, धन। रिस=क्रोध।

अर्थ :—सेनापति की द्व्यर्थक (दो अर्थ देने वाली) वाणी (को) विचार कर देखो (भली प्रकार समझो), (जिसमें) दाता तथा सूम दोनों बराबर कर दिए गए हैं (दोनों को समान कर दिखाया गया है)।

दाता-पक्ष में :—संपन्न अवस्था में कुछ थोड़ा (सा) (धन) माँगने पर प्राण तक नहीं रखते (अर्थात् ऐसे दानी हैं कि आवश्यकता पड़ने पर प्राण तक देने को उद्यत हो जाते हैं); मन में ('मौं') रूखे (तथा) क्रोध-पूर्ण होकर नहीं ('न') रहते हैं (याचकों के धन माँगने पर न तो क्रुद्ध हो जाते हैं और न किसी प्रकार की उदासीनता ही प्रकट करते हैं)। अपने वस्त्र दे देते हैं। वे कीर्त्ति जोड़ लेते (हैं) ('बे कीरति जोरि लेत'), पृथ्वी (के) (हित को) हृदय में धारण कर धन बाँटते जाते हैं (लोगों के हित के लिए अपनी संपत्ति लुटा देते हैं)। माँगते ही, याचक से, स्पष्ट कहते हैं (कि) तुम फ़िक्र मत करो, हम उसे आसान कर देंगे (तुम्हारी कठिनाइयों को हम सरल कर देंगे)।

सूम-पक्ष में :—कुछ थोड़ा (सा ही) धन माँगने पर प्राण तक नहीं रखते (प्राण तक देने को तैयार हो जाते हैं किंतु थोड़ा सा धन नहीं दे सकते हैं) बेमुरौवती (से) मौन होकर नाराज़ हो जाते हैं (रुपए-पैसे के मामले में मुरौवत नहीं करते, उलटे याचकों से नाराज़ हो जाते हैं)। अपने वश (में) (किसी को) नहीं देते (जहाँ तक उनका वश चलता है कोई उनके यहाँ से कानी कौड़ी भी नहीं ले सकता), संचय करने की प्रीति लेते हैं (अर्थात् संचय करने से उन्हें बड़ी प्रीति रहती है, सर्वदा धन जोड़ कर रखते हैं); धन (को) पृथ्वी ही में रख कर (गाड़ कर), वित्त (धन) (ही) (में) अनुरक्त चले जाते हैं (आजन्म धन में अनुरक्ति रखते हुए अन्त में मर जाते हैं)। याचकों से माँगते (ही) स्पष्ट कह देते (हैं) (कि) तुम मति (में) चिंता करो (मन में अपनी फ़िक्र करो), सो हम ऐसा ('असा') नहीं करेंगे ('न करिहैं') (अर्थात् हम तुम्हारी माँग नहीं पूरी करेंगे, इससे तुम अपनी फ़िक्र कर लो)।

अलंकार :—श्लेष।

(४२)

शब्दार्थ:— पट=१ घूँघट, पर्दा २ दरवाज़ा। धन=१ युवती स्त्री २ रुपया-पैसा। सत्त=१ शक्ति २ सत्य। खोजा=वे नपुंसक व्यक्ति जो मुसलमान राजाओं के हरमों में सेवक के रूप में रक्खे जाते थे।

अर्थ :—परमात्मा (ने) खोजा और सूम, दोनों को एक सा बनाया है, (ये) (किसी) काम नहीं आते (और) सेनापति को नहीं अच्छे लगते (हैं)।

खोजा-पक्ष में :—बहुधा (शरीर के) समस्त अंगो पर थोड़े से रत्न धारण करते हैं (स्त्रियों की भाँति आभूषणादि धारण करते हैं); जो मुख (के) ऊपर भी झुके हुए ('नइत'—नमित) बाल रखते हैं (अर्थात् जो अपनी पाटी के वालों को मस्तक के दोनों सिरों पर झुकाव दार रखते हैं)। (जो) धीमे स्वर में बोलते हैं (जिनकी आवाज़ जनानी है), सभा को देखते ही घूँघट नहीं खोलते (लोगों को देखते ही पर्दा कर लेते हैं); (जिन्होंने) बेगमों की रक्षा के लिए ही अवतार पाया है (जो सर्वदा हरमों में बेगमों की सेवा किया करते हैं)। जन्म से (ही) जो कभी, भ्रम से (भी), नहीं माँगे जाते (राजाओं के यहाँ से लोग अनेक चीज़ें मँगनी में ले जाते हैं, पर इन्हें ले जाने का कोई नहीं आग्रह करता); (जो) शक्ति-हीन (हैं), (जिनके) सामने सर्वदा (कोई) काम नहीं रहता (जो निकम्में हैं)।

सूम-पक्ष में :—बहुधा सब उपायों ('अंग') से छोटे-मोटे रत्नादि जोड़ते हैं (प्रत्येक उपाय से धन संचित करते हैं), जो मुख पर भी विश्वास नहीं रखते (अर्थात् अपने चेहरे के रंग-ढंग से यह स्पष्ट कर देते हैं कि रुपये-पैसे के मामले में वे किसी का विश्वास नहीं करते हैं)। (जो) हलकी बातें करते हैं, भय देखते (ही) दरवाजा नहीं खोलते; (जिन्होने) राज्य-धन (की) रक्षा करने को अवतार पाया है (अभिप्राय यह कि जब वे मर जाते हैं तो उनका धन राज्य-कोष में चला जाता है), जो जन्म से कभी (भी), भ्रम से (भी) नहीं माँगे जाते ('सूम' के नाम से प्रसिद्ध हैं), (जो) झूठे हैं (सर्वदा कहा करते हैं कि मैं दरिद्र हूँ), सर्वदा मुख पर नकार रखते हैं (माँगते ही 'नहीं' कर देते हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

(४३)

शब्दार्थ :—अमल=१ नशा २ स्वच्छ अथवा शासन। असील=१ अशील दुर्विनीत २ सच्चे। देत=१ दैत्य, बड़ा २ देते हैं। बाजी=१ जिसका पेशा बाजा बजाना हो, साज़िन्दा २ घोड़ा।

अवतरण :—इस कवित्त में कवि ने दुष्ट तथा गुणवान् राजाओं का वर्णन किया है।

अर्थ :—दुष्ट राजाओं के पक्ष में :—(जो) खेत के रहने वाले (हैं) (अर्थात् छोटे गाँव के रहने वाले हैं), अत्यंत नशे (के कारण) (जिनके) नेत्र लाल (हैं); (जो) आदि ('ओर') से दुर्विनीत गुणों ही के भांडार हैं (प्रारंभ से ही जिनमें अनेक दुर्विनीत गुण हैं)। संसार (में) (यह बात) प्रसिद्ध (है) (कि ये ही) कलिकाल के करने वाले (हैं) (ऐसे ही व्यक्तियों के होने के कारण इस युग को लोग कलिकाल कहते हैं; कलिकाल की समस्त बुराइयों का उत्तरदायित्व ऐसे ही लोगों पर है); कहीं (किसी स्थान पर) युद्ध (में) विजय समेत नहीं (हुए) हैं (सर्वत्र हारे हैं) । सेनापति (कहते हैं कि) (हे) सुमति ! (अच्छी बुद्धि वाले व्यक्ति) ऐसे स्वामियों (की) समझ-बूझ कर सेवा करो; (हे) प्रवीण (व्यक्ति !) (तुम इनसे) भगो, क्योंकि (ये तो) मदिरा ('आसव') (केवल से ही) सचेत (रहते) हैं (अर्थात् ये ऐसे व्यसनी हैं कि जब तक शराब न पिएँ, इनको चैन नहीं)। ब्राह्मणों को रोक कर, मणि (तथा) कंचन गणिका को देते हैं (ब्राह्मणों के लिए तो मनहाई कर देते हैं किंतु वेश्याओं को संपत्ति लुटाते फिरते हैं); साधारण ('सहज') बजाने वाले ('बाजी') को प्रसन्न होकर (एक) बड़ा हाथी दे देते हैं (ये ऐसे मूर्ख हैं कि एक मामूली साज़िन्दे को प्रसन्न होकर एक विशाल हाथी दान कर देते हैं)।

गुणी राजाओं के पक्ष में :—(जो) संग्राम-भूमि में काम आते हैं (युद्ध में लड़ कर वीर-गति को प्राप्त होते हैं), (जिनके) नेत्र अत्यंत स्वच्छ (तथा) लाल हैं (अथवा जिनका 'अमल' या शासन बड़ा है, जिनके नेत्र लाल हैं); (जो) आदि के सच्चे (हैं) (प्रारंभ से ही बात के धनी हैं), जो गुणों के भांडार हैं। संसार (में) प्रसिद्ध (है) (कि ये) कलिकाल के कर्ण हैं (जो) किसी युद्ध में नहीं हारे, (सर्वत्र) विजयी (हुए) हैं । सेनापति (कहते हैं कि) (हे) सुमति ! (बुद्धि में) विचार कर (समझ-बूझ कर) ऐसे प्रवीण स्वामियों (की) सेवा करो ('सुमति ! बिचारि, ऐसे परबीन साहिबन भजौ'), जिनसे (लोगों के) चित्त आशा-पूर्ण हैं ('जातैं आस बस चेत हैं') (अर्थात् जो लोगों को अभीष्ट वस्तु दे देने वाले हैं)। ब्राह्मणों को रोक कर (उन्हें ठहरा कर) मणि (तथा) कंचन (अर्थात् अतुल संपत्ति) गिन कर दे देते हैं; प्रसन्न होकर (तो) हाथी दे देते हैं, साधारण (रूप से) घोड़ा देते हैं (अर्थात्

यदि किसी पर प्रसन्न हो गए तो हाथी दे देते हैं, नहीं तो घोड़ा आदि दे देना तो साधारण बात है)।

अलंकार :—श्लेष, तद्रूप रूपक ('कलिकाल के करन'), देहरी दीपक।

विशेष :—दूसरे पक्ष की दृष्टि से 'दैत' के स्थान पर कवि ने 'दैत' ही रक्खा है। इसी प्रकार छंद नं० ४९ ('श्लेष वर्णन') में 'वैद' के स्थान पर 'वेद' से काम चलाया गया है।

(४४)

शब्दार्थ :—रती=१ एक रत्ती, जो आठ चावलों के बराबर होती है। २ प्रीति। छमासौ=१ छः माशे २ क्षमा अर्थात् पृथ्वी के समान। नरजा=तराजू की डाँड़ी। पलरा=तराजू का पल्ला। बारहमासी=१ बारह माशे का, एक तोले का २ सदा बहार, सर्वदा प्रसन्न रहने वाला। तोरा=सोने की लच्छेदार और चौड़ी जंजीरों के बने हुए दो आभूषण जो दोनों हाथों में पहने जाते हैं। इन्हें तोड़ा कहते हैं। ये प्रायः तीन अथवा पाँच लड़ों के बनते हैं और तदनुसार इनकी तौल में भी अंतर हो जाता है। दूसरे पक्ष की दृष्टि से कवि ने यहाँ पर तोड़े का वज़न एक ही तोला रक्खा है।

अवतरण :—दूती नायिका के पास तोड़ों का एक जोड़ा लेकर आई है और प्रत्यक्ष में उसकी प्रशंसा कर रही है। किंतु अपने श्लिष्ट वचनों द्वारा नायक के आगमन की सूचना भी दे रही है और उसकी प्रशंसा कर रही है।

तोड़ा-पक्ष में :—(जो) निर्मल (तथा) समूची (है), जिसमें आठ चावल हैं (जो आठ चावलों के बराबर है), इस प्रकार की तुम्हारी रत्ती द्वारा छः छः माशे (के बराबर तौल कर) (यह तोड़े का जोड़ा) सुधराया गया है। डाँड़ी में ठीक मिलता है, दोनों पल्लों में देख (वे भी ठीक हैं) (अर्थात् डाँड़ी बिल्कुल सीध में है, किसी ओर झुकी नहीं है तथा दोनों पल्ले भी एक ही सीध में हैं), सेनापति (ने) ऐसे (तोड़े का) सोच-समझ कर वर्णन किया है। किसी (हाथ) में कुछ छोटा (तथा) किसी में कुछ बड़ा है, (यह बात) ग़लत है; तुझ में (तेरे हाथों में) (ये) बिल्कुल ठीक (तथा) समान (जचते हैं), (यह) मैंने (तुझ से) कह (ही) दिया है (अर्थात् दोनों हाथों के तोड़े बिल्कुल ठीक हैं, किसी हाथ वाला कुछ ढीला तथा किसी हाथ वाला कुछ कसा होता हो सो

बात नहीं है)। जिससे संसार (के) सुवर्ण का सौंदर्य तौला जाता है वह बारह माशे का तोड़ा तुझे बन कर आया है (अर्थात् तेरे लिए ऐसा उत्तम तोड़ा बन कर आया है कि संसार के अन्य सुवर्ण के आभूषणों की उत्तमता उसी से मिलान करने पर निश्चित की जाती है)।

नायक-पक्ष में :—(जो) निर्दोष (है), (तथा) जिसमें आठों पहर अखंड (निरंतर एक सा रहने वाला) उत्साह रहता है, इस प्रकार की तेरी पूर्ण रति द्वारा (नायक) पृथ्वी की भाँति (अचल) कर दिया गया है (अर्थात् तेरे गुणों का वर्णन कर मैंने नायक के हृदय में वह प्रेम अंकुरित करा दिया है जो सर्वथा दोष-रहित है, जिसमें सदा तेरे देखने की लालसा बनी रहती है। तेरे प्रति नायक का प्रेम स्थायी है)। (अन्य) स्त्रियों को ('रामैं') देख कर क्षण (भर भी) उनकी इच्छा ('रजा') नहीं करता; (और न प्रसन्नता से) दूना (ही होता है) (अर्थात् जब मैं अन्य स्त्रियों की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती हूँ तो न तो वह अपनी स्वीकृति देता है और न उन स्त्रियों को देख कर प्रसन्न ही होता है); उसे ही (ऐसे नायक को ही) (मैंने) सोच-समझ कर (तुझे) बताया है। (उसका प्रेम) किसी (स्त्री) में कुछ कम तथा किसी में कुछ अधिक है, यह बात ग़लत है, मैंने (तुझे) सूचित (ही) कर दिया है (कि) तुझ में (उसका प्रेम) पूर्ण रूप (से) (है) (और सर्वदा) एक रूप (में) (रहता है)। जिससे संसार का सुन्दर वर्ण (तथा) रूप परखा जाता है वह सदा प्रसन्न रहने वाला (नायक) बन-ठन कर ('बनि') तुझ में अनुरक्त होकर ('तो रातोहि') आया है।

अलंकार :—श्लेष।

(४५)

शब्दार्थ :—मेव=मेवाती। सहेत=१ "वह निर्दिष्ट स्थान जहाँ प्रेमी-प्रेमिका मिलते हैं", सहेट २ सप्रयोजन। लंगर=१ लँगोट २ "वह भोजन जो प्रायः नित्य दरिद्रों को बाँटा जाता है", सदावर्त। भूखन=१ भूखों को २ आभूषण। कनक=१ एक कण २ सोना। मनैं=१ वर्जित २ मन को। बीस बिस्वा=१ बीस वेश्याएँ ('बिसवा' या 'बेसवा') २ पूर्ण रूप से। दादनी=वह धन जो किसी को देना हो।

अवतरण :—इस कवित्त में उच्च श्रेणी तथा निम्न श्रेणी के राजाओं का वर्णन किया गया है। कवि ने जहाँ एक ओर सत् राजाओं के गुणों को गिनाया है वहीं ओछी रुचि वाले दुष्ट राजाओं का भी चित्रण किया है।

अर्थ :—अच्छे राजाओं के पक्ष में :—(जिनके) घर में जन्म (भर) कमी नहीं (होती) (अर्थात् जो सदा संपन्न रहते हैं); युद्ध (के) भीतर वीर हैं ('बीर जुद्ध भीतर हैं'); मेवाती, धन सहित (धन देकर) (जिन्हें) नमस्कार करते हैं ('मेव नमैं सदाम'); (जो राजा) सहेट नहीं रखते हैं (जिनके यहाँ हरम नहीं हैं)। (जो) सदावर्त के दाता (हैं) और (याचकों को) सुवर्ण (के) आभूषण देते (हैं), एक साधु (के) मन को पूर्ण रूप से रख लेते हैं (उसकी इच्छा पूरी करते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) हे बुद्धिमान् पुरुष! इनकी समझ-बूझ कर सेवा करो (कोई त्रुटि न होने पाए) अत्र संसार जानता है (कि) ये तो गुण के भांडार हैं। ये बड़े उदार हैं, (किसी को) जब बक़ाया धन देना होता (है) तब अन्त में सौ की जगह दो सौ एक देते हैं।

निकृष्ट राजाओं के पक्ष में :—(जो) जन्म (से ही) कमीने (नीच) (हैं), घर (में) वीर (तथा) युद्ध में भयभीत रहते हैं; (जो) सदा (अपना) मन, सप्रयोजन ('सहेत') मेवातियों में रखते हैं (अर्थात् मेवातियों के साथ इस अभिप्राय से मैत्री करते हैं कि उनकी लूट-मार में उन्हें भी कुछ मिल जाय)। लँगोटी के दाता हैं (यदि कभी किसी को वस्त्र देना हुआ तो कोई छोटा-मोटा वस्त्र दे देते हैं) और क्षुधितों (को) एक-आध कण (दे) देते (हैं); (जिनके यहाँ आने को) केवल साधु-संत (ही) वर्जित (हैं), (यद्यपि वे) बीस (बीस) वेश्याएँ रख लेते हैं। सेनापति (कहते हैं कि) हे बुद्धिमान् पुरुष! (ज़रा) सोच समझ कर इनकी सेवा करो। संसार जानता है (कि) ये तो अवगुणों के भांडार हैं। ये बड़े उदार हैं! (किसी को) जब बक़ाया धन देना होता (है) तब, अन्त में सौ की जगह, केवल दोष ही देते हैं। (अर्थात् रुपया देने के समय नाना प्रकार के दोषारोपण कर, टाल देते हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—मेवात राजपूताने और सिंध के बीच के प्रदेश का पुराना नाम है। इस प्रदेश के लोग मेवाती कहलाते हैं। यह एक लुटेरी जाति थी। किंतु वर्त्तमान समय में मेवाती गृहस्थों की भाँति रहते हैं।

(२) ऊँचे राजाओं के पत्त में "अवगुन" को "अव गुन" कर के पढ़ना पड़ता है। यमक, श्लेष, तथा चित्रादि अलंकारों में 'व', 'ब' तथा 'र', 'ल' आदि वर्णों में अन्तर नहीं माना जाता है--

"यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवोर्लरोस्तथा"

(४६)

शब्दार्थ :—बिकच=१ बिना बाल का २ विकसित। बिकच करैं=१ लोगों को चेला बना कर मूड़ लेते हैं २ लोगों को विकसित अर्थात् प्रसन्न करते हैं।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (हे) बुद्धिमान् पुरुषो! भली प्रकार विचार कर देख लो, कलिकाल के गोसाईं मानों भिखमंगों के समान ही (होते हैं)।

गोसाईं-पत्त में :—गीत सुनाते हैं, (मस्तक पर) तिलक चमकाते (लगाते) हैं, द्वारका जाते ही मोढ़ों को छपा लेते हैं (देव-मूर्त्तियों की छाप डला लेते हैं)। (उनका) वेष वैष्णवों (का सा होता है), भक्तों की पैदा की हुई संपत्ति से अपना पेट पालते हैं (भक्त लोग जो कुछ दे देते हैं उसी से अपनी जीविका निर्वाह करते हैं), (यह) सच है (कि) निदान (ये) (अपने) स्वामी विष्णु की सेवा नहीं करते (हैं)। (इनकी) पोशाक (को) देख कर (श्रद्धा से) सब लोगों की गर्दन झुक जाती है (सब लोग इन्हें प्रणाम करते हैं)। (अपने आडंबर द्वारा लोगों को) मोहित कर मूड़ लेते हैं (सब कुछ ले लेते हैं), (तथा) मन (में) धन (का) ही ध्यान करते हैं।

भिखमंगों के पत्त में :—गीत सुनाते हैं, तिल (के) कण दिखलाते हैं (यह सूचित करते हैं कि हमारे पास केवल ये ही हैं), किसी के द्वार जाने पर (अपने) भुज-मूलों को नहीं छिपाते (अर्थात् कोई वस्त्र आदि पहन कर अपने शरीर को नहीं ढँकते)। नई उमर ('बैस नव') (है), भक्तों (के) वेष की कमाई खाते हैं (अर्थात् ईश्वर-भक्तों की भाँति कपड़े रँग लेते हैं और उनके रँगे वस्त्रों को देख कर लोग उन्हें खाने को दे देते हैं), निदान भगवान् (की) सेवा नहीं करते, (यह) सच है। (उनके फटे) लिबास (को) देख कर सब लोगों की गर्दन (शर्म से) झुक जाती है (अपनी दीनता सूचक बातों द्वारा तथा गाना आदि गाकर) (लोगों को) मोहित कर प्रसन्न कर लेते हैं (तथा) मन (में) धन (का) ही ध्यान करते हैं।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक ('मोहिकै विकच करैं मन धन ध्यान ही')।

विशेष :—'भुज मूलन छपावैं'—वैष्णव लोग शंख, चक्र आदि चिन्ह गरम धातु से अपने अंगों पर अंकित करा लेते हैं।

(४७)

शब्दार्थ :—मालै = १ माला को २ सामग्री को। वरत = १ व्रत २ व्यवहार। मुद्रा = १ छाप २ रुपया। निगम = १ वेद २ पथ, मार्ग।

अर्थः—देखो सेनापति (ने) देख कर (तथा) विचार कर बताया है (कि) कलिकाल के गोस्वामी मानों संसार के भिखमंगे (हैं)।

गोस्वामी-पक्ष में:—हठ कर (जबर्दस्ती) माला लेकर अच्छे आदमियों (को) ये छोड़ देते हैं,(इन्हें) राज-भोग ही से प्रयोजन (रहता है), (ये) व्रत की रीति (को) नहीं करते (हैं) (व्रतादि के नियमों का पालन नहीं करते)। (हाथ) (में) छाप लेते हैं, इस प्रकार शरीर को बुरा बनाते हैं (कुरूप कर लेते हैं), वेद की शंका छोड़ स्त्री-प्रसंग ('अबला जन रमत') की (रीति को करते हैं) (वेद-विहित मार्ग पर न चल कर आसक्ति का मार्ग ग्रहण करते हैं)। जो निदान (अपने) पैर पकड़वाते हैं (अपनी पूजा करवाते हैं), (तथा) उपदेश करते हैं; जन्म से ही रास-उत्सव मनाने में अनुरक्त रहे (हैं)।

भिक्षुकों के पक्ष में :—जिद कर (हाथ के) सामान को लेकर ये सत् पुरुषों (को) तथा (अपने) देश (को) छोड़ देते हैं (अर्थात् ये हाथ की वस्तु को भी नाना प्रकार की बातें बना कर ले लेते हैं, भले आदमियों का संग नहीं करते, अपना देश छोड़ कर दूसरी जगह भीख माँगते फिरते हैं), (इन्हें) भोजन ('भोग') से ही प्रयोजन (है), (ये) व्यवहार की रीति (को) नहीं करते (सांसारिक पुरुषों के समान आचरण नहीं करते, शरीर से हृष्ट-पुष्ट होने पर भी भीख माँगते फिरते हैं)। हाथ में रुपया लेते हैं (यदि किसी ने कुछ दे दिया तो तुरंत हाथ पसार कर ले लेते हैं), शरीर को ऐसा कुरूप बना लेते हैं (कि कुछ कहा नहीं जाता); मार्ग की शंका (को) छोड़ कर अब इन्हें मारे-मारे फिरने की लज्जा नहीं है (पेट के लिए घूमते-फिरते रहने से ये लज्जित नहीं होते हैं, मार्ग में पड़े रहने में भी इन्हें संकोच नहीं होता है)। जो (इन्हें) उपदेश करते हैं (जो लोग इनसे कहते हैं

कि इतना वड़ा शरीर लेकर क्या भीख माँगते फिरते हो) (वे) अन्त में (अपने) पैर पकड़वाते हैं (भिक्षुक उनका पैर पकड़ लेते हैं; वे कहते हैं कि कुछ तो देते जाइए, हम वड़े भूखे हैं...), रास-उत्सव से (तो) (उनकी) अनुरक्ति जन्म की ही (है) (बाल्य-काल से ही जहाँ कहीं उत्सव होता है वहाँ ये पहुँच जाते हैं)

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(४८)

शब्दार्थ :—घाट=१ किसी जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग स्नानादि करते हैं २ तलवार की धार। बानी=स्वभाव। पानी=१ जल २ कान्ति। रज=१ धूल, बालू २ क्षात्र धर्म, रजपूती। पतवारि=त्रिकोणाकार बना हुआ नाव का वह महत्व-पूर्ण अंग जो नाव के पीछे की ओर लगा रहता है। इसी के सहारे नाव मोड़ी जाती है। असील=सच्ची, असली, श्रेष्ठ।

अर्थ :—पाप (की) (नौका) (के) पतवार को नष्ट करने के लिए गंगा पुण्य की श्रेष्ठ तलवार की भाँति शोभित हो रही है (गंगा पाप की नौका को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए उसके पतवार को ही नष्ट कर देती है)।

गंगा-पक्ष में :—जिसकी धारा समस्त तीर्थों से अधिक पवित्र है। पापी जहाँ मर कर इन्द्रपुरी का मालिक होता है (इन्द्र की पदवी को प्राप्त होता है)। जिसका सुन्दर घाट देखते ही पहिचाना जाता है (लोग देखते ही समझ लेते हैं कि यह गंगा-तट है); जिसके पानी का सर्वदा एक सा स्वभाव रहता है (गंगा-जल की मर्यादा सर्वदा एक रूप रहती है, स्नान करते ही लोग जीवन्मुक्त हो जाते हैं)। जो बहुत बालू रखती है (अर्थात् जिसके किनारे बहुत बालू है), जिसको महान् धैर्यवान् (सिद्ध-पुरुष) (भी) तरसते हैं (जिसके दर्शनों को लालायित रहते हैं); सेनापति (कहते हैं कि) जो स्थान-स्थान (पर) सुन्दर गति (से) बहती है।

तलवार-पक्ष में :—जिसकी धार समस्त तीर्थों से अधिक पावन है, जहाँ मर कर पापी इन्द्रपुरी का स्वामी हो जाता है (पापी भी रण-क्षेत्र में मरने से देव-लोक का स्वामी होता है)। जिसकी सुन्दर धार देखते ही पहिचानी जाती है; जिसकी कान्ति का स्वभाव सर्वदा एक रूप रहता है (जो सर्वदा चमकती रहती है) जो महत्व-पूर्ण क्षात्र धर्म की रक्षा करती है, जिसको बड़े धैर्यवान् व्यक्ति

(भी) तरसते हैं (धीर व्यक्ति भी जिसके पाने के लिए लालायित रहते हैं); सेनापति (कहते हैं कि) (जो) स्थान-स्थान पर सुन्दरता पूर्वक चलती है (युद्ध में बड़े कौशल से वैरियों का संहार करती है)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष, रूपक।

(४९)

शब्दार्थ :—त्रिविध ताप=१ तीन प्रकार का बुखार—वातज्वर, पित्तज्वर तथा कफज्वर २ तीन प्रकार का कष्ट—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। गुरु चरन=१ वन की गुर्च ('गुरुच रन') २ गुरु के चरण। बेद=१ वैद्य २ वेद। कुपथ=१ कुपथ्य, स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाला आहार २ कुमार्ग। सात पुरीन कौं=१ सात पुड़ियों को २ धार्मिकों के अनुसार मोक्ष देने वाली सात नगरी, जिनके नाम इस प्रकार हैं—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका तथा द्वारावती।

अवतरण :—कवि किसी ऐसे व्यक्ति को उपदेश दे रहा है जिसे क्षुधा नहीं लगती और जिसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। दूसरी ओर वह किसी धनी व्यक्ति को उपदेश दे रहा है और मोक्ष प्राप्त करने के विधान को समझा रहा है।

अर्थ :—रोगी-पक्ष में :—तेरे भूख नहीं है, इससे (तेरा) कुछ (भी) सुधार नहीं होगा (अर्थात् क्षुधा का न लगना बड़ी खराब बात है), (इससे) तीनों प्रकार का ज्वर बढ़ेगा और (तू) दुःख से संतप्त होगा। तू वन (की) गुर्च (का) सेवन कर, काम (के) बल को जीत (कामदेव के वशीभूत मत हो), वैद्य से भी पूँछ, (वह भी) तुझ से यही तत्व (की बात) कहेगा। सेनापति (कहते हैं कि) कुपथ्य को छोड़ और पथ्य को ग्रहण कर (लाभदायक वस्तुएँ खाया कर); (यह) शिक्षा जान कर (समझ कर) मान ले, (तू) सर्वदा सुख प्राप्त करेगा। प्रातःकाल 'अच्युत अनंत' कह कर (औषधि की) सात पुड़ियों को क्रम (से) खाया कर, (तू) अमर होकर रहेगा।

धनी व्यक्ति के पक्ष में :—तेरे (पास) आभूषण हैं (तू धनी है) इससे (तेरा) कुछ (भी) सुधार न होगा, तीनों प्रकार की ताप बढ़ेगी (और तू दुःख से संतप्त होगा। तू गुरु (के) चरणों (की) सेवा कर, कामदेव के बल को जीत, वेद से भी पूँछ, (वह) भी तुझ से यही तत्व कहेगा (वासनाओं का शमन

करना तथा गुरू की सेवा करना, ये ही उपदेश वेदों में भी दिए गए हैं)। कुमार्ग को छोड़ (बुरे काम मत कर), सेनापति (कहते हैं कि) सत पथ पर चल, यह शिक्षा जान कर (समझ-बूझकर) मान ले (तो सदा सुख प्राप्त करेगा)। प्रातःकाल 'अच्युत अनंत' कह कर (परमात्मा के नाम लेकर) तथा सात पुरियों के नाम कह कर क्रम (से) (एक-एक कर के) कर्मों (को) कर, (तू) अमर होकर रहेगा। (अपने कर्त्तव्यों का पालन कर इसी से तेरा मोक्ष हो जायगा)।

अलंकार :—श्लेष, यमक, देहरी दीपक।

विशेष :—१ वैद्यक में औषधि खाने के सात समय कहे गए हैं—प्रातः, पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह, सायं, रात्रि में भोजन के पूर्व तथा पूर्वान्ह रात्रि।

२—गुर्च—एक प्रकार की मोटी बेल जो वृक्षों पर चढ़ जाती है। वैद्यक के अनुसार इसमें अनेक गुण हैं। वैद्यों का कहना है कि बस्ती से बाहर जंगल के वृक्षों पर जो गुर्च पाई जाती है वह अधिक लाभदायक होती है।

३—'अच्युत अनंत कहि'—रोगी को औषधि खिलाने के पूर्व यह श्लोक पढ़ा जाता है :—

"अच्युदानंद गोविंद नामोच्चारण भेषजम्।
नष्यन्ती सकलान् रोगान् सत्यंसत्य वदाम्यहम्" ॥

४—पहली पंक्ति की गति बिगड़ी हुई है। दिया हुआ पाठ ही समस्त प्रतियों में मिलता है।

५—रोगी-पक्ष में 'तेरे भूख न (हैं)........' में व्याकरण की अशुद्धि हो जाती है यद्यपि दूसरे पक्ष की दृष्टि से यह पाठ बिल्कुल ठीक है। 'कवित्त रत्नाकर' के कई श्लिष्ट कवित्तों में इस प्रकार की कठिनाई पड़ती है।

(५०)

शब्दार्थ :—सुथरी=स्वच्छ। सुवास=१ सुन्दर वस्त्र २ सुन्दर निवास। तन=१ शरीर २ कम, थोड़ा (सं० तनु—अल्प)।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि मैंने) ग्रीष्म तथा शीत, दोनों ऋतुओं (को) एक प्रकार की बना दिया है (सो) समझ लीजिए।

ग्रीष्म-पक्ष में :—रात के समय बिना शीतलता के नहीं सोया जाता; स्वच्छ शरीर (वाली) प्रियतमा अत्यंत सुख देने वाली है। रंगे हुए सुन्दर वस्त्र राजाओं (की) रसीली रुचि ('रुचि रसाल') (को) रखते हैं (अर्थात् वे उन्हें बड़ी रुचि से पहनते हैं); सूर्य की तप्त किरण (ने) शरीर (को) तपा दिया है। चंदन बहुत शीतल है इससे अच्छा लगता है; आँगन (में) ही चैन मिलती है, किसी प्रकार गरमी बचाई है (गरमी से छुटकारा पाया है)।

शीत-पक्ष में :—रात के समय बिना शीतल (जल) कणों ('सीर कन') (के ही) सोया जाता है (अर्थात् यदि थोड़े से जल का संसर्ग शरीर से हो जाता है तो नींद नहीं पड़ती); स्वच्छ शरीर (वाली) प्रियतमा अत्यंत सुखदाई है। राजा लोग रंगे हुए सुन्दर दुशाले (तथा) सुन्दर निवासस्थान ('सुबास') रखते हैं। सूर्य की गरम किरण (भी) कम तपने (लगी) है (अर्थात् सूर्य की किरणों में भी गरमी कम पड़ गई है)। चंद्रमा ('चंद') बहुत शीतल है इससे नहीं अच्छा लगता ('न सुहात'), आँगन में अग्नि जलवाकर ही किसी प्रकार चैन पड़ती है (आग तापने से ही चित्त को थोड़ा-बहुत संतोष होता है)।

अलंकार :—श्लेष।

(५१)

शब्दार्थ :—मकर=१ मछली २ माघ मास। करक=१ कड़कड़ाहट का शब्द २ रुक-रुककर होने वाली पीड़ा। पाँउरी=१ खड़ाऊँ २ दालान।

अर्थ :—सेनापति (ने) वर्षा (तथा) शिशिर ऋतु (का) वर्णन किया है, जो मूर्खों के लिए दुर्बोध (है) (उनकी बुद्धि के परे है) (और) चतुर व्यक्तियों को सरल (है)।

वर्षा-पक्ष में :—जल-वृष्टि, निश्चय (ही), तीर से (भी) अधिक (तेज़) है; मछलियों (अथवा मगरों) (को) बहुत दुःखद है (क्योंकि वर्षा-ऋतु में नदियों का बहाव तेज़ होने के कारण वे बहे-बहे फिरते हैं); नदियों को चैन होती है (वे प्रचुर जल से परिपूर्ण हो जाती हैं)। अत्यंत बड़ी कड़कड़ाहट (की) (ध्वनि) होती है; (विरह के कारण) रात नहीं कटती; विरहियों की पीड़ा तिल-तिल (करके) पूरी बढ़ती है (अर्थात् उनकी विरह-वेदना धीरे-धीरे बहुत बढ़ जती है)। (ग्रीष्म की अपेक्षा) अधिक शीतलता (है), चारों ओर अन्न पानी

है ('अब नीर है'); पादुकाओं (के) बिना धनिकों को किसी प्रकार नहीं बनता (अर्थात् कीचड़ के कारण बिना पादुकाओं के उनका काम नहीं चलता है)।

शिशिर-पक्ष में :—जल (की) धार, निश्चय (ही), तीर से (भी) अधिक (तेज) है, अत्यंत दुःखद माघ मास (में) ग़रीबों को ('दीन कौं') सुख नहीं होता (अर्थात उन्हें कष्ट होता है)। (जाड़े की) अत्यंत बड़ी रात समाप्त नहीं होती (है), रुक रुक कर विरह की पीड़ा होती है; विरहियों की पीड़ा थोड़ा-थोड़ा करके बहुत बढ़ जाती है (अर्थात् उन्हें विरह-पीड़ा बहुत व्यथित करने लगती है)। पृथ्वी (में) चारों ओर अधिक ठंढक रहती (है); दालानों के बिना धनिकों को किसी प्रकार नहीं बनता (सर्दी के कारण बाहर नहीं सोया जाता है)।

अलंकार :—श्लेष।

(५२)

शब्दार्थ :—नेह=१ स्नेह २ घृत । भभूका=ज्वाला, लपट। सीरी= शीतल। दल=फूल की पँखड़ी। तुषार=बरफ़। हरि=१ कृष्ण २ अग्नि। सुहार=सुहाल—तिकोनी आकार का एक नमकीन पकवान ।

अवतरण :—एक पक्ष में किसी विरहिणी नायिका का वर्णन है दूसरे पक्ष में कदाचित् किसी ऐसी स्त्री का वर्णन है जो सुहाल बनाने जा रही थी किंतु जल जाने के कारण न बना सकी ।

अर्थ :—विरहिणी-पक्ष में—स्त्री प्रेम (से) पूर्ण (है), (विरहाग्नि के कारण) हाथ (तथा) हृदय में अत्यंत तप रही है (अर्थात् उसका सारा शरीर विरहाग्नि के कारण तप रहा है), जिसको आध घड़ी बीतने से (ऐसा जान पड़ता है मानों) हज़ार वर्ष (व्यतीत हो गए हों)। हृदय (पर) गुलाब छिड़कने (से) लपटें उठती (हैं), सुन्दर नव-विवाहिता स्त्री (के) अंग अंगारों (के) समान जलते हैं। शीतल समझ कर बाला के वक्षस्थल (पर) कमल (की) माला रक्खी गई जिसके दल बरफ़ के समान शीतल (हैं)। कृष्ण के (साथ) विहार न होने (के कारण) उस हार के कमल सूख कर सुहाल के समान हो जाते हैं, (ज़रा सी) (भी) देरी ('वार') नहीं लगती (है)।

सुहाल-पक्ष में :—हे सखी ! घृत (से) पूर्ण नहीं है ('री ! नेह भरी ना') (केवल) कड़ाही ही ('करहियै') अत्यंत तप रही है (चूल्हे पर केवल कड़ाही

ही चढ़ी है, उसमें घृत नहीं है), जिसको आध घड़ी बीतने से (ऐसा जान पड़ता है मानों) हज़ार वर्ष (व्यतीत हो गए हों), (तपती हुई कड़ाही के लिए आध घड़ी का समय बहुत अधिक होता है)। (बसाने के निमित्त) मध्य ('उर') में गुलाब के छोड़ते ही लपटें उठती (हैं), (फलतः) सुन्दर नव-विवाहिता स्त्री के अंग-प्रत्यंग अंगारे के समान जल जाते हैं। शीतल समझ कर बाला के वक्षस्थल (पर) कमल (की) माला रक्खी गई (है), सेनापति (कहते हैं कि) जिसके दल बरफ़ के समान शीतल (हैं)। अग्नि (अथवा आँच) के विहार (के कारण) (अर्थात् आँच द्वारा जल जाने से), उसी माला के कमल सूख कर सुहाल (के) समान हो जाते हैं, उन ('बिन') (कमलों) (को) देरी नहीं लगती ('बार न लागत')।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

विशेष :—१ सुहाल-पक्ष में इस कवित्त का अर्थ ठीक नहीं लगता है। किसी अन्य समीचीन अर्थ के अभाव में उपर्लिखित रीति से अर्थ किया गया है। आग से जल जाने पर शीतोपचार नहीं किया जाता है। अतएव "सीरी जानि छाती धरी.........इ०" नितांत अनुपयुक्त है।

२—ब्रज में 'बिन' शब्द का प्रयोग सर्वनाम के रूप में भी होता है।

(५३)

शब्दार्थ :—झर=१ ताप २ झड़ी। जोति=१ लपट, लौ २ प्रकाश। भादव=१ दावाग्नि की भा (दीप्ति) २ भाद्र मास। जलद पवन=१ तेज़ वायु (लू) २ बादलों की घटा ('मेघवाई') सेक=१ सेंक २ जल-सिंचन। तरनि=१ सूर्य २ नौका। सीरी=शीतल। घनछाँह=१ मेघों की छाया २ घनी छाया।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (इस) कविता की चतुराई (को) देखो, (जिसने) भीषण ग्रीष्म (ऋतु) (को) वर्षा का समकक्ष कर दिया है।

ग्रीष्म-पक्ष में :—देखने से पृथ्वी (तथा) आकाश (के) चारों ओर-छोर (सब स्थल) जल रहे हैं; तृण (और) वृक्ष, सभी का रूप (ग्रीष्म ने) हर लिया है (सब को श्री-हीन कर दिया है)। बड़ी गरमी लगती है, दावाग्नि (के) प्रकाश की दीप्ति होती (है), तेज़ वायु (लू) चलती है; (उसके स्पर्श से) (ऐसा जान पड़ता है) मानों शरीर (पर) सेंक दी गई है। भीषण सूर्य (भगवान)

तपा रहे हैं, सब (लोग) नदी (में) (स्नानादि करने से) सुख पाते हैं, चित्त शीतल मेघों की छाया देखने में ही लगा है (चित्त घन-घटा देखने के लिए उद्विग्न है)।

वर्षा-पक्ष में :—देखने से पृथ्वी (तथा) आकाश, चारों तरफ़ जल ही जल है; तृण, वृक्ष (आदि) सभी का रूप हरा है (चारों ओर हरियाली दिखलाई पड़ती है)। महान् झड़ी लगती है, भाद्र (मास) की द्युति (शोभा) हो रही है, बादलों की घटा (इधर-उधर) आती-जाती है; (छोटी-छोटी बूँदें पड़ने से ऐसा जान पड़ता है) मानों शरीर (पर) जल-सिंचन किया गया है। (लोग) भीषण नदियों (को) नौका (से) पार कर सुख पाते हैं (सुखी होते हैं); (अधिक वृष्टि के कारण) (लोग) शीतल घनी छाया वाले (स्थान) (की) खोज में ही तल्लीन हैं (जिससे वे भीग न जायँ)।

अलंकार :—श्लेष।

(५४)

शब्दार्थ :—द्विजन=१ दाँतों २ ब्राह्मणों। बरन=१ प्रकार २ वर्ण। स्रुति=१ कान २ वेद। जवन=१ 'जव न' २ यवन। आसा=१ डंडा २ तृष्णा।

अर्थ :—इसीसे (इन कारणों से) वृद्धापा कलिकाल के समान है।

वृद्धापा-पक्ष में :—जिसमें दाँतों की प्रतिष्ठा नहीं रह जाती (दाँत टूट जाते हैं); अन्त (में) शरीर का ('तन कौ') पहले प्रकार का (युवावस्था का) वेष नहीं है (युवावस्था की सी सुसज्जित वेश-भूषा अब नहीं है)। शरीर की छवि लुप्त (हो गई है); कानों (से) आवाज नहीं सुनाई पड़ती, अब लार लगी हुई है, नाक का भी ज्ञान नहीं है (नाक बहा करती है)। जब बहुत सी जुगालियों में शोभा नहीं दिखलाई पड़ती (भोजन करते समय बार-बार मुँह चलाना देख कर अच्छा नहीं लगता है); जहाँ काले बालों का ('कृष्ण केसौ कौं') नाम से भी नाता नहीं है (अर्थात् एक भी बाल काला नहीं रह गया है)। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें संसार डंडा के सहारे (इधर-उधर) भटकता फिरता है (वृद्धापा में छड़ी आदि के सहारे ही लोग चल पाते हैं)।

कलिकाल-पक्ष में :—जिसमें ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा छूट जाती है (नष्ट हो जाती है); निदान पहले वर्ण (अर्थात् ब्राह्मणों) का थोड़ा सा भी वेश नहीं

है (ब्राह्मणों की सी वेश-भूषा कहीं दिखलाई ही नहीं पड़ती है)। (लोग) शरीर की छवि (में) लीन (हैं) (शारीरिक शोभा-वृद्धि में तल्लीन हैं), (किसी के) मुख (से) वेद-ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती; स्त्री लगी रहती है ('लागी प्रबला रहै') (लोग स्त्रियों में अनुरक्त रहते हैं); (अपनी) प्रतिष्ठा का भी (किसी को) ज्ञान नहीं है अथवा स्वर्ग की भी किसी को चिंता नहीं है। गलियों में ('जु गलीन माँझ') अनेक यवनों की शोभा दिखाई पड़ती है (यवन गलियों में बहुत बड़ी संख्या में देखे जाते हैं); जहाँ कृष्ण (तथा) विष्णु का नाम से भी नाता नहीं है (कोई उनके नाम का भी स्मरण नहीं करता है)। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें संसार तृष्णा ही से भटकता फिरता है (अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति के लिए लोग व्यर्थ में इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

(५५)

शब्दार्थ :—भौ=भव, संसार। बिसद=१ सुन्दर २ स्वच्छ। बरन=१ वर्ण २ रंग। बानी=१ वाणी, वचन २ स्वभाव। सियरानी=१ सीता रानी २ शीतल हुई। तीरथ=१ अवतार २ तीर्थ।

अर्थ :—राम-कथा को गंगा (की) धारा के समान वर्णित किया है।

राम-कथा पक्ष में :—कुश-लव (के) गुणों ('रस') से युक्त, (इस राम-कथा को) देवताओं (ने) लय ('धुनि') से कहकर गाया (है); त्रिभुवन (स्वर्ग, नर्क और पाताल) जानता है (कि यह राम-कथा) संतों के मन (को) अच्छी लगी है। संसार (से) छुटकारा दिलाने का देवताओं (ने) यही (एक) उपाय किया है; जिस (राम-कथा) के वर्ण सुन्दर (हैं), (और) (जिसके) वचन सुधा के समान (मृदु) हैं। पुण्य-शील विष्णु राजा (के) रूप (में) शरीर-धारी (हुए) (और) सीता रानी स्वर्ग से पृथ्वी पर आईं। सेनापति (ने) (इस) अवतार (को) सब (का) शिरोमणि (सर्व-श्रेष्ठ) जाना।

गंगा-पक्ष में :—कुश-लव (ने) प्रीति से ('रस करि') 'सुरधुनि' कह कर (जिसे) गाया (अर्थात् जिसका गुणानुवाद किया), त्रिभुवन जानता है (कि गंगा) संतों के मन को भाई हैं (उन्हें प्रिय हैं)। संसार (रूपी सागर से) पार होने का देवताओं (ने) यही (एक) उपाय निकाला है; जिस (गंगा)

का वर्ण (रंग) स्वच्छ (है), (और जिसका) स्वभाव सुधा के समान है (अर्थात् जो अमर कर देती है)। (जिसकी) लहर ('लहरि') पृथ्वी का पालन करने वाली (है), त्रिरूप (में) (अर्थात् तीन रूपों में), शरीर धारण किए हुए पुण्य के समान ('तिरूप देह धारी पुन्न सी'), स्वर्ग से, आई है; पृथ्वी शीतल हो गई है। सेनापति (ने) इसे सब तीर्थों (का) शिरोमणि जाना।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—'तिरूप'—धार्मिकों के अनुसार गंगा की तीन धाराएँ बहती हैं—पहली स्वर्ग-लोक में, दूसरी मर्त्य-लोक में, तथा तीसरी पाताल में। इसी से गंगा को 'त्रिपथगामिनी' कहते हैं।

(५६)

शब्दार्थ :—उज्यारौ=१ कान्तिमान् २ उज्वल, स्वच्छ। लाल=१ पुत्र २ प्रिय व्यक्ति। वैन=१ वंशी (बेन) २ वचन। नग=१पर्वत २ रत्न। गाइन कौं=१ गायों को २ गायकों को।

अवतरण :—इस कवित्त में सूर्यबली अथवा सूरज बली नाम के किसी राजा का वर्णन है, जिसकी समता कृष्ण से दी गई है।

सूर्यबली-पक्ष में :—(हे) सूर्यबली ! (तेरा) यश ('जसु') वीरों (का सा है) (अर्थात् तेरी कीर्त्ति वीरों की सी है); हे प्रिय व्यक्ति ! (तू) निर्मल (अथवा स्वच्छ) मति का है, (अपने मधुर) वचनों (को) सुनाकर चित्त को प्रसन्न करता है। सेनापति (कहते हैं कि) (तेरा) रूप सुन्दर रमणी ('सु रमनी') को सर्वदा वश (में) करने वाला (है); (तूने) सहायता करके सबकी मनोकामना पूर्ण की है। (तू) अनेक रत्नों को धारण करता (है), (धन आदि देकर) गायकों को सुख देता (है); तू (ने) ऐसा अचल छत्र, ऊँचा करके, धारण किया है (अर्थात् तेरा राज्य अचल तथा सर्वश्रेष्ठ है)। (हे) महाराज ! कृष्ण (के) समान (आपने भी) अपने व्रज (को) मुसलमानी सेना ('धार') से, भली प्रकार, बचाकर रक्खा है (रक्षा की है)।

कृष्ण-पक्ष में :—(हे) शूरवीर (तथा) बलवान्, यशोदा के कान्तिमान् पुत्र (कृष्ण !) (तू) वंशी को सुनाकर चित्त को प्रसन्न करता है। सेनापति (कहते हैं कि) (तू) सर्वदा देवताओं (के) मणि (इन्द्र) को वशीभूत करने

वाला (है); तू ने पर्वतों ('अचल') (के) ऐसे छत्र (को), ऊँचा करके, धारण किया है, (तू ने) सहायता करके सब का कार्य पूरा किया है। (तू) गायों को सुख देता (है), अनेक पर्वतों के समूह (को) धारण करता (है)।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष।

विशेष :—१. 'नीके निज ब्रज...इ०' का एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है—(हे) महाराज ! कृष्ण (ने) जिस प्रकार अपने ब्रज (को) भली प्रकार (बचाया था) (वैसे ही) तू ('तैं') ने मुसलमानी सेना ('धार') बचाकर रक्खी (अर्थात् उसकी रक्षा की है)। इस अर्थ की दृष्टि से सूर्यबली मुसलमानों का सहायक माना जायगा।

२. ब्रज-वासियों को अपनी पूजा न करते देख एक समय इन्द्र अत्यंत कुपित हुआ। उसने अत्यंत भयंकर उपल-वृष्टि करनी प्रारंभ कर दी। उस अवसर पर कृष्ण ने गोबर्द्धन पर्वत को हाथ में उठाकर ब्रज-वासियों की रक्षा की थी।

(५७)

शब्दार्थ :—बानरन राखै=१ बन्दरों को रखता है २ रण में (अपना) हठ रखता है। लंकै=१ लंका को २ कमर को। बीर लछन=१ भाई लक्ष्मण २ वीर (के) लक्षण। अंगद=१ बालि का पुत्र २ बाजूबंद। हरि=१ बन्दर २ कृष्ण।

अर्थ :—वसुदेव का महा बलवान् (तथा) वीर बेटा कृष्ण तो, मेरी समझ में, राजा राम के समान है।

राम-पक्ष में :—बन्दरों को रखता है, वैरी (की) लंका को तोड़ डालता (है) (मिटा देता है अथवा नष्ट कर देता है); जिसका भाई लक्ष्मण (साथ में) शोभित है। (जो) अंगद को (अपना) सहायक ('बाहु') रखता (है) (अथवा अंगद को अपनी शरण में रखता है), दूषण (नामक दैत्य) को दूर करता (है) (अर्थात् उसके प्राण हर लेता है), बन्दरों (की) सभा (में) शोभित होता है (तथा) राजसी तेज का भांडार है। जिसे आँखों (से) देख सीता रानी आनंद (में) मग्न (हैं); सेनापति (कहते हैं कि) जिसके *सुवर्ण-नगरी का दान है (जिसने सोने की लंका विभीषण को दान कर दी है)।*

कृष्ण-पक्ष में :—(जो) रण में (अपना) हठ रखता (है) (मन-चाही बात कर लेता है), वैरी (की) कमर को तोड़ डालता है (मुख्य शक्ति को नष्ट कर

देता है) तथा जिसके वीरों (के से) लक्षण विद्यमान् हैं। (जो) बाहु (में) बाजूबंद रखता (है) (धारण करता है)। कृष्ण सभा (में) शोभित होता है और राजसी तेज का भांडार है। आँखें जिसे (जिस कृष्ण को) देख (और) शीतल हो गईं; (जो) आनंद (में) मग्न (रहता है); सेनापति (कहते हैं कि) जिसके हेम नगर का दान है (जिसने सुदामा को सुवर्ण-नगरी दे दी है)।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

विशेष :—दृग—'कवित्त रत्नाकर' में यह शब्द कई स्थलों पर स्त्री-लिंग में ही प्रयुक्त हुआ है।

(५८)

शब्दार्थ :—उदै=१ वृद्धि, बढ़ती २ उदय। सूर=१ शूरवीर २ सूर्य। महातम=१ माहात्म्य २ महान् अंधकार ('महा तम')। पदमिनी=१ लक्ष्मी (सीता) २ कमलिनी।

अर्थ :—(मैं ने) दशरथ के सुयोग्य पुत्र, धीर (तथा) बलवान् राजा राम (को क्या) देखा, मानों सूर्य को (देखा)।

राम-पक्ष में :—जिसकी प्रत्येक दिन वृद्धि होती है (जिसकी महिमा दिन-दिन बढ़ती जाती है), जिससे (अर्थात् जिसे देख कर) मन प्रसन्न (रहता) है; जिसके अत्यंत उत्साह से आए (हुए) पताका देखे जाते हैं। जिसे शूरवीर (कह) कर वर्णन करते हैं, सब का प्रिय कहते हैं, (और) वैरी (का) माहात्म्य (प्रतिष्ठा) जिसके द्वारा नष्ट हो जाता है (अर्थात जो वैरियों के गर्व को चूर्ण कर देता है)। जिसकी श्रेष्ठ मूर्त्ति सर्वदा शोभित होती है; सेनापति (कहते हैं कि) जो सीता (को) सुख देने वाला है।

सूर्य-पक्ष में :—जिसका प्रत्येक दिन उदय होता (है). जिससे मन प्रसन्न (रहता) है; जिसके अत्यंत उत्साह पूर्वक आने पर रात्रि ('निसा न') नहीं दिखलाई देती (अर्थात् रात्रि का अन्त हो जाता है)। जिसे 'सूर्य' (कह) कर वर्णन करते हैं, सब का हितू कहते हैं (और) (जिसका) महान् वैरी अंधकार, जिससे (जिसके आने पर) ग़ायब हो जाता है। जिसकी उत्तम सूरत प्रत्येक दिन शोभा पाती है। सेनापति (कहते हैं कि) जो कमलिनी (को) सुख-दायक है (कमलिनी को प्रस्फुटित करने वाला है)।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष।

(५९)

शब्दार्थ :—रसाल=१ आम २ प्रिय। मौर=१ मंजरी, वौर २ ताड़ के पत्तों का बना हुआ एक शिरोभूषण जो विवाह के समय वर को पहनाया जाता है। सिरस=शिरीष वृत्त। रुचि=शोभा। लाज=१ लज्जा २ लाजा। भौंरी=१ भ्रमरी २ भाँवर। अलि=१ भ्रमर २ सखी। वनी=वनस्थली।

अवतरण :—एक पत्त में कवि ने वसंत का वर्णन किया है, दूसरे पत्त में प्रेमी तथा प्रेमिका के पाणिग्रहण का चित्रण किया है।

वसंत-पत्त में :—आम (ने) मंजरियों (को) धारण किया है; शिरीष वृत्त (की) शोभा उत्तम (है) (जो) ऊँचे वकुल (के वृत्तों के) सहित ('ऊँचे स वकुल') मिले (हुए हैं), गिनने (से) (जिनको) अन्त नहीं (मिलता) है (असंख्य आम तथा शिरीष के वृत्त वकुल के वृत्तों के साथ लगे हुए हैं)। निबारी (का वृत्त) पवित्र है, अब वहाँ पर लज्जा (का) हवन हो गया (वसंत ऋतु के आगमन से नायक-नायिकाओं ने लज्जा का परित्याग किया है); भ्रमरी (को) देख कर भ्रमर (को) वहुत आनंद होता है। सूर्य ('अग') (की) कान्ति सुन्दर हो रही है ('अग वानी नीकी होत') (वसंत में सूर्य सुहावना लग रहा है—उसकी किरणें बहुत तेज़ नहीं हैं), उससे सव लोगों (को) सुख (है); वे लताएँ सजीं ('सजी ते लताईं') (लताओं ने कोमल किशलयों से अपने को आभूषित किया), चैन (से) लोगों के मैंन-मय विचार ('मंत') (हो रहे) हैं (लोगों के विचार कामुकता पूर्ण हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) पत्ती ('द्विज') शाखाओं (पर कलरव कर रहे हैं, देखो वनस्थली दूल्हन वनी (हुई) है (तथा) वसंत दूल्हा है।

विवाह-पत्त में :—प्रियतम (ने) मौर धारण किया है। शिरीष (पुष्प) (की) शोभा उत्तम है (मौर पर शिरीष के पुष्प लगे हुए हैं), समस्त उच्च कुल (वाले लोग) एकत्रित हुए (हैं), (जिनका) गिनने (से) अन्त (नहीं मिलता (है) (वहुत से उंच्च कुल वाले संवंधी एकत्रित हैं)। पृथ्वी जल (द्वारा) पवित्र (की गई) है, वहाँ (उस स्थल पर) लाजा (का) हवन हुआ, भाँवरों (को) देख कर सखियों (को) वहुत आनंद होता है। सुन्दर अगवानी हो रही है, जनवासे (में) सव प्रकार (का) सुख (है); तेल (तथा) ताई सजी है,

मायन ('मैंन') (में) (लोग) चैन (से) मदमत्त हैं। सेनापति (कहते हैं कि) ब्राह्मण वाणी (से) शाखोच्चार कर रहे हैं।

अलंकार :—श्लेष, यमक रूपक।

विशेष :—१ लाजा :—भून कर फुलाया हुआ धान, लावा। विवाह के अवसर पर इसके द्वारा हवन किया जाता है।

२—विवाह के पूर्व वर और वधू के ऊपर हल्दी मिला हुआ तेल दूब द्वारा छिड़का जाता है। उसे 'तेल चढ़ना' कहते हैं। जिस तिथि को मातृका-पूजन और पितृ-निमंत्रण होता है उसे 'मायंन' कहते हैं। विवाह के समय वर-बधू के वंश आदि के परिचय देने को 'शाखोच्चारण' कहते हैं।

(६०)

शब्दार्थ :—अयानी=अजान, निर्बुद्धि। जेंवत ही वाके............पराए हौ=भोजन करने के समय तो उससे घनिष्ठता रखते हो, किंतु हाथ धोते ही उससे अपना संबंध तोड़ देते हो अर्थात् अपना काम जब तक नहीं निकलता तब तक तो तुम उससे वहुत घनिष्ठता जोड़ते हो किंतु काम निकल जाने पर तुम ऐसा बन जाते हो मानों कोई अपरिचित व्यक्ति हो। आरत=आर्त्त, दुखी। पहिले तौ मन मोहौ........मनमोहन कहाए हौ=१ पहले तो तुम मन को मोहित करते हो, पीछे हाथ तथा शरीर को भी मोहित कर लेते हो (अर्थात् मन के मोहित हो जाने के बाद शरीर भी बेकाम हो जाता है (प्रेम-विभोर हो जाने के कारण उसमें शिथिलता आ जाती है)। हे प्रिय! तुम ठीक ही 'मनमोहन' कहे जाते हो। २ पहले तो मन को मोहित करते हो, पीछे प्रेम नहीं करते ('पीछे करत न मोहौ'); हे प्रिय! तुम ठीक ही निर्मोही ('मन मोह न') कहे जाते हो।

अलंकार :—परिकर, श्लेष।

(६१)

शब्दार्थ :—मंजु=मनोहर। घोष=नाद। द्युति=शोभा। हरि=१ कृष्ण २ इन्द्र। अधर=१ ओष्ठ २ जो पकड़ा न जा सके अर्थात् अप्राप्य।

अर्थ :—प्यारी इन्द्रपुरी के भी सुखों की वर्षा करती है।

स्त्री-पक्ष में :—(जिसके) कपोल (का) उत्तम तिल अनुपम सौंदर्य को जीत लेता है (अर्थात् जो बहुत सुन्दर है); (जो) प्रत्येक शब्द के बोलने में

मनोहर नाद की वर्षा करती है। मैंने उर्वशी (माला) में (जैसी) उत्तम शोभा देखी (वैसी) और किसी में ('काहू मैं') नहीं (देखी) (स्त्री अत्यंत सुन्दर माला पहने हुए है); युगल-जंघाओं की शोभा केला को भी निरादृत करती है। तो सचमुच बताओ और (दूसरी स्त्री) ऐसी किस प्रकार है ? (अर्थात् दूसरी स्त्रियाँ इस प्रकार की नहीं हैं); स्त्री ('नारि') सर्वदा प्रिय कृष्ण की रति को करती है (कृष्ण ही में अनुरक्त रहती है)। सेनापति (कहते हैं कि) पृथ्वी पर जिसके ओठों में अमृत है (संसार में केवल उसी के ओठों में अमृत पाया जाता है)।

इन्द्रपुरी-पक्ष में :—तिलोत्तमा के कपोल का अनुपम रूप (मन को) जीत लेता है (मन को अपने वश में कर लेता है), (जो) प्रत्येक शब्द में मनोहर नाद की वर्षा करती है। (मैंने) (इन्द्रपुरी में) उर्वशी (तथा) मेनका में भी सरस शोभा देखी जिसकी युगल-जंघाओं की शोभा रंभा को भी निरादृत करती है। भला इन्द्राणी ('सची') के समान दूसरी स्त्री किस प्रकार है ? (अर्थात् किसी प्रकार नहीं है); (वह) सर्वदा प्रिय इन्द्र की प्रीति को करती है। सेनापति (कहते हैं कि) जिस (इन्द्रपुरी) के (पास) पृथ्वी में अप्राप्य अमृत है।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप।

(६२)

शब्दार्थ :—गुरु=१ बृहस्पति नक्षत्र जिसका रंग पीला माना जाता है २ बृहत्। मोतिन के=१ मोतियों के २ मुझे उनके ('मो तिनके') अर्थात् नायक श्रीकृष्ण के।

अर्थ :—मोतियों के पक्ष में :—(बुलाक में लगे रहने पर) ओठों का रस ग्रहण करते हैं (ओठों को सर्वदा छूते रहते हैं); (माला के रूप में) गले (से) लिपट कर रहते हैं; सेनापति (कहते हैं कि) (जिनका) रूप चंद्रमा से भी बढ़कर है (चंद्रमा से भी अधिक उज्वल हैं)। जो बहुत धन के हैं (जो बड़े क़ीमती हैं), मन को लुब्ध करने वाले हैं, हृदय पर धारण करने पर शीतल स्पर्श (का) सुख (होता) है। जिनके अत्यंत (अच्छी प्रकार) आने पर हाथी ('गज') राज गति (को) प्राप्त करता है (अर्थात् मुक्ता आने पर ही हाथी को 'गजराज' की संज्ञा दी जाती है); (जिनके द्वारा) माँग ('मंग') शोभा प्राप्त करती है ('लहै शोभा') (माँग मोतियों द्वारा भरी जाने

पर, शोभित होती है), (जिनका) सुन्दर दर्शन वृहस्पति (का सा) है (अर्थात् मोतियों में हलका पीलापन है)। (हे) सखी! सुन, (मैं) सच कहती हूँ, मोतियों के देखने में जैसा कुछ आनंद है (वैसा) दूसरा आनंद नहीं है (दूसरी वस्तुओं के देखने में वैसा आनंद नहीं मिलता है)।

कृष्ण-पक्ष में :—(जो) अधरामृत पान करते हैं, कंठ से लिपट कर रहते हैं; सेनापति (कहते हैं कि) (जिनका) रूप चंद्रमा से भी बढ़ कर है। जो बहुत संपत्तिके हैं (जिनके पास अतुल संपत्ति है अथवा जिनकी अनेक प्रेमिकाएँ हैं), मन को मोहित करने वाले हैं, (जिन्हें) हृदय पर रखने पर (आलिंगन करने पर) शीतल स्पर्श का सुख (होता) है (चित्त को शान्ति मिलती है)। जिनके आते ही गजराज बड़ी (अच्छी) गति पाता है (जिनके पहुँच जाने पर गजराज ग्राह के त्रास से मुक्त हो जाता है); जिनकी छवि मंगल-प्रद है (तथा) जिनका श्रेष्ठ दर्शन सुन्दर है। (हे) सखी! सुन, मुझे उनके (कृष्ण के) देखने में जैसा कुछ आनंद (आता) है (वैसा) और आनंद नहीं है (कृष्ण के दर्शनों से अधिक आनंद और किसी बात में नहीं है), (मैं) सच कहती हूँ।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप।

(६३)

शब्दार्थ :—माधव=१ कृष्ण २ वैशाख। घनस्याम=१ कृष्ण २ मेघ।

अर्थ :—माधव के बिछुरे तैं............छाया घनस्याम की जो पूरे पुन्न पाइयै—

कृष्ण-पक्ष में :—कृष्ण के वियोग से क्षण (भर) (भी) शान्ति नहीं मिलती, (विरह की ऐसी) अधिक जलन पड़ी है (हो रही है), मानों शरीर जला जा रहा है। जो संपूर्ण पुण्य (के कारण) कृष्ण की शरण मिले (कृष्ण से संयोग हो जाय) तो वृखभानु की सौगंध (खाकर कहती हूँ), (शरीर की) कुछ (भी) जलन न रह जाय।

मेघ-पक्ष में :—वैशाख के बिछुड़ने से (व्यतीत होने से) क्षण (भर) भी शान्ति नहीं मिलती, बहुत गरमी पड़ी है, मानों शरीर जला जा रहा है। जो संपूर्ण पुण्य (के कारण) काले बादलों की छाया मिले तो वृख (राशि के) सूर्य की गरमी कुछ (भी) न रह जाय (इतनी दुखदाई न प्रतीत हो)।

(६४)

शब्दार्थ :—लाल=१ कृष्ण अथवा नायक २ मानिक। बलि=सखी।

विशेष :—दूती ने नायक ('लाल') का सँदेसा नायिका से आकर कहा। इतने ही में सास आ गई। नायिका ने दूती द्वारा प्रयुक्त 'लाल' शब्द का दूसरा अर्थ 'मानिक' लिया ताकि सास के मन में किसी प्रकार की शंका न हो। उसने अपना उत्तर भी श्लिष्ट ही दिया। उसने 'जिसे तू लाल कहती है उसे मैं हार में पिरोऊँगी' तथा 'कृष्ण को मैं हार बनाऊँगी—गले से लगाऊँगी', इन दो अर्थों को व्यक्त किया।

(६५)

विशेष :—विरहिणी नायिका बेहोश सी हो रही थी। सखियों ने उसके कान में कृष्ण का नाम कहा जिससे उसे चेत हो आया। गुरु-जनों के समीप होने के कारण नायिका अत्यंत लज्जित हो गई, क्योंकि वे उसे बीमार समझते थे। गुरु-जनों की शंका के निवारणार्थ नायिका ने ऐसे श्लिष्ट-वचन कहे जिससे सखियों को उसके अगाध प्रेम का परिचय मिल गया तथा ननँद आदि की शंका भी निर्मूल हो गई। वह बोली—१ तू कौन है ? कहाँ से आई है ? हे सखी ! मैं अपने वश में नहीं हूँ (कृष्ण के वियोग से मेरी मति भ्रष्ट हो गई है); तू ने 'कृष्ण कृष्ण' कह कर कानों में मधुर ध्वनि की (जिससे मुझे थोड़ा सा चेत हो आया)। २—तू कौन है, कहाँ से आई है ? (तू ने आकर) 'कान्ह कान्ह' कह कर हैरानी ('कलकान' अथवा कलकानि) को (अर्थात् मैं तो यों ही अपने ज्वर के कारण बेसुध पड़ी थी, ऊपर से तू और बक-बक करने लगी जिससे मैं बहुत हैरान हो गई हूँ)।

(६६)

शब्दार्थ :—सूल=१ पीड़ा, कसक २ माला का ऊपरी भाग।

अवतरण :—उद्धव ने गोपियों को समझाया कि कृष्ण ब्रह्म हैं। वे सब पर समान प्रीति करते हैं। तुम में तथा कुब्जा में कोई भेद नहीं है। गोपियाँ उद्धव के वचनों के दूसरे ही अर्थ करती हैं और यह दिखाती हैं कि कुब्जा तथा उनकी स्थिति में बहुत भेद है। इस कवित्त में एक ओर गोपियों तथा कुब्जा का एक सा चित्रण किया गया है, दूसरी ओर दोनों में विषमता दिखलाई गई है।

अर्थ :—(हे) उद्धव ! हम (तथा) वे (अर्थात कुब्जा) किस कारण से समान (हैं) (उस कारण को हम से) कहो; (क्योंकि) उन्होंने

(अपने को) सुखी माना है (तथा) हम ने (अपने को) दुखी मान लिया है (तात्पर्य यह कि यदि कृष्ण हमको कुब्जा ही की भाँति चाहते तो हम अपने को दुखी क्यों समझतीं) ।

समता-सूचक-पक्ष में :—कुब्जा (ने) (कृष्ण को) हृदय (से) लगाया है, हम (ने) भी (उन्हें) हृदय (से) लगाया; प्रियतम दोनों के (यहाँ) रहता (है) ('पी रहै दुहू के'), (हम दोनों ने अपने) तन (तथा) मन (को) (कृष्ण पर) निछावर कर दिया है। रति (के) योग्य वह तो एक (ही) (है) (अर्थात् निराली है), हम (भी) रति (के) योग्य एक (ही) (हैं); (कृष्ण ने) उनके हृदय (में) (प्रेम की) पीड़ा उत्पन्न कर हमारे (हृदय में भी) पीड़ा (उत्पन्न) की है (अर्थात् जहाँ उन्होंने उनसे प्रेम किया है वहाँ हमसे भी किया है) । इस प्रकार कुब्जा सुख ('कल') पाएगी, यहाँ पर हम (भी) सुख पाएँगी; सेनापति (कहते हैं कि) कृष्ण इस प्रकार (हम दोनों को) समझते हैं (हम दोनों को एक सा समझते हैं) (क्योंकि वे) प्रवीण हैं।

विषमता-सूचक-पक्ष में :—कुब्जा (ने) (कृष्ण को) हृदय (से) लगाया, हम (ने) भी पीड़ा ('पीर') हृदय (से) लगाई; (हम) दोनों के तन-मन है (जिसे) (हम दोनों ने कृष्ण पर) निछावर कर दिया है (अर्थात् यद्यपि कुब्जा के पास हमारी ही भाँति तन तथा मन है और उसने भी हमारी तरह अपने तन-मन को कृष्ण पर निछावर कर दिया है फिर भी हम दोनों की परिस्थिति भिन्न है—उसने कृष्ण को हृदय से लगाया और हमें केवल विरह-वेदना मिली) । केवल वे रति (के) योग्य (हैं), हम तो यह योग (साधना) करती हैं ('हम ए करति जोग'); (कृष्ण ने उनके गले में) माला पहना कर (उनका पाणि-ग्रहण कर) हमारे (हृदय में) शूल (उत्पन्न) किया है। कुब्जा इस प्रकार सुख पाएगी (और) यहाँ पर हम कलपती हैं ('कलपै हैं'); कृष्ण ही (इस लीला को) समझें (क्योंकि वे) इतने प्रवीण हैं (कृष्ण ही अपनी इन मायावी लीलाओं का भेद जानें) ।

अलंकार :—इस कवित्त में श्लेषालंकार नाम-मात्र को केवल एक स्थल पर है ('पी रहै' को भंग-पद-श्लेष द्वारा 'पीर है' करके अर्थ लगाना पड़ता है) ।

बाक़ी सारे कवित्त में भंग-पद-यमक व्याप्त है। जहाँ एक शब्द के दो बार प्रयुक्त होने के कारण दो अर्थ निकलते हैं वहाँ यमक मानी जाती है। श्लेष में एक ही शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है।

विशेष :—पहली पंक्ति में गति-भंग दोष है। दो 'विषमों' ('कुबिजा' तथा 'लगाई') के बीच में एक 'सम' ('उर') रक्खा हुआ है।

(६७)

शब्दार्थ :—बाग=१ लगाम २ वाटिका। सिर कटाहैं=१ सिर कटा देते हैं २ शृगाल ('सिरकटा') हैं। रज=१ क्षात्र धर्म, रजपूती २ धूल। कर करैं=१ रक्षा करते हैं २ बलिष्ठ व्यक्ति की ('करकरैं')।

अर्थ :—शूर-पक्ष में :—कई कोसों तक निकाल कर (अपने वैरियों को भगा कर) पीछे को नहीं देखते (आगे बढ़ते हुए वैरियों को भगाते जाना ही उनका काम है, पीछे की ओर देखना तो वे जानते ही नहीं हैं), तलवार लेकर लगाम लिए (हुए) शोभा पाते हैं (घोड़े पर चढ़कर हाथ में लगाम लिए हुए शोभित होते हैं)। संकट पड़ने से, साहस के समय (अपना) सिर कटा देते हैं (वीरता के समय उन्हें प्राणों तक की चिंता नहीं रहती); शक्ति से भी लड़कर ('लरि') मर्यादा ('कानि')को छोड़ देते हैं (अर्थात् ऐसे वीर हैं कि यदि स्वयं दुर्गा युद्धस्थल में आ जायँ तो उनसे भी निडर होकर युद्ध करते हैं, यद्यपि ऐसा करने में मर्यादा का उल्लंघन हो जाता है फिर भी उनको इसकी चिंता नहीं होती है)। नगाड़ा रखते हैं (उनके आगे आगे डंका बजता चलता है), युद्ध में रजपूती (से) पूर्ण रहते हैं (क्षात्र धर्म का पालन करते हैं); जो (व्यक्ति) (उनकी) शरण में आते हैं, (उनकी) रक्षा वे सदा करते हैं। सेनापति (कहते हैं कि) वीर से लड़ते समय हाथ जोड़ते हैं; इसी से शूर (तथा) कायर एक से जान पड़ते हैं।

कायर-पक्ष में :—कई कोसों से (कई कोसों तक भागने पर भी) पीछे (के) मैदान (निकास) को नहीं देखते (युद्ध से इतना भयभीत हो जाते हैं कि कोसों भाग चुकने पर भी पीछे की ओर मुड़कर देखने का साहस नहीं करते), तलवार लेकर (किसी) बाग़ (में) पहुँचते (हैं) (और वहाँ) आमोद-प्रमोद करते हैं। साहस के समय, संकट पड़ने पर शृगाल हैं (आपत्ति के समय शृगालों की भाँति भाग जाते हैं), तिनका (खड़कने के शब्द की) शंका से

ही ('सक तिन हू सौं') लड़कों को छोड़ देते हैं (थोड़े से अनिष्ट की आशंका से इतने भयभीत हो जाते हैं कि लड़के-बच्चे छोड़कर भाग खड़े होते हैं)। (जो) आत्म-सम्मान ('गारौ') नहीं रखते; समर में धूल (से) परिपूर्ण रहते हैं (युद्ध-भीरु होने के कारण संग्राम-भूमि में सब से आगे न रहकर पीछे की ओर रहते हैं और धूल खाया करते हैं); जो सदा बलिष्ठ व्यक्ति (की) शरण को खोजा करते हैं (जिससे कि वे सुरक्षित रहें)। सेनापति (कहते हैं कि) (कायर) वीरों से लड़ते समय हाथ जोड़ते हैं (अर्थात् अधीनता स्वीकार करते हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

(६८)

शब्दार्थ :—आरवी = भीषण शब्द।

अर्थ :—सेनापति (ने) महाराज रामचंद्र (का) वर्णन किया है अथवा सुधारे (हुए) हाथियों (का वर्णन किया है), (जो) सवारी के लिए उपयुक्त हैं।

राम-पक्ष में :—करोड़ों गढ़ों (तथा) पर्वतों (को) ढहा देते हैं (यद्यपि) जिनके पास (कोई) क़िले नहीं हैं ('दुरग ना हैं'); जिनके बल की शोभा महान् (है), (और जो) भीषण हुंकार सहित हैं (अर्थात् जिनकी एक हुंकार में सृष्टि को उलट-पुलट कर देने की शक्ति है)। जिनमें सदा अत्यंत मंद (तथा) गंभीर गति देखी जाती है (जो मंद-मंद गति से मनोहर चाल चलते हैं); मानों वे मेघ (हैं) (उनका वर्ण मेघों का सा है); (जिन्होंने) (अपना) तेज नित्य कर रक्खा है ('तेज करि राखे नित हैं') (जिनका तेज सर्वदा एक सा रहता है)। महान् डगों से चलते (हैं) (वामनावतार में जिन्होंने दो डगों में ही सारा ब्रह्मांड नाप लिया था); (जिन्होंने) (संसार को) कर्मों के आधीन कर रक्खा है; सब (लोग) कहते हैं (कि ये) समुद्र (में) रहते हैं ('सिंधु रहैं') (अर्थात् राम क्षीरसागर में शेष-शय्या पर सोने वाले विष्णु के अवतार हैं); (जो) प्रत्येक स्थान में ('दर दर'), (अर्थात् सब लोगों के) हितू हैं (सब पर समान अनुराग रखने वाले हैं)।

हाथियों के पक्ष में :—करोड़ों गढ़ों (तथा) पर्वतों (को) ढहा देते हैं, जिनके लिए दुर्ग (कोई चीज़) नहीं हैं (बड़े बड़े दुर्गों को जो कुछ नहीं सम-

झते); जिनके बल की छवि महान् (है), (और जो) (भीषण) चिग्घाड़ सहित हैं। जिनमें सदा अत्यंत मंद गति देखी जाती है, (और जो बहुत) बड़े (हैं); वे मानों बादलों (से) (हैं) (बादलों के समान हैं), वे ('ते') नित्य (जंजीरों से) जकड़ कर रक्खे गए हैं। डगों से चलते (हैं), (उन्हें) महावतों (ने) भली प्रकार वश (में) कर रक्खा है; सब (लोग) उन्हें 'सिंधुर' (हाथी) कहते हैं; (वे) दया ('दरद') रहित हैं।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा।

(६९)

शब्दार्थ :—पारिजात=समुद्र-मंथन के समय निकला हुआ एक वृक्ष। यह इन्द्र के नंदन कानन में है। कहते हैं कि इसकी शाखाओं में अनेक प्रकार के रत्न लगे रहते हैं। यह अतुल संपत्ति का देने वाला है। प्रसिद्ध है कि सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण इसे स्वर्ग में इन्द्र से युद्ध करके लाए थे और पुनः उन्हें लौटा आए थे। सुर मनी=१ देवताओं के मणि, इन्द्र २ सुन्दर रमणी ('सु रमनी')। बैन=१ वचन २ वंशी।

अर्थ :—राजा दशरथ के पुत्र रामचंद्र के गुण मानों वसुदेव के पुत्र (कृष्ण) के (से हैं)।

राम-पक्ष में :—राम ('सत्य') कामनाओं को पूर्ण करते हैं (याचक को उसकी इच्छानुकूल वस्तु देते हैं), स्त्री ('भामा'–सीता जी) (के) सुख (के) सागर हैं (सीता जी को असीम आनंद देने वाले हैं), (अपने) हाथ के बल से पारिजात को भी जीत लेते हैं (अपने हाथों से इतनी संपत्ति दे डालते हैं कि पारिजात के बहुमूल्य रत्न उसके सामने नितांत तुच्छ लगते हैं; जितना धन वे दे डालते हैं, पारिजात उतना नहीं दे सकता है)। सेनापति (कहते हैं कि जो) सर्वदा बल, वीरता, धैर्य तथा सुख (से) शोभित होते हैं (सर्वदा प्रसन्न रहते हैं, आनंद-मय हैं); जो युद्ध में विजय की बाज़ी रखते हैं (सर्वदा विजयी होते हैं)। (जिनका) रूप अनुपम है, इन्द्र को मोहित करने वाला है; जिनके वचन सुनने पर महापुरुषों के (हृदयों को) शान्ति मिलती है।

कृष्ण-पक्ष में :—सत्यभामा (की) इच्छा को पूर्ण करते हैं (पारिजात को इन्द्र के यहाँ से ले आते हैं), (और उनके) सुख (के) सागर हैं (सत्यभामा को

असीम सुख देने वाले हैं), (अपने) वाहु-बल (से) पारिजात को भी जीत लेते हैं (जीत कर ले आते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) (जिनके) धैर्यवान् भाई ('बीर') बलराम सर्वदा सुख (से) शोभित हैं (जिनके भाई बलराम सर्वदा प्रसन्न-वदन शोभित होते हैं), जो युद्ध में विजय (की) बाज़ी (अपने) हाथ रखते हैं (सर्वदा विजयी होते हैं)। (जिनका) रूप अनुपम है, सुन्दर रमणियों को मोहित करने वाला है। जिनकी वंशी सुनने पर महापुरुषों के (हृदयों को) शान्ति होती है।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक, प्रतीप।

(७०)

शब्दार्थ :—बीरैं=१ वीरों को २ पान के बीड़े को। अरि=१ वैरी २ सखी (अलि)। निरवारै=१ रोकती है २ त्याग देती है। वारन=१ प्रहारों को २ आवरण, परदा। आड़=१ रुकावट २ लंबी टिकली जिसे स्त्रियाँ मस्तक पर लगाती हैं। नीर=१ कान्ति २ जल।

अर्थ :—तलवार-पक्ष में :—(अनेक) वीरों को मार रही है इससे रक्त-मुख वाली (तलवार) शोभित है; वैरियों की शंका छोड़, म्यान से निकलकर चली है (अर्थात् उससे बहुत से वार किए गए हैं)। प्रहारों (को) रोकती है, पुनः हार को भी भुला देती है (हारना तो जानती ही नहीं), रुकावटों (की) परवाह नहीं करती (विघ्नों की उसे चिंता नहीं), (उसकी) संपूर्ण धार कान्ति-युक्त है। सेनापति (कहते हैं कि जो अपने) प्रभुओं को सचेत रखती है, जो शरीर की अनुकूल स्थिति जान (सुयोग्य अवसर देख) पहले ही वार कर देती है। जिसकी ओर झुक पड़ती है, उसे मार कर (रक्त से) लाल कर देती है; (इस प्रकार) युद्ध (में) राम की तलवार (स्त्री के समान) फाग खेलती है।

स्त्री-पक्ष में :—पान खाए हुए है इससे मुख लाल किए हुए शोभित है; सखियों की भीड़ की (अर्थात् सखियों की) शंका को छोड़ निर्लज्ज होकर इधर-उधर फिरी है (उसे इस बात की शंका नहीं है कि उसको सखियाँ उसे बुरा कहेंगी)। परदा त्याग देती है, पुनः (फाग खेलने की धुन में) हार खो देती है, आड़ (को) भी भुला देती है, एड़ी से लेकर चोटी तक पानी से तर (है)। सेनापति (कहते हैं कि जो) (अपने) प्रेमियों को होशियार रखती है, जो शरीर की अनुकूल स्थिति

देख कर, पहले ही (पिचकारी की) धार चला देती है। जिसकी ओर झुक पड़ती है उसे एकदम ('मारि') (रंग से) लाल कर डालती है।

अलंकार :—रूपक, श्लेष।

(८१)

शब्दार्थ :—त्रिभंगी=१ कुटिल, घुँघराले २ वह व्यक्ति जिसके खड़े होने में पेट, कमर, तथा गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है; कृष्ण। रस=१ जल २ काम-क्रीड़ा, केलि। उमहत हैं=उमंग में आते हैं, प्रसन्न होते हैं। नेह=१ तेल २ स्नेह। केसौ=१ बाल २ कृष्ण।

अर्थ :—बालों के पक्ष में :—(हे सखी ! यद्यपि मेरे बाल) बड़े (हैं), पर (ये) कुटिल (हैं); ये जल में भी सीधे नहीं होते (अर्थात् स्नानादि करने पर भी ये घुँघराले बने रहते हैं)। सुन्दर स्वाभाविक श्यामता धारण करते हैं। (मैंने) (इन्हें) सिर (पर) धारण कर (तथा) लज्जा छोड़कर, (इनकी) सेवा की, इससे (घर के) नीरस बड़े-बूढ़े कठोर वचन ही कहते हैं (अर्थात् मैं निर्लज्ज की भाँति नित्य सिर खोल कर बालों को झाड़ने में संलग्न रहती हूँ इसी से गुरु-जन मुझे डाँटा करते हैं)। मृग-नयनी, कृष्ण को सुनाकर, सखी से कहती है: कानों (में) (इन) चतुराई (भरे वचनों के) पड़ने पर कृष्ण प्रसन्न होते हैं। और किसी (वस्तु) की बात ही क्या, पुष्प के तेल (से) चिकनाने पर (भी) मेरे, प्राणों से (भी) प्रिय, बाल रूखे ही रहते हैं (तेल छोड़ने पर भी इनका रूखापन नहीं जाता है)।

कृष्ण-पक्ष में :—(कृष्ण यद्यपि) बड़े (हैं) पर (ये) त्रिभंगी (हैं) (महान् पुरुष होते हुए भी ये बड़े कुटिल हैं !), काम-क्रीड़ा (के समय) भी सीधे नहीं होते (इनका नटखटपन उस समय भी चलता रहता है); सुन्दर, स्वाभाविक श्यामता धारण करते हैं। (मैंने) (इनको) सादर अंगीकार कर (लज्जा छोड़कर (इनकी) सेवा की; इसी से नीरस गुरु-जन कठोर वचन ही कहा करते हैं। और किसी की बात ही क्या, मन ('सु मन') के स्नेह (से) चिकनाए जाने पर (भी) मेरे, प्राणों से (भी) प्रिय, कृष्ण (मुझसे) विरक्त ही रहते हैं (यद्यपि हम ने अपना मन तक कृष्ण को दे दिया है फिर भी वे मुझ पर अनुरक्त नहीं हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—अन्तिम पंक्ति में गति-भंग दोष है।

(७२)

शब्दार्थ :—रस=१ प्रीति २ धातुओं को फूँक कर बनाई हुई भस्म, जैसे अभ्रक, चंद्रोदय आदि। नारी=१ स्त्री २ नाड़ी।

अर्थ :—स्त्री-पक्ष में :—सेनापति (कहते हैं कि) जिसके घर के रहने (से) सुख मिलता (है), जिससे चित्त को भली प्रकार तुष्टि होती है। जिसकी सुन्दर भक्ति ('सु भगति') (पति-भक्ति) देखने पर (उससे) बहुत प्रीति मानी जाती है (जिसके) थोड़ा (सा) न बोलने पर (अर्थात् रूठ जाने से) मन आकुल हो उठता है। (वही स्त्री) आँखों के सामने, देखते ही देखते ग़ायब हो गई (भाग गई), (उसका) हाथ पकड़ कर रक्खा (किंतु) वह किसी प्रकार नहीं ठहरी। (उसे) सर्वस्व जान कर, बार बार प्रीति देकर रक्खा (अर्थात् उससे प्रेम कर उसे अपने वश में रखना चाहा), (किंतु) स्त्री (इस प्रकार) छूट गई (चली गई) जैसे नाड़ी छूट जाती है।

नाड़ी-पक्ष में :—सेनापति (कहते हैं कि) जिसके नियत स्थान के रहने (से) सुख मिलता (है), (और) जिससे चित्त को भली प्रकार तुष्टि होती है। जिसकी उत्तम चाल ('सुभ गति') देखने पर (उससे) बहुत प्रीति मानी जाती है (क्योंकि नाड़ी की गति ठीक होना शुभ लक्षण है), (उसके) थोड़ा (सा) न चलने पर (थोड़े समय के लिए रुक जाने से) चित्त उद्विग्न हो उठता है। (वह) आँखों के सामने देखते ही देखते ग़ायब हो गई (क्रिया-शून्य हो गई); (वैद्य) हाथ पकड़े रहा (नाड़ी की गति की परीक्षा करता रहा), (किंतु) वह किसी प्रकार नहीं ठहरी। (उसे) सर्वस्व जान कर (रोगी को) रस (आदि) खिला कर रक्खा (पर नाड़ी छूट गई)।

अलंकार :—यमक, उदाहरण, श्लेष।

(७३)

शब्दार्थ :—धाम=१ गृह २ किरण। अंबर=१ वस्त्र २ आकाश। मित्त=१ मित्र, २ सूर्य।

अर्थ :—मित्र-पक्ष में :—जिसकी ज्योति पाकर (जिसके दर्शन होने से) संसार जगमगा उठता है (अच्छा लगने लगता है); पद्मिनी (स्त्रियों का) समूह (जिसके) पैरों (तक को) नहीं पहुँचता है (जिसके चरण पद्मिनी स्त्रियों से कहीं सुन्दर हैं)। जिसके देखने से हृदय-कमल प्रसन्नता (से) प्रस्फुटित हो

जाता (है); (जिसको) पाकर (हृदय के) नेत्र खुल जाते हैं (हृदय का अंध-कार दूर हो जाता है) (और) सुख बढ़ जाता है । (जो) घर की निधि है (घर में सबसे महत्व-पूर्ण व्यक्ति है), जिसके सामने चंद्रमा (की) छवि मंद (है) (जो चंद्रमा से भी सुन्दर है); (जिसका) रूप अनुपम है, (जो) वस्त्रों के मध्य में शोभित है (जो नाना प्रकार के सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए है), जिसकी सुन्दर मूर्त्ति नित्य शोभित होती है, सेनापति (कहते हैं कि) वही मित्र चित्त में बसता है ।

सूर्य-पक्ष में :—जिसके प्रकाश (को) पाकर संसार जगमगा उठता है (चारों ओर प्रकाश फैल जाता है), (जो) किरणों से कमलिनी समूह (को) स्पर्श करता है । जिसके देखने से कमल का कोप प्रसन्नता (से) प्रस्फुटित हो जाता है, (जिसे) पाकर नेत्र खुल जाते हैं (निद्रा भंग हो जाती है); (तथा) सुख बढ़ता है । (जो) किरणों का खज़ाना है, जिसके सामने चंद्रमा (की) छवि मंद (हो जाती है) (अर्थात् चंद्रमा अस्त हो जाता है), (जिसका) रूप बेजोड़ है, (जो) आकाश में शोभित होता है । जिसकी उत्तम मूर्त्ति प्रत्येक दिन शोभित होती है; सेनापति (कहते हैं कि) वही सूर्य चित्त में बसता है (उसकी हम आराधना करते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप ।

(७४)

शब्दार्थ :—तारन की=१ नेत्रों की २ तारों की । जगतै=१ संसार २ जागता हुआ । द्विज=१ ब्राह्मण २ पक्षी । कौशिक=१ विश्वामित्र २ उल्लू । सज्जन=१ भला पुरुष २ शय्याएँ (सज्जा=शय्या) । हरि=विष्णु । रवि अरुन=लाल सूर्य (उदय होता हुआ सूर्य) । तमी=रात्रि ।

अर्थ :—(इस) कविता (के) वचनों की (यह) मर्यादा (है) (कि) (इसमें) सेनापति विष्णु, लाल सूर्य, (तथा) रात्रि का वर्णन करता है । (कवि का अभिप्राय यह है कि हमारी वाणी की मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा इसी में है कि उससे विभिन्न पक्षों के अर्थ बरबस निकलते चले आते हैं) ।

विष्णु-पक्ष में :—जिससे मिलने पर नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है (हृदय का अज्ञान दूर हो जाता है और अन्तर्दृष्टि की ज्योति स्वच्छ हो जाती

है); जिसके पैरों के साथ में समुद्र ('नदीप') शोभित होता है (शेष-शय्या पर लेटे हुए विष्णु अपने चरणों की द्युति से क्षीरसागर को शोभित करते हैं)। जिसके हृदय (का) प्रकाश ऊपर, नीचे, (तथा-समस्त) संसार (में) जाना जाता है (संसार में जो कुछ प्रकाश है वह सब उसी की ज्योति की झलक मात्र है); वह उसी (संसार) (के) मध्य (में व्याप्त है), (तथा) जिसके मध्य (समस्त) संसार रहता है (विष्णु जगत् में रहता है और समस्त जगत् उसमें रहता है)। द्विज विश्वामित्र (जिसकी कृपा से) सब प्रकार से (अपनी) कामना पूर्ण करते हैं (अपने अभीष्ट की सिद्धि करते हैं); जिसे सज्जन (व्यक्ति) भजता है (तथा) (जिसके) माहात्म्य (में) प्रीति (से) अनुरक्त रहता है (गुणानुवाद किया करता है)।

सूर्य-पक्ष में :—जिससे मिलने पर नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है (सूर्योदय होने से नेत्र सांसारिक वस्तुओं को भली प्रकार देख सकते हैं); जिसकी किरण ('पाइ') (के) साथ में दीप नहीं ('मैं न दीप') शोभित होता है (सूर्योदय होने पर दीप की ज्योति मलिन हो जाती है)। (जिसके) उर (का) प्रकाश ऊपर, नीचे, (तथा समस्त) संसार में जाना जाता है; सोता हुआ ('सोवत') व्यक्ति ही जिसके मध्य (जिसके रहने पर) जगता रहता है (जो लोग रात्रि में सोए हुए थे वे ही सूर्य के निकलने पर जगते रहते हैं; अन्य प्राणी जैसे चोर अथवा उलूक सूर्य के निकलने पर सो जाते हैं)। उल्लू पक्षी (अपना) मनोरथ नहीं पूर्ण कर पाता है ('काम ना लहत द्विज कौसिक'), सज्जन (व्यक्ति) सब प्रकार से (सूर्य की) पूजा करता है (और) महान् अंधकार से मुक्त होता है ('महा तमहिं तरत है')।

रात्रि-पक्ष में :—जिससे मिलने पर नक्षत्रों की ज्योति स्वच्छ होती है (रात्रि आने पर नक्षत्र चमकने लगते हैं); जिसका साथ पाने पर कामदेव (का) दीपक तेज होता है (रात्रि के समय अधिक कामोद्दीपन होता है) ('मैंन दीप सरसत है')। (रात्रि के) बीच ('उर') ऊपर, नीचे, (तथा समस्त) संसार (में) प्रकाश नहीं ('भुव न प्रकास') जाना जाता है (रात्रि में चारों ओर अंधकार रहता है), जिसके मध्य (सारा) संसार सोता ही रहता है ('सोवत ही मध्य जाके जगतै रहत है')। उल्लू पक्षी, सब प्रकार से, अपनी

मनोकामना लहता है (प्राप्त करता है); (मनुष्य) शय्याओं (को) भजता हुआ घने अंधकार से मुक्त होता है (अर्थात् शय्याओं पर सोकर लोग रात बिताते हैं)।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक ('सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है)।

विशेष :—रामावतार में विष्णु ने विश्वामित्र के साथ जाकर उनके यज्ञों की रक्षा की थी।

(७५)

शब्दार्थ :—तिमिर=१ अज्ञान २ अंधकार। राम=१ रामचंद्र २ अभि-राम, रम्य। दुरजन=१ दुष्ट जन २ दुष्ट रात्रि ('दु+रजन')। धन=१ संपत्ति २ धन राशि, जिसमें सूर्य की गरमी मंद पड़ जाती है, दिन बहुत छोटा होता है, तथा रात्रि बड़ी होती है। दिनकर=१ सूर्य २ दिन करने वाला।

अर्थ :—राम-पक्ष में :—जिसका प्रबल प्रताप सातो द्वीपों (में) तपता है (जिसका आतंक सर्वत्र है); (जो) तीनों लोकों (के) अज्ञान के समूह (को) नष्ट करता है। सेनापति (कहते हैं कि) रामचंद्र रूपी सूर्य देखने में अनुपम (है); जिसे देखने से समस्त अभिलाषाएँ फलती हैं। (हे) नीच! उसी (को) हृदय में धारण करो, दुर्जन को भुला दो, (क्योंकि) (वह) महा तुच्छ थोड़ा धन पाकर बहुत प्रसन्न हो जाता है। श्रेष्ठ देवताओं (की) सभा (में) सर्वश्रेष्ठ, सब प्रकार पूर्ण, यह सूर्य (वंशी) वीर उबल नहीं पड़ता है (अपने प्रभुत्व का इसे थोड़ा सा भी गर्व नहीं है)।

सूर्य-पक्ष में :—जिसका प्रचंड ताप ('प्रताप') सातो द्वीपों (में) तपता है, (जो) तीनों लोकों (के) अंधकार के समूह (को) नष्ट करता है। सेनापति (कहते हैं कि) रम्य रूप (वाला) रवि देखने में अनुपम (है), जिसे देखने से समस्त अभिलाषाएँ फलती हैं। (हे) नीच! उसी (को) हृदय में धारण करो (उसी की आराधना करो), दुष्ट रात्रि को भुला दो, (क्योंकि) (वह) महा तुच्छ थोड़ा (सा) (कुछ दिन के लिए) धन (राशि) (को) पाकर उबल पड़ती है (बहुत बड़ी हो जाती है)। श्रेष्ठ सूर्य उत्तम किरणों सहित ('सुर वर स भा रूरौ') सब प्रकार पूर्ण (है), यह दिन करने वाला सूर्य (पुनः) उत्तरायण चला आता है (यद्यपि धन राशि में थोड़े दिनों के लिए सूर्य का प्रभुत्व कुछ कम

हो जाता है तथापि थोड़े समय बाद वह फिर उत्तर की ओर आ जाता है और उसकी प्रचंडता पहले की सी हो जाती है)।

अलंकार :—श्लेष, रूपक। अन्तिम पंक्ति से व्यतिरेक अलंकार भी ध्वनित होता है। दिनकर-वंश के सूर्य राम में यह विशेषता है कि वे उत्तरायण नहीं चलते हैं। सर्वदा लोगों पर कृपा-दृष्टि बनाए रखते हैं। उनके प्रबल प्रताप के कारण कभी किसी को दुःख नहीं पहुँचता है। किंतु सूर्य कुछ दिनों के लिए उत्तरायण चला जाता है और उसी समय भीषण गरमी पड़ती है।

(७६)

शब्दार्थ :—वसुधा=पृथ्वी। छत्रपति=राजा। सूर=१ शूरवीर २ सूर्य। चल=अस्थिर।

अर्थ :—स्पष्ट है।

अलंकार :—इस कवित्त में प्रतीप अलंकार व्याप्त है।। श्लेषालंकार तो इसमें कहीं है ही नहीं। पहली पंक्ति के दो अर्थ निकलते हैं :—१ तेरे (पास) सुन्दर पृथ्वी है, उसके (चंद्रमा के) (पास) तो पृथ्वी नहीं है; तू तो राजा (है), वह राजा नहीं माना जाता है। २—तेरे पास सुन्दर पृथ्वी है तो उसके (पास) नवीन सुधा है ('नव सुधा है') तू तो राजा (है), वह (भी) नक्षत्रों (का) स्वामी माना जाता है। किंतु ये दोनों अर्थ भंग-पद-यमक द्वारा प्राप्त होते हैं न कि श्लेष द्वारा। ६६ वें कवित्त में भी इसी प्रकार यमक द्वारा दो अर्थ लगाए गए हैं।

(७७)

शब्दार्थ :—अरस (अ० अर्श)=१ आकाश २ स्वर्ग। घनस्याम=१ मेघ २ कृष्ण। बरसाऊ=१ बरसने वाले।

अवतरण :—एक पक्ष में कोई व्यक्ति अथवा स्वयं कवि आकाश में आच्छादित मेघों से बरसने के लिए विनय कर रहा है। दूसरे पक्ष में कोई स्त्री कृष्ण से प्रेम की याचना कर रही है।

अर्थ :—मेघों के पक्ष में—(तुम्हारी बूँदों के) उत्तम स्पर्श से आँखें शीतल हो जातीं, हृदय की ताप शांत हो जाती, शरीर (का) रोयाँ-रोयाँ प्रसन्न हो जाता। हम तुम्हारे आधीन (हैं), तुम्हारे बिना अत्यंत दीन (हैं), (नहीं तो) जल-विहीन मीन (के) समान (हम) क्यों तरसते ? (हमारी परवशाता

तो इसी से सूचित हो जाती है कि, वृष्टि न होने से, हम मछली की भाँति तड़पने लगते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) तुम निश्चय ही जीवों (के) अवलंब (हो) (वृष्टि न होने से जीवधारियों का जीवित रहना ही दुरूह हो जायगा), (तुम) जिधर को झुकते हो उधर आकाश से टूट पड़ते हो (जिधर आकृष्ट हो जाते हो उधर ही वृष्टि करने लगते हो)। (हे) घनश्याम ! (तुम) उमड़-घुमड़ कर गरजते (हुए) आए (हो); बरसाऊ होकर (भला) एक बार तो बरसते।

कृष्ण-पक्ष में :—(तुम्हारे) शरीर (के) उत्तम स्पर्श से आँखें शीतल हो जातीं, हृदय की गरमी (विरहाग्नि) शांत हो जाती, (शरीर का) रोयाँ-रोयाँ प्रसन्न हो जाता। हम तुम्हारे आधीन (हैं) तुम्हारे बिना अत्यंत दीन (हैं), (नहीं तो) नीर-विहीन मछली (के) समान (हम) क्यों तरसतीं। सेनापति (कहते हैं कि) तुम निश्चय (ही) (हमारे) जीवन (के) आधार (हो) (तुम्हारे बिना हमारा जीना दुर्लभ है), (तुम) जिस पर कृपा करते हो, उस के समीप स्वर्ग से आ जाते हो (जिस पर प्रसन्न हो जाते हो उसके लिए तुरंत दौड़े आते हो) उमड़-घुमड़ कर, गरज कर गरज (के समय) आए (हो) (अर्थात् ऐसे समय आए हो जब हमें तुम्हारी आवश्यकता है, (अतः हे) घन-श्याम ! बरसाऊ होकर (रस की वर्षा करने वाले होते हुए) (भला) एक बार तो बरसते (एक बार तो हम पर कृपा करते)।

अलंकार :—श्लेष, यमक।

विशेष :—१—इस कवित्त को हम किसी भक्त का कथन भी मान सकते हैं जिसमें भक्त कृष्ण से कृपा-दृष्टि करने की याचना कर रहा है।

२—'रोम' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है।

(७८)

शब्दार्थ :—मनुहारि="वह विनती जो किसी का मान छुटाने के लिए की जाती है", खुशामद। आखियै=कहना चाहिए। नाखियै=नष्ट करके। पाती पाती कहै........हरा मैं बाँधि राखियै=नायिका अपने श्लिष्ट वचनों द्वारा दूती का भी संतोष कर देती है तथा गुरु-जनों पर भी भेद प्रकट नहीं होने देती। वह कहती है—१ 'पाती पाती' कहता हुआ जो कोई व्यक्ति कहीं का पत्र लाए तो उस सुअर को ('हरामैं') सिर तथा पैर एक करके बाँध रखना चाहिए अर्थात् यदि

कोई हमारे यहाँ इस प्रकार से दूसरों के पत्र लाएगा तो हम उसे कड़ी सज़ा देंगी। २—'पाती पांती' कहता हुआ जो कोई व्यक्ति कहीं का पत्र लाए तो उसे 'सिरपाउ' देकर विदा करना चाहिए तथा पत्र को हार में बाँध रखना चाहिए।

विशेष :—'सिरपाउ'=प्राचीन काल में दरबारों में जब किसी दूत अथवा अन्य व्यक्ति का सम्मान किया जाता था तो उसे सिर से लेकर पैर तक के कपड़े देकर विदा किया जाता था। सिरपाव में अंगा, पगड़ी, पायजामा, पटुका और डुपट्टा दिया जाता था।

(७९)

शब्दार्थ :—नारि=गरदन। जानि=जानकार। कुंदन=बहुत बढ़िया सोना। सुनारी=१ अच्छी स्त्री २ सुनार की स्त्री। बलिहारी=निछावर। चोकी=१ बहुत बढ़िया २ आभूषण विशेष जिसमें चौकोर पटरी लगी रहती है। यह गले में पहना जाता है। होइ ज्यौं सरस काम........देह तू सँजोग कोई लाल कौं=१—नायिका दूती से कहती है कि तू प्रियतम से कह देना कि जिस प्रकार उत्तम काम बन पड़े अर्थात् जिस युक्ति से मेरा तथा उनका संमिलन हो वही उनको करनी चाहिए क्योंकि मेरा सोने का घर उनके बिना सूना है। उनसे कह देना कि मैं उन्हें कुंदन-वर्ण वाला शरीर दूँगी जो बहुत ही भव्य और सुन्दर है। हे सुन्दर स्त्री! प्रियतम से मेरा यह सँदेसा कह कर तू कृष्ण से मिलने का कोई संयोग कर अर्थात् कृष्ण से मेरे रूप की प्रशंसा कर मुझे उनसे मिला दे। मैं तेरी बलि जाती हूँ। २—गुरु-जनों से अपना भेद छिपाने के लिए नायिका दूती से इस ढंग से बात करती है जैसे वह किसी सुनार की स्त्री हो। वह कहती है कि तू अपने प्रियतम से कहना कि जिस प्रकार उत्तम कारीगरी बन पड़े वही वह करे; हमारे सोने का खाना अर्थात् हमारी चौकी की पटरी कान्ति-हीन है, वह उसे ठीक कर दे। मैं उसे वह उत्तम सोना दूँगी जो बहुत रुपया लगाकर खरीदा गया है। हे सुनार की स्त्री! मैं तेरी बलि जाती हूँ, तू अपने प्रियतम से कह देना कि वह मेरी चौकी में किसी लाल अथवा नग को जड़ दे।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक।

(८०)

शब्दार्थ :—नीरैं=१ जल के समीप २ समीप (नियरे)। खई=१ क्षयी, यक्ष्मा २ तकरार, झगड़ा। अरूसे=१ अड़ूसा, जो यक्ष्मा में बहुत लाभप्रद सिद्ध

होता है। वैद्यों का कहना है कि इसके फूलों तथा पत्तियों के रस को विधिवत् सेवन करने से यक्ष्मा तथा कासश्वास वाले रोगियों को विशेष लाभ होता है। २ बिना रूठे (अ+रूसे)।

अवतरण :—इस कवित्त में एक ओर तो कोई दूती कृष्ण से मान छोड़ने का आग्रह कर रही है और वह युक्ति बतलाती है जिससे कृष्ण का झगड़ा नायिका से मिट जायगा, दूसरी ओर कोई व्यक्ति किसी यक्ष्मा के रोगी को उपदेश दे रहा है और उन उपचारों को बता रहा है जिनसे रोगी यक्ष्मा से मुक्त हो जायगा।

कृष्ण-पक्ष में :—(और) जितनी ('जेतीब') सुन्दर स्त्रियाँ हैं, उनकी ओर (तरफ़) दौड़ मत करो (अन्य स्त्रियों की इच्छा मत करो)। मन को एक स्थान पर (एक व्यक्ति पर), भली प्रकार वश में करके रक्खो। बार बार (दूसरी बालाओं की) गोराई (तथा) चिकनाई देखकर भूल कर (भी) मत ललचाओ (दूसरी स्त्रियों के सुन्दर तथा सचिक्कण शरीर को देख कर तुम लालायित मत हो), अब धैर्य का ही समय (है) (अर्थात् इस समय यदि तुम धैर्य से काम लो तो उसे फिर पा सकते हो)। सेनापति (कहते हैं कि) (हे) कृष्ण! (तुम) (उसके) यौवन ('रंग') (का) उपभोग कर सुखी होगे; मैंने समझा कर, उत्तम उपाय बताया है। पीले पान खाकर (नायिका के) समीप, भूलकर (भी) मत जाओ (अर्थात् नायिका जब तुम्हारे पान खाए हुए मुख की छवि को देखेगी तो वह तुम से मिलने के लिए आतुर हो उठेगी, किंतु यदि तुम उसके समीप चले जाओगे तो उसके हृदय में वह औत्सुक्य न रह जायगा)। (मेरा कहना) मानो, बिना रूठे (रहने) के उपाय (से) ही झगड़ा मिट जायगा (यदि तुम रूठना छोड़कर उसके प्रति अनुराग प्रदर्शित करोगे तो स्वाभाविक रूप से वह भी मान छोड़ देगी)।

रोगी-पक्ष में :—वन की (और) जितनी बेलें (हैं) (अन्य जितनी वनस्पतियाँ हैं), उनकी ओर दौड़ मत करो (उनकी इच्छा मत करो), मन को भली प्रकार वश में करके एक स्थान में रक्खो (अर्थात् चित्त को स्थिर करो, विभिन्न प्रकार की औषधियों के सेवन करने के लिए उत्सुक मत हो)। बार बार (स्त्रियों के) गौर वर्ण (तथा) सचिक्कण (शरीर को) देख कर भूल कर (भी) मत लुब्ध हो, अब धीरता ही का समय है (अभिप्राय यह कि तुम क्षयी के रोगी हो, तुम्हें

काम-सुख की अभिलाषा न करनी चाहिए क्योंकि इससे बड़ी हानि होने की संभावना है)। सेनापति (कहते हैं कि) स्याम रंग (वाली अड़ूसे की पत्ती का) सेवन करके (तुम) सुखी होगे, मैं ने समझाकर उत्तम उपाय बताया है। पीले पान खाया करो (क्योंकि वे रक्त-वर्द्धक हैं)। जल के समीप भूल कर (भी) मत जाओ; (मेरा कहना) मानो, (तुम्हारी) क्षयी अड़ूसे के रस में ही अच्छी हो जायगी।

अलंकार:—श्लेष।

(८१)

शब्दार्थ:—बानक=सज-धज। मोतियै=१ मोतियों को २ मुझ स्त्री को ('मो तियै')।

विशेष:—सखियों से घिरी हुई होने के कारण नायिका स्पष्ट रूप से अपनी इच्छा कृष्ण पर न प्रकट कर सकी। वह सखी से कहती है कि मोतियों को भली प्रकार परख कर अर्थात् अच्छे अच्छे चुन कर आज लाल रेशम (के डोरे) को सफल करो—उस डोरे से मोतियों को पिरो दो। दूसरी ओर वह कृष्ण से कहती है कि हे ('रे') लाल! मुझ स्त्री को, प्रीति से, ध्यान देकर परख लो और आज आकर (मेरे) समय को सफल करो। (क्योंकि तुम्हारे वियोग में मेरा समय व्यर्थ व्यतीत हुआ जाता है)।

(८२)

सँजोए=सजाए हुए। साज=१ ठाट-बाट २ उपकरण, सामग्री। अरि=१ वैरी २ सपत्नी। जान=जानकार। अवदात=स्वच्छ, शुद्ध। निसान कौं=१ निशाने को २ रातों को।

अर्थ:—मान (ऐसे) छूट जाता है जैसे बाण छूट जाता है। सेनापति (ने) दोनों (को) समान करके वर्णन किया (है) (दोनों को एक कर दिया है), उन्हें जानकार (व्यक्ति), जिसके स्वच्छ ज्ञान है, जानता है (अर्थात् जो ज्ञानी है वह इस बात को जानता है)।

बाण-पक्ष में:—छूटने पर काम आता है, सजाए हुए ठाट-बाट (को) पृथक् कर देता है (वैरी के शरीर पर लगने से जिरह-बख़्तर आदि को छिन्न-भिन्न कर देता है), अब प्रत्यंचा ('गुन') (को) ग्रहण करता है (प्रत्यंचा में चढ़ा

कर चलाया जाता है), (जिसका) चिकना-स्वरूप शोभित होता है (बाण के तेज़ चलने के लिए उस पर जो तेल लगा दिया जाता है, उसके कारण उसका सचिकण स्वरूप शोभित होता है) । (बाण) तेज़ किया (गया) है, जिससे स्वामी (अर्थात् बाण चलाने वाले) (की) जीत होती है, हृदय (में) लगने पर लाल कर देता है (रक्त की धारा बह चलती है), (तथा) बैरी (का) शरीर ठंढा पड़ जाता है (बैरी की मृत्यु हो जाती है) । निशाने को पाकर धनुही ('धनही') के मध्य से (छूट) पड़ता है ।

मान-पक्ष में :—छूटने पर काम बनता है (मान छूटने से नायक-नायिका का संमिलन होता है), सजाई हुई सामग्री (को) पृथक् कर देता है (नायिका ने मान के कारण जो वेश-विन्यास धारण किया था उसे वह त्याग देती है), जो अवगुन ग्रहण करता है (अर्थात् नायक के किसी दुर्गुण को देख कर नायिका मान करती है), स्नेह (के) स्वरूप को शोभित करता है (मान नायक-नायिका के पारस्परिक स्नेह को बढ़ाता है) । स्त्री (ने) क्षण ('ती छन') (भर ही) किया है, जिससे पति (को) जीत कर (ही) होती है (रहती है अथवा शोभित होती है); (और नायिका के) लाल (प्रियतम) (के) हृदय (से) लगने पर सपत्नियों (का) शरीर ठंढा पड़ता है (सपत्नियों को दुःख होता है) । रातों को पाकर (अर्थात् रात में) स्त्री (के) हृदय के अन्दर से (निकल) पड़ता है (रात में नायिका मान छोड़ देती है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, असंगति ।

(८३)

शब्दार्थ :—कलेस = १ क्लेश २ कलाओं का ईश । बिस कों प्रसून = १ विष का पुष्प २ कमल (कमल की नाल को 'बिस' कहते हैं, इसी से कमल का एक नाम 'बिस-प्रसून' पड़ा) । कष्टवारी है = १ कष्टप्रद है (गरम होने के कारण) २ केशर का बाग़ ('बारी') बहुत कठिनाई से लगाया जाता है । इसकी खेती काशमीर में होती है । यह ढालुआँ ज़मीन पर होती है । जिस ज़मीन में केशर बोनी होती है उसे आठ वर्ष पहले से परती छोड़ दिया जाता है ।

अर्थ :—तेरा मुख आनंद का कंद (है), उसके समान चंद्रमा कैसे किया जाय (मुख की उपमा चंद्रमा से कैसे दें), (उसका) नाम 'कलेस' (क्लेश)

रक्खा गया है (वह लोगों को क्लेश-कर है किंतु तेरा मुख ऐसा नहीं है)। तेरे हाथ आठो पहर (रात-दिन) ताप हरण करने वाले हैं, कमल (तो) विष का प्रसून (है), (वह) उनके समान कैसे हो सकता है। तेरा सुख देने वाला शरीर ज्योति के समान नहीं हो सकता (ज्योति शरीर के सामने फीकी जँचती है); (यदि तेरे शरीर को) केशर (के) समान कहें (तो) (केशर भी) कष्ट-प्रद है (केशर गरम होती है इससे कभी-कभी नुक़सान भी कर सकती है किंतु तेरा शरीर तो सर्वदा सुख-प्रद है)। सेनापति (कहते हैं कि) तू प्रभु (की) (प्रियतम की) अनुपम (तथा) प्राणों से (भी) प्रिय स्त्री (है), तेरी उपमा की रीति समझ में नहीं आती (तेरी उपमा किससे दी जाय यही समझ में नहीं आता, तेरे समान तो कोई है ही नहीं)।

अलंकार :—प्रतीप, श्लेष।

विशेष :—इस पूरे कवित्त का कोई दूसरा अर्थ नहीं है। इसमें केवल तीन शब्द श्लिष्ट हैं जो एक दूसरे अर्थ को ध्वनित-मात्र करते हैं। प्रकट में यद्यपि कवि यही कहता है कि चंद्रमा मुख के समान नहीं है पर 'कलेश' के प्रयोग से वह यह सूचित करता है कि स्त्री का मुख इतना सुन्दर है कि उसकी उपमा कलाओं के ईश चंद्रमा से दी जाती है। हाथों का उपमान कमल कहा जाता है और कमल मृणाल के कोमल दंड पर लगता है इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि हाथ कितने उत्तम हैं। शरीर के वर्ण की समता केशर के रंग से दी जाती है जो इतने कष्ट से पैदा की जाती है। इन सब से यही ध्वनित करने का प्रयत्न किया गया है कि स्त्री बहुत श्रेष्ठ है।

(८४)

शब्दार्थ :—जुगारति है=१ नष्ट करती है ('जु गारति') २ जुगाली करती है। तिनही कौं=उन्हीं को, नायक (कृष्ण) को २ घास ही को। मधु= १ अमृत २ पानी। मदन=१ कामदेव २ घमंडी, गर्विष्ठ।

अर्थ :—ब्रज की विरहिणी (ऐसे) (रहती है) जैसे हरिणी रहती है।

विरहिणी-पक्ष में :—(जिसके) साथ कृष्ण नहीं है, (जो) बैठी (हुई) यौवन नष्ट कर रही है (कृष्ण का साहचर्य न होने के कारण जिसका यौवन व्यर्थ ही व्यतीत हुआ जाता है); मन, वचन, (तथा) कर्म (से) (वह) उन्हीं को

(कृष्ण को) (प्राप्त करने की) इच्छा करती है। जिसका मन अनुराग रूपी मधु (के) वश में हो गया है (जो कृष्ण की प्रीति में लिप्त है), (जिसके) बड़े-बड़े नेत्र हैं, (जो) स्थिर दृष्टि से देख रही है ('बड़े-बड़े लोचन, निचंचल चहति है') (विरह के कारण उसके नेत्रों का चांचल्य जाता रहा)। सेनापति (कहते हैं कि) वहाँ, बार-बार, मदन महीप (राजा) शिकार खेल रहे हैं, इससे (वह) सुख नहीं पाती है (कामदेव अपने शरों से उसे विद्ध कर रहा है इससे उसे बड़ा कष्ट है)। कुंजों (की) छाया (में) (वह अपने) शरीर (को) गरमी (विरहाग्नि) (से) बचा रही है।

हरिणी-पक्ष में :—(जिसके) साथ हरिण है, जो वन (में) बैठी हुई जुगाली कर रही है, (जो) मन, वचन, (तथा) कर्म (से) घास ही की इच्छा करती है (सर्वदा घास चरने में व्यस्त रहती है)। जिसका मन (हरिण की) प्रीति (के) वश (में) हो रहा है। (जो) बड़े-बड़े नेत्रों से, उद्विग्न (होकर) जल (के लिए) देखती है (जल की इच्छा से उद्विग्न होकर इधर-उधर देखती है)। सेनापति (कहते हैं कि) वहाँ, बार-बार, गर्विष्ठ महीप शिकार खेलते हैं, इससे (वह) सुख नहीं पाती (शिकारी महीपों के कारण हरिणी को विशेष कष्ट रहता है)। (वह कुंजों) की छाया (में), (अपने) शरीर (को) गरमी (से) बचा रही है (ग्रीष्म ऋतु में हरिणी कुंजों की छाया में घूमा करती है)।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, रूपक।

(८५)

विशेष :—इस कवित्त में पति-पत्नी के वियोग का वर्णन किया गया है किंतु दूसरा पक्ष स्पष्ट नहीं है।

(८६)

शब्दार्थ :—कमलै = १ कमल को २ लक्ष्मी को। राग = १ रंग २ ईर्षा, द्वेष। हरि = १ कृष्ण २ विष्णु। भाँति = रीति।

अर्थ :—सेनापति (ने) प्यारी के युगल चरणों (का) वर्णन किया है। उनकी (उन चरणों की) समस्त रीति श्रेष्ठ मुनियों में पाई जाती है (चरणों का ऐसा वर्णन किया है मानों मुनियों का वर्णन हो)।

चरणों के पक्ष में :—(जो) कमल को समादृत नहीं करते (कमल जिनके सामने तुच्छ लगते हैं)। लाल रंग को धारण करते हैं (जिनमें स्वाभाविक

ललाई विद्यमान् है)। चित्त को वश (में) करते हैं, नरम (चरणों को) फूल नमते हैं (नरमैं चरनैं फूल नमैं) (अर्थात् चरणों की कोमलता को पुष्प भी स्वीकार करते हैं, चरणों की कोमलता के सामने पुष्पों की कोमलता नितांत तुच्छ है)। हंस (की) परम (उत्कृष्ट) चाल (को) लेकर चलते हैं (अर्थात् हंस की सी चाल चलते हैं)। (जो) महावर (द्वारा) रँगे जाते हैं, जो आठो पहर (रात-दिन) कृष्ण से मिलकर रहते हैं (कृष्ण से जिनका विच्छेद कभी होता ही नहीं)। संसार में समस्त जीवों (का) जन्म सफल करते हैं (लोग जिनके दर्शन पाकर अपने को धन्य मानते हैं); जिनके सत्संग (से) (लोग) (ऐसे) सुख पाते हैं (जैसे) कल्पतरु में (मिलते हैं) (जो चरण कल्पतरु के समान मन-वांछित वस्तु देने वाले हैं)

मुनियों के पक्ष में :—लक्ष्मी का आदर नहीं करते और राग-द्वेष नहीं रखते (जो राग-द्वेष से परे हैं)। चित्त को वश (में) कर लेते हैं (मोहित करते हैं); फूलने में नहीं रमते (कभी गर्व नहीं करते, सर्वदा विनम्र रहते हैं)। महान् परमहंस गति लेकर चलते हैं, हृदय (ब्रह्म की प्रीति में) अनुरक्त रखते हैं; जो आठो पहर विष्णु से मिले रहते हैं (रात-दिन ब्रह्म के ही ध्यान में संलग्न रहते हैं)। संसार (में) (अपना) जंन्म (तथा) जीवन सब सफल करते (हैं) (जो अपने जीवन को व्यर्थ में नष्ट न कर, ईश्वर की भक्ति करके उसे सफल करते हैं)। जिनके सत्संग (से) (लोग) (ऐसे) सुख पाते हैं (जैसे) कल्पतरु में (मुनियों का सत्संग करने से लोगों को अभीष्ट वस्तु मिल जाती है)।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप।

(८७)

शब्दार्थ :—बढ़ि जात=१ अधिक हो जाता है २ समाप्त हो जाता है। कर=१ हाथ २ किरण। सुखित=१ सुखी है २ सूखी हुई, शुष्क। सरस=१ सुन्दर २ रसीली अथवा रसयुक्त (वस्तुएँ)।

अर्थ :—सेनापति (ने) वचनों की रचना बनाकर (काव्य रच कर) ग्रीष्म ऋतु (को) श्रेष्ठ वधू के समान कर दिया (ग्रीष्म ऋतु तथा नव-विवाहिता वधू एक सी जँचने लगीं)।

स्त्री-पक्ष में :—जिसके मिलते ही घर (में) रति-सुख अधिक हो जाता है (और) थोड़ा सा वस्त्र फैलाकर डाल दिया जाता है (नव-वधू आने पर घर के दरवाज़े पर छोटा सा वस्त्र डाल दिया जाता है; घर में परदा डालने की आवश्यकता पड़ती है)। जिसके आते ही चंद्रमा अच्छा नहीं लगता (अर्थात् जो चंद्रमा से भी सुन्दर है); प्यारी (के) सुखदायक लोचनों की छाया (की) इच्छा होती है (मन में यही इच्छा रहती है कि इसकी कृपा-दृष्टि सर्वदा बनी रहे)। पति, अब नित्य, जिसके लाल हाथों (को) पाकर (तथा) जिसके उत्तम साहचर्य (साथ) को पाकर सुखी है (उसके साथ रहने में पति को अत्यंत सुख का अनुभव होता है)।

ग्रीष्म-पक्ष में :—जिसके मिलते ही (आते ही) सुख समाप्त हो जाता है, घर में नहीं (मिलता है) (अर्थात् गरमी के कारण अब घर में चैन नहीं पड़ती है), शरीर (के) वस्त्र को फैलाकर डाल देते हैं (जिससे कि पसीने से तर वस्त्र सूख जायँ)। जिसके आते ही चंदन अच्छा लगता है, नेत्रों के (लिए) प्रिय, सुखदायक छाया (की) इच्छा होती है (अर्थात् नेत्र अब धूप देखना पसन्द नहीं करते, उन्हें छाया देखने की इच्छा होती है)। ग्रीष्म के (सूर्य की) अरुण किरणों (को) पाकर पृथ्वी तपती है ('अवनि तपति'), जिसके संयोग को पाकर रसीली (वस्तुएँ) सूखी हुई (हो गई हैं) (गरमी के कारण रसयुक्त वस्तुएँ शुष्क हो जाती हैं)।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप।

(८८)

अर्थ :—सेनापति 'प्यारी' का वर्णन करते हैं अथवा 'कुप्यारी' का; (अपने) वचनों (के) पेच (से) (दोनों को) समान ही करते हैं (अपनी पेचीदी वाणी के बल से दोनों को एक सा कर दिखाया है, प्रिय तथा अप्रिय स्त्री को एक ही कवित्त में वर्णित किया है)।

प्रिय स्त्री के पक्ष में :—रूप देखते ही हृदय के समस्त रोगों ('गद') (को) हर लेती है (जिसकी ओर देख देती है उसके समस्त रोग दूर हो जाते हैं), (बड़ा) सुन्दर शूल है, कुछ कहते नहीं बनता (उसका सुन्दर स्वरूप लोगों के हृदय में भाला चुभने की सी पीड़ा उत्पन्न करता है, लोग उसके सौंदर्य

को देखकर विह्वल हो जाते हैं)। देवांगनाओं (का सा) स्वरूप (है), इसी कारण जो स्त्री पति को भातो है (अच्छी लगती है), जिसके मुख की ओर देख ही देती है वह (अपने) मन (में) (उसे) वरण कर लेता है। (उसे) देखते ही रसिक (व्यक्ति) के हृदय में कामोद्दीपन होने लगता है, (उसके) शरीर (का) तारुण्य देखने से चित्त उसमें रत (हो जाता) है (सहृदय पुरुष उसके यौवन को देखने से ही उससे प्रीति करने लगते हैं)।

अप्रिय स्त्री के पक्ष में :—देखने से गधी का समस्त रूप हर लेती है (अत्यंत कुरूपा है), (बड़ा) अच्छा शूल है, कुछ कहते नहीं बनता (स्त्री ऐसी कुरूपा है कि उसकी चितवन भाले के चुभने की सी पीड़ा उत्पन्न कर देती है)। (उसके) अंग (में) सौंदर्य नहीं (है) ('अंग ना स्वरूप'), इसी से जो स्त्री नहीं भाती (देखने में अच्छी नहीं लगती), जिसका मुख देख लेती है (जिसकी ओर ज़रा भी देख लेती है) वह मन (ही मन) जलने लगता है (उसका कुरूप देखते ही लोग जल उठते हैं)। देखते ही सहृदय (व्यक्ति) के चित्त में नहीं आती (सरस व्यक्ति की नज़रों में वह नितांत तुच्छ लगती है), तरु (की) नाप (वाला) शरीर ('तरु नापौ तन') देखने से चित्त उतर जाता है (अर्थात् वृक्ष की भाँति लंबी होने के कारण बहुत बेढँगी जँचती है, लोगों को बहुत अप्रिय लगती है)।

अलंकार :—श्लेष, अतिशयोक्ति।

(८९)

शब्दार्थ :—धनी=पति। बहसि=१ बाज़ी लगा कर २ कलह कर। भावती=भाने वाली, प्रियतमा। सेज=बराबरी।

अर्थ :—सेनापति आश्चर्य के वचन कहता (है); देखो अप्रिय स्त्री प्रियतमा की बराबरी करती है (प्रिय स्त्री के वर्णन में ही अप्रिय स्त्री का वर्णन मिलता है)।

भावती-पक्ष में :—चन्द्र-मुखी समस्त दिन सुख ('कल') करती है; हृदय (के) प्रण को पाकर सीधी हो जाती है (अभीष्ट वस्तु को पा जाने पर सीधी हो जाती है)। अब (जिसका) सौंदर्य देखते ही मनुष्य (के) मन को अच्छा लगता है; जो (बात) हृदय में अड़ती है (हृदय को कष्ट पहुँचाती है) (उसे) कभी

नहीं करती (है); (उसकी) शोभा देखने के (योग्य) है, स्त्री एक काम के भी (करने योग्य) नहीं है (अर्थात् वह इतनी सुकुमार है कि उससे कोई काम-काज नहीं हो सकता); पति से (प्रेम की) बाज़ी लगा कर (प्रीति कर) उत्साह पूर्वक उसका आलिंगन करती है।

अन भावती-पक्ष में :—कलमुँही ('करमुखी') समस्त दिन (और) रात ('द्यौस निसा') झगड़ा ही किया करती है; जूते ('पनही') खाकर सीधी पड़ जाती है। प्रियतम को ('रमन कौं') अब (जिसका) सौंदर्य देखने से नहीं अच्छा लगता(है); (स्त्री) जिस बात के लिए हृदय में हठ कर लेती है (उसे) कभी नहीं करती (अर्थात् यदि उसने कह दिया कि मैं अमुक कार्य नहीं करूँगी तो फिर उस काम को वह कदापि नहीं करेगी, कहने-सुनने का उस पर कुछ भी असर न होगा)। (जिसकी) शोभा देखने से (यह स्पष्ट हो जाता है कि वह) किसी काम की नहीं है; पति से झगड़ा कर (उस पर) लग पड़ती है (अर्थात् पति की मरम्मत करती है)।

अलंकार :—श्लेष।

(९०)

शब्दार्थ :—नागा=१ अंझा, किसी काम को नियमित रूप से करने के बाद कुछ समय के लिए बन्द कर देना २ दूषित, बुरा। हरि=१ विष्णु २ सिंह। सूली=१ शिव २ फाँसी।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) महान् सिद्ध मुनियों (के) यश की वाणी (ऐसी है) (कि) उसे सुन कर चोर भय के मारे मरे जाते हैं।

मुनि-पक्ष में :—घर से निकल कर (परिवार का त्याग कर) कामदेव ('मार') (को) पकड़ कर मारते हैं (कामदेव पर विजय प्राप्त करते हैं); मन में निर्भीक (होकर) वन (तथा) तीर्थ (आदि) घूमा करते हैं। संतों के मार्ग (में) पड़ते (हैं) (संतों की रीति-भाँति का आचरण करते हैं), सर्वदा ही कुश लेकर चलते (हैं); दूसरे (का) धन हरने की इच्छा नहीं करते हैं। कर्मों का नागा करते हैं (कर्मों का करना ही त्याग देते हैं क्योंकि बिना इसके मुक्ति का मिलना कठिन है), बाद को (संसार से) अदृश्य होकर (अंतर्ध्यान होकर) वे (या तो) विष्णु में लीन हो जाते हैं अथवा शिव में लीन हो जाते हैं।

चोरों के पक्ष में :—घर से निकल कर मार्ग में ही ('मारगहि') मार डालते हैं (लोगों को लूट-लाट कर उन्हें समाप्त कर देते हैं); मन में निर्भीक (होकर) वन (तथा) तीर्थों (आदि) (में) घूमा करते हैं। संतों का मार्ग रोकते हैं; सदा ही बुरे मार्ग ('कुसैलै') में चलते हैं: दूसरों (के) धन (को) हर लेने का उपाय ('साधन') करते हैं। वे छिप कर बुरे कर्मों को करते हैं, पीछे सिंह (के मुख) में पड़ जाते हैं अथवा फाँसी पर चढ़ जाते हैं (या तो वन में घूमते-घूमते हठात् सिंह आदि से भेंट होने पर उनका जीवन-दीप बुझ जाता है अथवा कहीं चोरी में पकड़े जाते हैं और फाँसी पा जाते हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

(९१)

इस कवित्त में एक ओर स्त्री का मान वर्णित है, दूसरी ओर रति का वर्णन है। किंतु दोनों पक्षों के अर्थों में विशेष भिन्नता नहीं जान पड़ती है।

(९२)

शब्दार्थ :—ईस=शिव। अलकैं=१ (कुबेर की) अलकापुरी को २ हठ कर ('अल कैं' अथवा 'अर कैं')। दच्छिन=१ दक्षिण दिशा २ वह नायक जिसका प्रेम अपनी समस्त नायिकाओं पर समान रूप से हो। ईठ=१ प्रिय २ मित्र। निधि=कुबेर के नौ प्रकार के रत्न—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील तथा वच्च। बास=१ निवासस्थान २ वस्त्र।

अवतरण :—एक पक्ष में कोई व्यक्ति कुबेर की प्रशंसा कर रहा है, दूसरे पक्ष में नायिका कृष्ण के विलंब करके आने पर उन्हें उलाहना दे रही है।

कुबेर-पक्ष में :—आप शिव (के) पर्वत (हिमालय) में ही अलकापुरी को बसा कर रखते हो (और) उधर ही प्रीति रखते हो। वे लोग धनी हैं (धनी हो जाते हैं) जिनकी आशाओं (को) तुम पूर्ण करते हो, तुम सर्वदा दक्षिण दिशा की गति (का) त्याग किए रहते हो (दक्षिण दिशा की ओर कभी नहीं जाते हो)। सेनापति (कहते हैं कि) हे प्रिय ! तुम्हारी दृष्टि एक सी नहीं (रहती) है, सब (लोगों को) दो ढंगों (से) देखते हो (अर्थात् एक मनुष्य को तुम पहले धनी कर देते हो, किंतु कुछ काल बाद उसे ही दरिद्र कर देते हो। इससे स्पष्ट है कि तुम सब को दो दृष्टियों से देखते हो)। 'नील' (रूपी) निधि धारण

करते हो (रखते हो); (अपना) निवासस्थान उत्तर (में) रखते हो; हे कुबेर! (तुम) आए हो, (तुम) अतुल संपत्ति (के) स्वामी हो।

कृष्ण-पक्ष में :—स्वयं मैंने शिव से ('ईस सै') हठ कर (अर कै) (तुम्हें) प्राप्त किया (है), (किंतु) तुम वहाँ (अन्य स्त्रियों का) पालन करते हो (और) (उनसे) प्रीति मानते हो (हमारे परिश्रम की कुछ भी परवाह न कर तुम अन्य स्त्रियों में अनुरक्त हो)। वे लोग धन्य हैं जिनकी इच्छा तुम पूर्ण करते हो, तुम सर्वदा दक्षिण (नायक) की गति (को) छोड़े रहते हो (अर्थात् तुम अपनी सब नायिकाओं पर समान कृपा नहीं करते हो)। सेनापति (कहते हैं कि) (हे) मित्र! तुम्हारी दृष्टि एक सी नहीं (रहती है), सभी से दो ढंगों से पेश आते हो (दक्षिण नायक के गुण तो तुम में हैं ही नहीं, अपनी नायिकाओं में से जिनको तुम प्यार करते भी हो उन्हें भी कुछ दिनों बाद भूल जाते हो। कभी उन पर कृपा करते हो तथा कभी उनसे रूठ जाते हो)। विभूति धारण करते हो (दिव्य शक्तियाँ रखते हो), नीला उत्तरीय वस्त्र (उपर्ना अथवा दुपट्टा) धारण करते हो; (हे कृष्ण!) (तुम) कुवेला (अर्थात् बहुत विलंब करके) आए हो, तुम अनेक स्त्रियों ('धन') के पति हो (तुम्हारी अनेक प्रेमिकाएँ हैं इसी से तुम विलंब करके आए हो)।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—'कुबेर'—ये रावण के सौतले भाई माने जाते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्होंने विश्वकर्मा से लंका बनवाई थी किंतु पीछे रावण ने इनसे लंका छीन ली और इनको वहाँ से निकाल दिया। इन्होंने बड़ी तपस्या के बाद ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने इन्हें इन्द्र का भंडारी बना दिया और उत्तर दिशा का राजा बनाया। यद्यपि ये देवता माने जाते हैं किंतु फिर भी इनकी पूजा नहीं होती है।

(९३)

शब्दार्थ :—गाँठि=१ गुत्थी, पेचीदी बात २ ईख में थोड़े-थोड़े अन्तर पर कुछ उभरा हुआ मंडल। परब=१ कथानक, वर्णन (जैसे महाभारत के पर्व) २ ईख में दो गाँठों के बीच का स्थान। पियूष=अमृत। स्रवन की=१ कान की २ श्रवण नक्षत्र की अर्थात् जिस समय श्रवण नक्षत्र हो उस समय की (श्रवण= अश्विनी आदि नक्षत्रों में से बाइसवाँ नक्षत्र)।

अर्थ :—आप के बोल माह (तथा) पूस (मास) की ईख के समान मधुर जान पड़ते हैं।

बोल-पक्ष में :—जो गुत्थियों (को) नहीं छोड़ते (सदा मर्म भरी बातों से युक्त रहते हैं) (अपने अभिप्राय को सीधे-सीधे न प्रकट कर व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं) तथा (जो) अनेक कथानकों से पूर्ण हैं (जिनमें अनेक प्रासंगिक घटनाओं का उल्लेख होता है); जैसे-जैसे आदि से अन्त तक (उनको कोई सुनता है) (वैसे-वैसे) अधिक आनंद की वृद्धि करते हैं (जैसे-जैसे उन पर विचार किया जाता है वैसे-वैसे वास्तविक रहस्य का पता चलता है)। (जो) नाना प्रकार की कल्पनाओं द्वारा रच कर सुसज्जित किए जाते हैं (तथा) भली प्रकार आदर से बोले जाते हैं; हृदय (की) जलन (को) शान्त करने वाले (हैं), हृदय (के) बीच शीतलता उत्पन्न करते हैं; सेनापति (कहते हैं कि) संसार (ने) जिनको रसीला (कहकर) वर्णित किया है (जिन्हें लोग मधुर संभाषण कहते हैं), हृदय में पित्त (का) प्रकोप बढ़ने पर (अर्थात् क्रोध उभड़ने पर) जिनके (प्रभाव) से नहीं ठहरता (ऐसे मधुर बोल हैं कि क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को हर लेते हैं)। (जिनके सुनने से) कानों की भूख (में) मानों अमृत बढ़ जाता है (अर्थात् जिन्हें एक बार सुन लेने से दुबारा सुनने के लिए कान लालायित रहते हैं)।

ईख-पक्ष में :—जो ग्रन्थियों (को) नहीं छोड़ते (जिनमें गाँठें हैं), (जो) अनेक पोरों से युक्त हैं; ऊपर से लेकर जैसे-जैसे नीचे की ओर (उनको चुहा जाता है) वैसे-वैसे (वे) अधिक रस बढ़ाते हैं (नीचे की ओर बहुत रसीले हैं)। (जिन्हें) (लोग) सँभाल-सँभाल कर छीलते हैं, भली प्रकार आदर से बोलते हैं (एक दूसरे से ईख चुहने का आग्रह करते हैं); (जो) तपन (को) हरने वाले है (और) हृदय में शीतलता (उत्पन्न) करते हैं। सेनापति (कहते हैं कि) संसार (ने) जिनको 'रसीले' (कह कर) वर्णित किया है (जिन्हें लोग अत्यंत रस-युक्त कहते हैं); पित्त (का) प्रकोप बढ़ने पर जिन (के) (प्रभाव से) नहीं ठहरता (अर्थात् जिनका सेवन करने से पित्त का प्रकोप शान्त हो जाता है)। (ईख चुहने से) श्रवण की भूख (में) मानों अमृत बढ़ जाता है (अर्थात् लोगों की पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है और उनको खूब भूख लगने लगती है)।

अलंकार :—श्लेष।

(९४)

शब्दार्थ :—छतियाँ सकुच=१ उसका वक्षस्थल संकुचित है (कसा हुआ है, उसमें ढीलापन नहीं है) २ उसका वक्षस्थल कुचों सहित है। पन=प्रण, हठ। बलमहिं पाग राखै=१ बल-पूर्वक अर्थात् कस कर पगड़ी धारण करता है (अपनी पगड़ी को कस कर बाँधता है) २ प्रियतम को अनुरक्त रखती है। खन=क्षण।

(९५)

शब्दार्थ :—तिमिर=१ अज्ञान २ आँखों में धुंधला दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि आँखों में होने वाले विकार। वेदन=१ वेदों ने २ वैद्यों ने। वीच=१ तरंग २ मध्य। मंजन=स्नान।

अर्थ :—गंगा-स्नान के पक्ष में—(हृदय के) मैल को घटाता है, महान् अज्ञान (को) नष्ट करता है, चारो वेदों (ने) वताया है (कि गंगा-स्नान) उत्तम दृष्टि को बढ़ाता है (गंगा-स्नान से अंतर्दृष्टि खूब स्वच्छ हो जाती है)। (गंगा का) शीतल सलिल (जल) पानी (में) सने हुए कपूर के समान (है) (अर्थात् गंगा-जल इतना शीतल है जितना पानी में पिसा हुआ कपूर), सेनापति (कहते हैं कि) पिछले जन्मों (के) पुण्यों के कारण ही मिला है (पूर्व-संचित अच्छे कर्मों के फल-स्वरूप ही गंगा-स्नान का सौभाग्य प्राप्त हुआ है)। (गंगा का महत्व) मन (में) कैसे आ सकता है (उसकी महिमा हृदयंगम नहीं की जा सकती है), (वह) आश्चर्य उत्पन्न करती है, (अपनी) तरंग (को) फूलों (से) सुशोभित करती है (मानों उसने) पीला वस्त्र धारण किया हो. (पीले-पीले पुष्प गंगा में बहते हुए देख ऐसा जान पड़ता है मानों गंगा जी ने पीला वस्त्र धारण किया हो)। संसार (के) दुःखों (को) नष्ट करने को (जन्म-मरण आदि के दुःख से निवृत्त होने को), (तथा) परब्रह्म के देखने को गंगा जी का स्नान अंजन के समान बनाया गया है (अर्थात् जिस प्रकार अंजन के लगाने से आँखों की ज्योति बढ़ जाती है और सांसारिक वस्तुएँ भली प्रकार दिखलाई पड़ती हैं वैसे ही गंगा-स्नान से संसार द्वारा मुक्ति मिल जाती है और ब्रह्म के दर्शन मिलते हैं)।

अंजन-पक्ष में :—(आँखों के) मैल को छाँटता है, महान् तिमिर (को) मिटाता है, उत्तम दृष्टि को बढ़ाता है, चार वैद्यों ने (भी) (यही) बतलाया है। कपूर (से) सम (मात्रा में), प्रीति ('रस') (से), शीतल जल (में)

सना हुआ है, सेनापति (कहते हैं कि) पूर्व-जन्म (के) पुण्य से ही (ऐसा अंजन) मिला है। (इसका महत्व) कैसे समझ (में) आए, (यह) आश्चर्य उत्पन्न करता है; (आँख के) बीच (की) फूली तक बहा देता है ('रसावै') (अन्य विकारों को नष्ट करने के साथ ही साथ आँख की फूली को भी धीरे-धीरे बहा देता है), तथा पीतल (के) बरतन में रक्खा गया है।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा।

(९६)

शब्दार्थ :—रोजनामे=रोज़नामचे (रोज़नामचा=वह बही जिसमें नित्य-प्रति का हिसाब-किताब अथवा रोज़ का किया हुआ काम दर्ज किया जाता है)। सेस=१ शेषनाग २ जमा से खर्च घटा देने के बाद तहबील में जो बाक़ी बच जाय। पुर=१ लोक, भुवन २ नगर, शहर। कोठा=बड़ी कोठरी, भांडार। सुरति=स्मरण, सुधि, चेत। बानियै=१ वाणी से, अपनी कविता द्वारा २ बनिये को। हुंडी="वह पत्र या काग़ज़ जिस पर एक महाजन दूसरे महाजन को, जिससे लेन-देन का व्यवहार होता है, कुछ रुपया देने के लिए लिखकर किसी को रुपए के बदले में देता है। चेक।"

अर्थ :—राम-पक्ष में—जिसके रोज़नामचे (को) शेषनाग (अपने) सहस्र मुखों (से) पढ़ते हैं; यद्यपि (वे) उत्तम बुद्धि के सागर हैं (बड़े बुद्धिमान् हैं), (तथापि) (वे) पार नहीं पाते (शेषनाग भी राम के गुणानुवाद करने में समर्थ नहीं हैं)। कोई महापुरुष जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचता; आकाश (तथा) जल-स्थल (में) (वह) विचित्र गति वाला व्याप्त रहता है (ऐसा कोई स्थल नहीं है जहाँ राम व्याप्त न हों)। प्रत्येक लोक के लिए (उसके पास) असंख्य भांडार हैं; (आवश्यकता पड़ने पर वह) वहाँ स्वयं पहुँच जाता है, साथ में चेत-वाला (होशियार) साथी नहीं (रहता) (उसे अकेले ही समस्त लोकों की देख-भाल करनी पड़ती है, सहायता के लिए बहुत से सहायक रखने की भी आवश्यकता नही पड़ती)। जिसकी हुंडी कभी नहीं फिरती (जिसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं होता है, जिसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं), (उसे हम) वाणी द्वारा वर्णित करते हैं; वही सीता रानी का पति, सेनापति का महाजन है।

साहु-पक्ष में :—जिसके लेखे (रोजनामचे) में (नित्य) सहस्रों (की) बाक़ी (निकलती है) (जिसकी तहबील में रोज हज़ारों रुपए बच रहते हैं); चाहे (कोई) उत्तम बुद्धि का सागर ही (क्यों न) हो, (उसका) मुख (लेखे को) पढ़ कर समाप्त नहीं कर पाता । कोई साहूकार जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचता। आकाश (तथा) जल-स्थल में (अर्थात् सर्वत्र) (वह) विचित्र गति वाला व्याप्त रहता है (सर्वत्र ही उस साहूकार की कीर्त्ति फैली रहती है) । प्रत्येक नगर के लिए (उसके यहाँ) असंख्य कोठियाँ बनी हुई हैं; वहाँ (वह) स्वयं पहुँच पाता है, साथ में होशियार साथी नहीं (रहता) (महाजन इतना बुद्धिमान् है कि बिना किसी सहायक के, वह स्वयं अपनी कोठियों में चला जाता है)। (हम) (उस) बनिए का वर्णन करते हैं जिसकी हुंडी कभी नहीं लौटती है ।

अलंकार :—रूपक-प्रधान श्लेष ।

विशेष :—हुंडी फिरना = जिसकी हुंडी पर महाजन रुपया न देना स्वीकार करे वह देवालिया समझा जाता है। किसी महाजन की हुंडी फिरना उसके लिए बड़े अपमान की बात समझी जाती है।

दूसरी तरंग

शृंगार वर्णन

(१)

अनियारे=नुकीले, पैने। ढरारे=किसी की ओर शीघ्र ही आकृष्ट होने वाले। सिरात है=शीतल हो जाता है।

(३)

हेति=संबंधी। सेनापति ज्यारी जिय की=सेनापति कहते हैं कि चितवन ही हृदय की दृढ़ता है। इसी को देख कर हृदय में साहस रहता है।

(४)

कोट=दुर्ग, क़िला। तमसे=पापी। तरल=चंचल।

(६)

किसलय=नया निकला हुआ पत्ता। झाँईं=परछाँईं। अलकत (सं० अलक्त)=लाख का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं; महावर। झाँईं नाहिं जिनकी धरत...इ०=महावर चरणों की स्वाभाविक ललाई को नहीं पा सकता है। दिनकर-सारथी=सूर्य का सारथी अरुण (लालिमा)। आरकत (सं० आरक्त)=लाल। आसकत=लुब्ध, मोहित।

(७)

कालिंदी की धार निरधार है अधर=नायिका के खुले हुए केश ऐसे जान पड़ते हैं मानों अंतरिक्ष में निराधार यमुना की धारा लटक रही हो। गन अलि के धरत......लेस हैं=भ्रमरों के समूह केशों की थोड़ी सी सुन्दरता भी नहीं रखते हैं। अहिराज=शेषनाग। सिखंडि=मयूर की पूँछ। ईन्द्रनील कीरति कराई नाहिं ए सहैं=नीलम के कालेपन की कीर्त्ति को ये नहीं सहते हैं अर्थात् नीलम से भी अधिक काले हैं। हिय के हरष-कर=हृदय को प्रसन्न करने वाले। सटकारे=चिकने और लंबे।

(८)

जोबनवारी=यौवन वाली। ही=थी। बन वारी=वन में रहने वाली। बनवारी=कृष्ण। तेरी चितवनि ताके......बनिता के=ताकने पर (देखने पर) तेरी चितवन स्त्री के चित्त में चुभ गई। बनि=बन-ठन कर, सज-धज कर। मया=प्रेम। निकेतन की=घर की। मीनकेतन=कामदेव। अनवरत=लगातार। बरत=व्रत, संकल्प। वाके और न बरत=तुझे छोड़ उसे और किसी के पाने की इच्छा नहीं है। नव रत=नया प्रेम।

(९)

हवाई=१ हवा २ बान, एक प्रकार की आतशबाज़ी। लागति=१ लगती है २ जलाती है। सेनापति स्याम तुव आवन अवधि-आस...सहाई है=तुम्हारे आने की अवधि की आशा ने सहायक होकर बहुत दुःख दिया है। तुम्हारे आने की आशा से पहले तो कुछ सहायता मिली किंतु पीछे तुम्हारे न आने से मुझे बहुत व्यथा सहनी पड़ी। हम जाति अबलाई जहाँ सदा अ-बलाई है=हम अबला जाति की हैं, सर्वदा निर्बल रहती हैं। जो तुम लगाई...इ०=जिस अंग रूपी लता को तुमने जमाया था, जिसकी तुमने रक्षा की थी, उसी को कामदेव ने जला दिया है।

(१०)

कुंद से दसन धन=स्त्री के दाँत कुंद पुष्प के समान हैं। कुंदन=उत्तम सुवर्ण। कुंद सी उतारि धरी=स्त्री तोड़े हुए कमल के पुष्प के समान है।

(११)

रही रति हू के उर सालि=रति के हृदय में भी चुभ रही है; अपने सौंदर्य के कारण रति के हृदय में भी ईर्षा उत्पन्न करती है। दुरद=हाथी। भरपूरि=परिपूर्ण। पहिरे कपूर-धूरि=शरीर पर कर्पूर का लेप किए हुए है। नागरी=नगर में रहने वाली, प्रवीण स्त्री। अमर-मूरि=अमर कर देने वाली जड़ी। नागरी अमर-मूरि......इ०=कामदेव की पीड़ा से शान्ति देने के लिए स्त्री अमर-मूरि के समान है; वह काम-पीड़ा को नष्ट करती है। मृग-लंछन=चंद्रमा। मृग-राज=सिंह। मृगमद=कस्तूरी।

(१२)

अलक=मस्तक के इधर-उधर लटके हुए बाल। ओल="वह वस्तु या व्यक्ति जो दूसरे के पास जमानत में उस समय तक रहे, जब तब उसका मालिक

वा उसके घर का प्राणी उस दूसरे आदमी को कुछ रुपया न दे या उसकी कोई शर्त्त पूरी न करे", स्थानापन्न व्यक्ति। मैंनका न ओल जाकी...इ०=जिस स्त्री के अंग के हाव-भाव देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मेनका उसकी स्थानापन्न नहीं हो सकती है अर्थात् वह उसके बराबर नहीं है।

(१५)

कुल-कानि=वंश-मर्यादा। भरियत है=कठिनता से व्यतीत करती हैं। कानाबाती=कानाफूसी। कानाबाती हैं करत=नायक से प्रेम हो जाने की चर्चा एक दूसरे से करते हैं। घाती=घातक, संहारक। रंग=आमोद-प्रमोद।

(१६)

नैंन तेरे मतवारे.........इ०=तेरे मतवाले नेत्र मेरे मत के नहीं हैं, मुझसे सहमत नहीं हैं।

(१७)

लोयन स्रवन कौं=लोगों के कानों को। चेटक=जादू।

(१८)

प्रीति करि मोही.........इ०=पहले मुझसे प्रेम कर मुझे मोहित कर लेते हो किंतु बाद में मेरी इच्छाओं को अपूर्ण रख कर मुझे तरसाते हो। अरकसी=आलस्य।

(१९)

बिवि=दो। वैसौ करि नेह एक प्रान बिवि देह=तुमने पहले तो ऐसा प्रेम किया मानो हम दोनों दो शरीर धारण किए हुए एक ही प्राण रखते हों। ताते=गरम। सिराइहौ=शीतल करोगे। निरधार=निश्चय।

(२०)

अमरष=क्रोध। कीजै आस जाकी अमरष ताकौं मानियै=जिससे कुछ आशा की जाती है उसका क्रोध भी सहा जाता है (हम तुमसे प्रेम की आशा करती हैं इसी से तुम्हारे क्रोध को भी सहती हैं)।

विशेष :—अन्तिम चरण की गति बिगड़ी हुई है।

(२१)

मधियाती=मध्यवर्त्ती।

(२३)

सेनापति मानौं प्रानपति के दरस-रस........राख्यौ है=नायिका के नेत्रों से अश्रु-धारा बहने के कारण दोनों कुच जल-मग्न हो गए हैं; ऐसा जान पड़ता है मानो उसने प्रियतम के दर्शन पाने की इच्छा से शिव की दो मूर्त्तियों को जल-मग्न कर रक्खा है जिससे कि शिव जी पूजा से प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण कर दें।

(२४)

भई ही साँझी बार सी=सायंकाल हो चला था, संध्या हो गई थी। कहत अधीनता कौं......इ०=जिसके नेत्र प्रियतम से मिल कर हृदय की पराधीनता की सूचना दे देते हैं—नायिका के कामोतप्त होने का भेद प्रकट कर देते हैं तथा उसके लिए स्वयं सिफ़ारिश भी करते हैं। आरसी=शीशा। आर सी=अनी के समान।

(२५)

बिंब=कुँदरू।

(२६)

जलजात=कमल। पात=पाता है। पातकी=पापी। काम भूप सोवत सो जागत है=मुग्धा नायिका कामदेव से अनभिज्ञ होते हुए भी कुछ-कुछ परिचित होने लगी है। अथौत=अस्त हो रही है। झाँई=छाया, झलक। झाँई पाई परभात की=मुग्धा नायिका में शैशव रूपी रात्रि का अन्त हो रहा है तथा यौवन रूपी दिन का उदय हो रहा है; इस वयःसंधि के अवसर पर नायिका की छवि प्रभात काल की सी है।

(२७)

विरति=उदासीनता। परन-साला (सं० पर्ण-शाला)=पत्तों की बनी हुई झोपड़ी। पंचागिनि=एक विशेष प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करने वाला अपने चारों ओर अग्नि जला कर दिन में धूप में बैठा रहता है। संजम=इन्द्रिय-निग्रह। सुरति=ध्यान। सौक=एक सौ। जप-छाला=माला जपने के कारण पड़े हुए उँगलियों के छाले।

(२८)

जातरूप भूषन तैं और न सुहाति है=सुवर्ण के आभूषणों को पहनने से तेरे सौंदर्य की वृद्धि नहीं होती क्योंकि तेरा वर्ण सुवर्ण से भी अच्छा है।

(३०)

सयान=चतुराई ।

(३१)

जाउक=महावर । परतछ्छ=प्रत्यक्ष । अछ्छ=अच्छी प्रकार से । आरसीलै=अलसाए हुए । आरसी=शीशा ।

(३२)

नख-छत=नाखूनों द्वारा किया हुआ घाव। कहा है सकुच मेरी=मेरे लिए तुम्हें क्या संकोच होता है। खौरि=चंदन का टीका ।

(३६)

मृगमद=कस्तूरी। असित=श्याम वर्ण की ।

(३७)

नग मनी के=रत्न और मणियों के। जाके निरखत खन बढ़ै......इ०= जिसको देखते ही कामदेव हृदय में अधिक पीड़ा उत्पन्न करने लगता है, रति की इच्छा बढ़ जाती है तथा सुख बढ़ जाता है (समाप्त हो जाता है) ।

विशेष :—'बढ़ना' क्रिया का प्रयोग समाप्त होने के अर्थ में भी हुआ है ।

(४२)

लोल=चंचल। कलोल=तरंगें। पारावार=समुद्र। पटवास=वह वस्तु जिससे वस्त्र सुगंधित किया जाय ।

(४३)

अरग=अलग। अरगजा=कपूर, चंदन आदि द्वारा तैयार किया हुआ शीतल लेप। मार=कामदेव। प्रीतम अरग जातैं......मार कों=प्रियतम का वियोग है इसी से अरगजा से शीतलता नहीं होती और काम-ज्वर प्राण लिए लेता है। घनसार=कपूर। घन=लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं। सार=लोहा।

(४४)

हाला=मदिरा। हाला मैं हलाइ=मदिरा में मिला कर। हलाहल= भयंकर विष।

(४५)

कीजै ताही सौं सयान......इ०=जो चतुर कहलाती हैं, आप उन्हीं से चतुराई की बातें किया कीजिए।

(४६)

गंधसार=चंदन। हवि=वह सामग्री जिसकी हवन करते समय आहुति दी जाय। ऐन=बिलकुल, उपयुक्त। मैंन-रवि है=कामदेव रूपी सूर्य है। ही-तम=हृदय का अंधकार।

(४९)

तनसुख=एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा। सारी=साड़ी। किनारी=पाढ़। मंडल=वर्षा ऋतु में चंद्रमा के चारों ओर पड़ने वाला घेरा, परिवेश।

(५०)

काम-केलि-कथा=रति-क्रीड़ा का वर्णन। कनाटेरी दै सुनन लागी=कान लगा कर सुनने लगी है। केलि=खेल-कूद। लागी दिन द्वैक ही तैं......इ०=अज्ञात-यौवना नायिका भौंहों के चापल्य द्वारा अपने हर्ष को प्रकट करने लगी है।

(५२)

रवन=स्वामी। ताही एक राति उन.. ...पल कल गाए हैं=तुम्हारे गुणों को पल भर मधुर ध्वनि के साथ गाने पर उस रात्रि को नायिका थोड़ी देर के लिए सो सकी।

(५४)

गाइन=गवैया। ताल गीत बिन......अलापचारी है=गायक लोग अपना गीत प्रारंभ करने के पूर्व उस राग के स्वरों को भरते हैं जिसका गीत उन्हें गाना होता है। इसका उद्देश्य किसी राग-विशेष के स्वरूप को चित्रित करना होता है। इसे अलाप कहते हैं और इसमें गीत के शब्दों तथा ताल आदि का कोई बंधन नहीं रहता है। ऐसी अलापों में राग के शुद्ध-स्वरूप के दर्शन होते हैं। कृत्रिम शृंगारों से विहीन नायिका केवल अपने स्वाभाविक स्वरूप से इस प्रकार शोभित हो रही है जैसे किसी गायक की अलाप।

(५५)

इन्द्रगोप=बीरबहूटी।

(५७)

पोति=काँच की गुरिया।

(५८)

असोग=शोक-रहित, शुभ। जग-मनि=संसार में सर्वश्रेष्ठ। सो पैग से नापति है=ऐसे चलती है जैसे कोई डग नाप रहा हो, सँभाल कर क़दम रखती

जा रही है। लाइक=योग्य। सची सील-गति......इ०=उसका आचरण सच्चा है, उसमें बनावट नहीं है इसी से वह इन्द्राणी ('सची') सी जान पड़ती है। उन बाल-मति हारी निद्रा=उस नासमझ ने तुम्हारी निद्रा हर ली है। नाहिं नैंक रति......इ०=उसके हृदय में तुम्हारे प्रति थोड़ा भी अनुराग नहीं है इसी से तुम्हारे प्रस्ताव के उत्तर में 'नहीं' कह दिया करती है। न दरप धारौ......कीनी नव नति है=दूती रूठे हुए नायक को समझाती है कि नायिका एक तो नासमझ है दूसरे तुम्हारे प्रति उसके हृदय में कोई विशेष अनुराग भी नहीं है अतएव तुम्हें इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। हे प्रिय व्यक्ति! तुम अहंकार को छोड़ दो और सादर उसके यहाँ जाओ। नायिका का यौवन बढ़ती पर है, वह पूर्ण-यौवना हो रही है तथा उसने नया रुझान भी किया है अर्थात तुम्हारी ओर उसका ध्यान फिर से गया है इसी से तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए।

(५९)

जो सुख बरस की है=जो सुख की वर्षा करने वाली है, सुख देने वाली है। गूजरी=पैरों में पहनने का एक आभूषण। मनि गुजरी झनक=रत्न-जटित गूजरी की झनकार करते हुए। गूजरी=गूर्जरी जाति की स्त्री, ग्वालिन। बनक बनी=सजधज के साथ। नंद के कुमार वारी=कृष्ण वाली अर्थात् कृष्ण की प्रेमिका। वारी=वाला, कम उमर वाली। मारवारी=मारवाड़ी। नारि मार वारी है=कामदेव की स्त्री अर्थात् रति है।

(६४)

विलोचन=नेत्र। जोरावर=बलवान्। नेह-आँदू=स्नेह रूपी जंजीर। पंकज की पंक मैं.........मससान्यौ है=मेरे नेत्र प्रिय के कमल रूपी मुख की शोभा के कीच में जा फँसे। मैंने अपने मन रूपी हाथी को नेत्रों को निकाल लाने के लिए भेजा। किंतु मन भी प्रेम के फन्दे में उलझ गया। मैंने कमल रूपी मुख की शोभा के कीच में मन को हाथी के समान चलाया और उसे लौटाने का प्रयत्न किया। इसका फल यह हुआ कि अब तो नेत्रों के समेत मन भी उक्त कीच में धँस गया। तात्पर्य यह है कि अब मैं मन तथा नेत्र दोनों से ही हाथ धो बैठी।

(६५)

मल्हावति है=पुचकारती है। होरिल=नवजात बालक। पयपान=दुग्ध-पान।

(६९)

मानद=मान देने वाले। ही=थी। जाके बड़े नैंना बैनी=जिसके बड़े नेत्र बातचीत करने वाले हैं, हृदय के भाव को दूसरों पर प्रकट करने में समर्थ हैं। मैंना-बैनी=मैना पक्षी के समान बोलने वाली, मिष्टभाषी। सैना-बैनी सी करति है=नेत्रों के इशारों से बातचीत करती है।

(७०)

अंगना=अच्छे अंग वाली स्त्री, कामिनी। नाहै=पति को। अंगना=आँगन। बसुधा रति है=यह पृथ्वी की रति है।

(७१)

दरपक (सं० दर्पक)=कामदेव। ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है=तुझे पाकर वह तेरे पास इस प्रकार शोभित होगी जैसे कामदेव को साथ में लिए हुए रति शोभित होती है। अर पकरति है=हठ करती है। जातै सब सुखन की...... इ०=जाते ही समस्त सुखों की राशि अर्पित कर देती है।

(७२)

बागौ="अंगे की तरह का पुराने समय का एक पहनावा, जामा"। बागौ निसि-बासर सुधारत हौ.........सुरत हौ=खंडिता नायिका अपने पति से कहती है कि तुम सदा अपना बागा सम्हाला करते हो, रात्रि में उस स्त्री के यहाँ रह कर रति-क्रीड़ा करते हो। दै कै सरबस भरमावत हौ उनैं=उन्हें सब कुछ देकर गौरवान्वित करते हो। मेरौ मन सरबस.........इ०=झूठी बातें कह कर मेरे समस्त मन को भटकाया करते हो। सादर, सुहास, पन ता ही कौं करत लाल=आदर सहित प्रसन्नचित्त होकर उसके हृदय की इच्छाओं की पूर्ति करते हो। सादर सुहासपंन ताही कौं करत हौ=उसे समादृत कर उसी को प्रफुल्लित करते हो। मानौ अनुराग, महाउर कौं धरत भाल......धरत हौ=उसी का अनुराग मानते हो, उसी से प्रीति करते हो; मस्तक पर महावर लगाए हुए हो, ऐसा जान पड़ता है मानो यह उसके हृदय का ('उर कौं') महान् ('महा') अनुराग है जो तुमने धारण कर रक्खा है (प्रीति अथवा अनुराग का रंग लाल माना जाता है)।

(७३)

पारिन=पानी रोकने वाला बाँध या किनारा, मेड़। लागी आस-पास पारिन......जाति है=जलाशय के चारों ओर मेड़ बनी हुई है जो उसे चारों ओर

से घेरे हुए है। पंचबान=कामदेव। बैस वारी=उमर वाली। बनि=बन-ठन कर। ग्राम=संगीत में सात स्वर माने जाते हैं। इन सात स्वरों के समूह को ग्राम अथवा सप्तक कहते हैं। ग्राम तीन होते हैं—१ मंद्र, २ मध्य तथा ३ तार। सबसे ऊँचे स्वरों के सप्तक को तार सप्तक तथा सबसे धीमे स्वरों के सप्तक को मंद्र सप्तक कहते हैं। जिस सप्तक के स्वर न तो बहुत धीमे हों और न बहुत ऊँचे ही हों उसे मध्य सप्तक कहते हैं। तान=कई स्वरों को गीत से दुगनी अथवा तिगुनी लय में कह कर पुनः गीत के सम पर मिलने को तान लेना कहते हैं। रही ताननि मैं बसि... इ०=अनेक प्रकार की तानें लेने में तल्लीन है। ताल में कोई भूल नहीं करती है। तान समाप्त होने पर पुनः सम पर मिल जाती है। सेनापति मानौं रति, नीकी निरखत अति=सेनापति कहते हैं कि वह मानो रति है, देखने में अत्यंत सुन्दर है। सुरेस बनिता=इन्द्र की स्त्री सची।

(७४)

भासमान=द्युतिमान्। सोभत हैं अंग भासमान बरनत के=वर्णन करने में द्युतिमान् अंग शोभा पा रहे हैं; नायिका का कान्तिमान् शरीर शोभित हो रहा है। कीव=इस शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभवतः यह 'की' तथा 'अब' को एक करके गढ़ लिया गया है। 'कवित्त रत्नाकर' में इस प्रकार के कुछ अन्य शब्द भी पाए जाते हैं—जौब (जौ+अब), तेब (ते+अब)। ताकी तरुनाई......बरनत के=अब नायिका की युवावस्था तथा उसकी निपुणाई आदि का वर्णन उसकी अर्थात् नायक कृष्ण की सभा में समान रूप से हुआ—सब ने समान रूप से उसके रूप तथा गुण की प्रशंसा की। पेंचन ही=युक्तियों द्वारा ही। बल्लभा=प्रिय स्त्री। पाए फल वल्लभा, समान बर न तके=अपने परिश्रम के फल-स्वरूप कृष्ण ने प्रिय स्त्री को प्राप्त किया; देखने पर कोई दूसरी स्त्री उसके समान श्रेष्ठ नहीं है। बहुत खोजने पर भी नायिका के समान रूपवती स्त्री नहीं देखी जाती है। दिन दिन प्रीति नई........बरन तके=नायक-नायिका की प्रीति बढ़ती ही गई; नायिका के बाँई ओर सुशोभित होने के कारण कृष्ण के वाम भाग की कान्ति अनुपम हो गई; वर्ण को देखने पर वह नायिका की कान्ति के समान प्रतीत होती है अर्थात् कृष्ण तथा नायिका का वर्ण एक ही प्रकार का है।

तीसरी तरंग

ऋतु वर्णन

(२)

धीर=मंद। सत=सैकड़ों।

(३)

कुटज=एक जंगली पेड़ जिसके पुष्प बड़े सुन्दर होते हैं। घन =बहुत अधिक। चंपक=चंपा। फूल-जाल=पुष्पों के समूह। आछे अलि अछर=सुन्दर भौंरे अक्षरों के समान जान पड़ते हैं। जे कारज के मित्त हैं=भौंरे मतलब के साथी हैं; मकरंद के लोभ से ही वहाँ एकत्रित हुए हैं। कागद रंगीन मैं.........कवित्त हैं= विविध वर्णों के पुष्पों पर बैठी हुई भौंरों की पंक्ति को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो चतुर वसंत ने, रंगीन कागज़ पर, कामदेव रूपी चक्रवर्त्ती राजा के पराक्रम को वर्णित करने वाले कवित्त लिख दिए हों।

(४)

केसू=टेसू, पलाश। बिसाल=सुंदर और भव्य। संग स्याम रंग...इ०= टेसू के पुष्प गुच्छों में फूलते हैं। ये गुच्छे घुंडियों से निकलते हैं। घुंडियों का रंग गहरा कत्थई होता है, किंतु दूर से देखने पर काला जान पड़ता है इसी से कवि ने 'संग स्याम रंग भेंटि' लिखा है। टेसू के पुष्प काली घुंडियों के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो उनका एक सिरा स्याही में डुबो दिया गया हो। आधे अन-सुलगि... परचाए हैं=लाल लाल पुष्प काली घुंडियों तथा पुष्पों पर बैठी हुई भ्रमरावली के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेव ने वियोगियों को जलाने के लिए क्वैला सुलगाया हो। लाल पुष्प क्वैलों के जले हुए अंश से जान पड़ते हैं तथा काली घुंडियों के गुच्छे बिना जले हुए क्वैलों के सदृश प्रतीत होते हैं।

(५)

सेनापति साँवरे की......बिहाल है=फूला हुआ रसाल प्रिय की मूर्त्ति की प्रीति ('सुरति') का स्मरण करा कर वियोगियों को बेचैन कर डालता है। दछिन-पवन=

मलयानिल। ऐतीं ताहू की दवन=प्रिय के विदेश में होने के कारण मलयानिल भी इतनी गरम जान पड़ती है। प्रबाल=मूँगा। जऊ=यद्यपि। साल=वृक्ष। जऊ फूले और साल—इ०=यद्यपि प्रवाल आदि अन्य अनेक वृक्ष फूले हुए हैं किंतु रसाल (आम) हृदय को सालने वाला है (छेदने वाला है अर्थात् पीड़ा पहुँचाने वाला है) ('रसाल' से प्रिय का स्मरण हो आता है इसी से वह विशेष दुखदाई है)।

(६)

विराव=कलरव। सुरत-स्रम-सीकर सुभाव के=रति के परिश्रम से उत्पन्न स्वाभाविक पसीने की बूँदें। अनुकूल=विवाहित स्त्री में ही अनुरक्त रहने वाला नायक। सीसफूल=शिर पर पहनने का एक आभूषण। पाँवड़ेऊ=वस्त्र आदि जो आदर के लिए किसी के मार्ग में बिछाया जाय।

(७)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५९।

(८)

मनी=अहंकार। राचैं=रंग जाते हैं, अनुरक्त हो जाते हैं।

(९)

अच्छिन=शीघ्रता पूर्वक।

(१०)

तल=नीचे का भाग। ताख=आला। जल-जंत्र=फौहारे आदि की भाँति के जल के यंत्र। सुधा=चूना। ऊँचे ऊँचे अटा......इ०=ऊँचे महलों को चूने से पोता कर दुरुस्त कर रहे हैं। सार=उत्तम, श्रेष्ठ। तार=बहुत अच्छा मोती। सार तार हार......इ०=उत्तम मोतियों की मालाओं को मोल लेकर रख रहे हैं। सीरे=शीतल।

(११)

बृष कौं तरनि=बृष राशि के सूर्य। तचति धरनिं=पृथ्वी तपती है। झरनि=ताप। सीरी=शीतल। पंथी=पथिक। पंछी=पक्षी। नैंक दुपहरी के ढरत=दोपहर के थोड़ा ढलने पर अर्थात् लगभग दो बजने पर। धमका=ऊमस। होत धमका विषम...खरकत है=ऐसी विकट ऊमस होती है कि कहीं पत्ती तक नहीं हिलती। मेरे जान पौनौं......वितवत है=मेरी समझ में ग्रीष्म की भीषण ताप से थक कर हवा भी किसी शीतल स्थान में बैठ कर एक घड़ी के लिए विश्राम कर रही है।

विशेष :—'धमका' के स्थान पर अनेक स्थानों में 'घमका' शब्द का प्रयोग सुना जाता है किंतु 'कवित्त रत्नाकर' की समस्त पोथियों में 'धमका' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। अतएव इस शब्द को इसी रूप में रक्खा गया है।

(१२)

दिनकर=सूर्य। लाग्यौ है तवन=तपने लगा है। भूतलौ=पृथ्वी को भी। मानौं सीत काल'''धराइ कै=भीषण गरमी के कारण शीतलता केवल तहखानों में मिलती है; मानो विधाता ने शरद ऋतु में शीत रूपी लता के जमाने के लिए पृथ्वी के भीतर, बीज रूप में, थोड़ी सी ठंढक रख छोड़ी है, जैसे किसान अन्न के बीज को पृथ्वी में गाड़ कर रखते हैं। ब्रह्मा ने भविष्य के विचार से ही तहखानों में थोड़ी ठंढक बचा रक्खी है जिसमें शीत का अस्तित्व ही संसार से न उठ जाय।

(१४)

उसीर=खस। बाम=स्त्री। सोइ जागे जानैं......कहत हैं=गरमी के दिनों में बहुत अधिक सो जाने के बाद कभी कभी जब गोधूली के लगभग नींद खुलती है तो बहुधा सोने वाले को ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो सबेरा हो गया हो। दूसरे दिन के भ्रम से प्रातःकाल किए गए कार्यों को वह पिछले दिन का समझने लगता है; जिन बातों को उसने अभी सबेरे ही किया था उनके संबंध में इस प्रकार कहता है जैसे उन्हें कल किया हो।

(१५)

भार=भाड़। व्योम=आकाश। आतताई=आग लगाने वाला। पुट-पाक=किसी धातु आदि की भस्म बनाने के लिए वैद्य लोग उसे मिट्टी के मुँहबन्द बरतन में रख कर आग में पकाते हैं। पुट-पाक सौं करत है=ग्रीष्म की भीषण गरमी पड़ रही है, मानो जेठ सारे संसार का पुट-पाक सा बना रहा है।

(१६)

तापकी=ताप वाला। मानौं बड़वानल सौं......इ०=जेठ की ताप के कारण शरीर अग्नि के समान जल रहा है किंतु आषाढ़ के आगमन से शरीर में शीतलता का भी संचार होने लगता है। शरीर पर इन दोनों का संयोग एक ही समय देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्र बड़वाग्नि सहित जल रहा है।

(१७)

सैनी सरीक उसीर की=शीतल खस की टट्टियों की श्रेणी। पटीर=एक प्रकार का चंदन। छिरकी पटीर-नीर...इ०=स्थान स्थान की टट्टियाँ चंदन के कीच द्वारा छिड़की गई हैं।

(१८)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५३।

(१९)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५०।

(२१)

काम धरे बाढ़......इ०=कामदेव ने तलवार, तीर तथा जम-डाढ़ पर सान रक्खा है। गाढ़=संकट।

(२४)

वृष=१ वृषराशि २ बैल। भूत-पति=शिव। धनुष=१ धन राशि २ कमान। खग=१ सूर्य २ पत्ती। पोत=१ पारी २ पत्ती का छोटा बच्चा। कोविद=विद्वान्। गोत=समूह। धनुष कौं पाइ......पोत है=१ धन राशि में सूर्य तीर की भाँति शीघ्रता पूर्वक चला जाता है अर्थात् सूर्यास्त अत्यंत शीघ्रता पूर्वक हो जाता है। जब देखो तब रात ही है, दिन को अपनी पारी ही नहीं मिलती; सर्वदा रात्रि का ही प्रभुत्व दिखलाई देता है २ पत्ती धनुष को देख कर तीर से ऐसे भग जाता है मानो रात्रि हो रही हो और उसे अपना बच्चा न मिल रहा हो। यातैं जानी जात......इ०=ग्रीष्म तथा शीत ऋतु के इस महान् अन्तर को देख कर यह जान पड़ता है कि जेठ मास में सूर्य सहस्र-कर वाले रहते हैं किंतु पूस में वही सूर्य हजार चरणों वाले हो जाते हैं।

(२५)

पाउस=वर्षा ऋतु। अंत=दूसरी जगह, अन्यत्र। तरजत है=धमकाता है। लरजत तन-मन=मन तथा शरीर कामदेव के भय से काँपे जाते हैं। रंग=आमोद-प्रमोद। किलकी=बेचैनी, दुःख। केका=मोर की बोली। एकाके=(एकाकी) अकेला।

विशेष :—'कृपाउस'—'पाउस' के जोड़ पर कवि ने 'कृपाउस' लिख दिया है। इसी प्रकार अन्तिम पंक्ति में 'केका के' के जोड़ पर 'एकाके' रख दिया

है। शब्दालंकारों की अत्यधिक रुचि के कारण ब्रज भाषा के कवियों ने शब्दों के मनमाने रूप रख दिए हैं।

(२६)

कलापी=मोर। सीकर ते सीतल......इ०=वायु के झोंकों के कारण जल-बिन्दु शीतल लगते हैं।

(२७)

खगवारौ=गले में पहनने का एक गोल आभूषण, हँसली। त्रिविध बरन परयौ......इ०=वर्षा रूपी वधू, विविध आभूषणों से सुसज्जित होकर, सावन रूपी प्रियतम से विवाह कर रही है। त्रिविध (लाल, हरे तथा पीले) वर्णों से युक्त इन्द्र-धनुष ऐसा जान पड़ता है मानो वह, लाल तथा पन्ना (हरे रंग का) से जड़ी हुई सुवर्ण की खगवारो है, जिसे वर्षा रूपी वधू ने, अपने विवाह के अवसर पर, पहन रक्खा है।

(२८)

धीर=गंभीर। दरकी=विदीर्ण हो गई। सुहागिल=सौभाग्यवती स्त्री। छोह भरी छतियाँ=शोक से पूर्ण हृदय। बर की=प्रियतम की। डग भई बावन की......इ०=वामन अवतार में राजा बलि को छलते समय जिस प्रकार विष्णु भगवान् का डग बहुत विस्तृत हो गया था उसी प्रकार, विरह के कारण, श्रावण की रात्रि बहुत ही लंबी हो गई है।

(२९)

घनाघन=बरसने वाले बादल। सेनापति नैंक हू न......इ०=घोर अंधकार के कारण आँखें निश्चल हो जाती हैं। दमक=लौ। जीगनान की झमक=जुगनुओं की चमक। मानौं महा तिमिर तैं......इ०=काले मेघों के कारण इतना अंधकार है कि रवि, शशि तथा नक्षत्रों का कहीं पता नहीं मिलता। मानो घोर अंधकार के कारण, ये सब अपना अपना मार्ग भूल गए हों और इधर-उधर मारे-मारे फिरते हों। इन सबका कहीं पता तक नहीं लगता है।

(३०)

मयमंत=मद-मत्त। खाइ बिस की डरी......इ०=हे कृष्ण ! मैं विष की डली खाकर मर जाऊँगी क्योंकि तुम्हारे विरह के कारण मुझे घोर कष्ट हो रहा है।

(३१)

उनए=घिर आए। तोइ=जल। चारि मास भरि......इ०="पुराणों के अनुसार आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन विष्णु भगवान् शेष की शय्या पर सोते हैं और फिर कार्त्तिक की प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं"। प्रायः इन्हीं चार महीनों में वर्षा भी अधिक होती है। इसी के आधार पर कवि कहता है कि चौमासे भर मेघों के कारण इतना अंधकार रहता है कि श्याम निशा का भ्रम होने लगता है। इसी भ्रम में पड़ कर विष्णु भी चार महीने सोया करते हैं!

(३२)

उन एते दिन लाए=प्रियतम ने इतने दिन लगाए। सीकरन=बूँदें। तातै ते समीर......इ०=जो हवाएँ तुषार के समान शीतल हैं, वे भी, विरह के कारण, गरम लगती हैं। बिरह छहरि रह्यौ=बूँदें क्या पड़ रही हैं मानो श्याम का विरह है जो छितरा रहा है। प्रतिकूल=विरोधी। तन डारत पजार से=शरीर को जला डालते हैं। खन=क्षण।

(३४)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० १२।

(३६)

सारंग=मेघ। अनुहारि=आकृति।

(३७)

निकास=समाप्ति। बारिज=कमल। कास=एक प्रकार की लंबी घास। हरद=हल्दी। सालि=जड़हन धान। जरद=पीला, जर्द। दुरद=हाथी। मिट्यौ खंजन दरद=कहा जाता है कि गरमी से त्रस्त होकर खंजन पक्षी पहाड़ों पर चला जाता है और जाड़ों के आरंभ में उतरता है।

(३८)

दिगमंडल=संपूर्ण दिशाएँ। सृंग=चोटी। फटिक=काँच की तरह सफ़ेद रंग का पारदर्शक पत्थर। अडंबर=गंभीर शब्द। छिछकैं=छिड़कते हैं। छाछारे=छींटें। मानौं सुधा के महल=मानो चूने से पुते हुए महल हैं। तूल=रूई। पहल=धुनी हुई रूई की मोटी तह। रजत=चाँदी।

(३९)

पयोधर=१ बादल २ स्तन। रस=१ जल १ दुग्ध। उन्नत पयोधर वरसि रस गिरि रहे=१ जल-वृष्टि कर चुकने पर बड़े बड़े मेघ कन्तिहीन हो गए हैं, उनमें वर्षा ऋतु की सी शोभा नहीं रह गई है। २ उठे हुए स्तन दुग्ध की वर्षा करने के बाद अर्थात् बच्चों को अधिक दुग्ध पिलाने के बाद अब ढल गए हैं, उनमें पहले की सी शोभा नहीं रह गई है। कास=एक प्रकार की लंबी घास जिसमें सफ़ेद रंग के लंबे फूल लगते हैं। कुंभ-जोनि=अगस्त नक्षत्र। जोबन हरन......केस हैं=१ जल ('वन') का हरण करने वाले अगस्त नक्षत्र के उदय होने से वर्षा मानो वृद्धा हो गई है और स्थान स्थान पर फूले हुए कास मानो उस वृद्धा के श्वेत केश हैं। २ कलशाकार कुच यौवन की छवि को नष्ट करने वाले हैं; संतान उत्पत्ति की शक्ति छोड़ देने से ('जोनिउ दए तैं') अर्थात् विविध जीव-जंतुओं के उत्पत्ति की शक्ति न रहने से वर्षा वृद्धा के समान जान पड़ती है; फूले हुए कास मानो उसके श्वेत केश हैं।

(४१)

कलाधर=चंद्रमा। बढ़ती के राखे......इ०=ब्रह्मा ने चंद्रमा को संपूर्ण कलाओं का भांडार नहीं बनाया है। जितनी कलाओं से रात्रि की शोभा-वृद्धि होती थी, केवल उतनी ही कलाएँ उन्होंने चंद्रमा में रक्खीं। उनको भय था कि यदि चंद्रमा में अनेक कलाएँ हो गईं तो रात से दिन हो जायगा, रात कभी होगी ही नहीं। इसी विचार से उन्होंने कुछ कलाएँ चंद्रमा से निकाल लीं जिसके कारण चंद्रमा में कलंक दिखलाई पड़ता है।

(४२)

पीन=संपन्न, छवि-युक्त। अवनी रज=पृथ्वी की धूल। नीरज=कमल। अब नीरज है लीन=शरद ऋतु में कमलों का फूलना बन्द हो जाता है। राज हंस=एक प्रकार का हंस, सोना पक्षी। हिमकर=चंद्रमा। भा=प्रकाश, दीप्ति। दुहूँ समता है परसी=जिस प्रकार मेघ-रहित आकाश नीला दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार वर्षा ऋतु बीत जाने के कारण सरोवर का जल नीले वर्ण का हो गया है। वर्ण-साम्य तथा थोड़ा बहुत आकार-साम्य के कारण भी दोनों एक से जान पड़ते हैं।

(४३)

धूप=पूजा-पाठ के अवसर पर अथवा सुगंध के लिए कई गंधद्रव्यों (जैसे कपूर, अगर आदि) को जला कर उठाया हुआ धुआँ। धूप कौं अगर...... इ०=धूप देने के लिए अगर है तथा सुगंध के लिए सोंधा है। (सोंधा—एक प्रकार का सुगंधित मसाला जिससे स्त्रियाँ केश धोती हैं)।

(४४)

सूरै तजि भाजी......उतरति है=कार्त्तिक मास में हिमालय से बर्फ की 'सेना' उतरती चली आ रही है, इस बात को सुन कर गरमी सूर्य को छोड़ कर भाग खड़ी हुई। प्रचंड मार्त्तंड के आश्रय में भी उसने अपना कल्याण न समझा, इसी से उसे त्याग दिया। आए अगहन कीने गहन दहन हू कौं=अगहन मास में गरमी ने अग्नि ('दहन') को ग्रहण किया। कार्त्तिक मास से सूर्य की गरमी मंद पड़ने लगी, अगहन में लोगों को आग तापने की आवश्यकता पड़ने लगी। हूल=पीड़ा। दौरि गहि, तजी तूल=जब अग्नि की ताप भी मंद पड़ने लगी तो गरमी ने रूई का आश्रय ग्रहण किया; किंतु थोड़े ही समय बाद उसने उसे भी छोड़ दिया अर्थात रूई के वस्त्रों से भी लोगों की सर्दी कम न हुई। मूल=उद्गम-स्थान। कुच-कनकाचल=कुच रूपी सुमेर पर्वत। गढ़वै गरम भई.. ...लरति है=अनेक आश्रयों के ग्रहण करने पर भी गरमी जब अपने अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ न हुई तो उसने अपने उद्गम-स्थान की शरण ली। विविध उपायों द्वारा वैरी का सामना करने में असमर्थ होने पर जिस प्रकार राजा अपने गढ़ के अन्दर रह कर अपने वैरी का सामना करता है उसी प्रकार गरमी अपने कुच रूपी सुमेर पर्वत के गढ़ के अन्दर पहुँच कर शीत से सामना करती है।

विशेष :—इस कवित्त का अभिप्राय यही है कि हेमंत में 'कुच-कनकाचल' को छोड़ कर गरमी का कहीं पता नहीं मिलता। उक्त भाव अनेक कवियों की रचनाओं में पाया जाता है किंतु यहाँ पर उसे सुन्दर ढंग से व्यंजित किया गया है।

(४६)

केलि ही सौं मन मूसौ=क्रीड़ा-कौतुक द्वारा कंत के मन को ठगो; उसे अपने वश में कर लो। प्रात वेगिदै न होत=शीघ्रता पूर्वक सवेरा नहीं होता,

सूर्योदय जल्दी नहीं होता। होत द्रौपदी के चीर कैसौ राति कौं महत है=द्रौपदी की साड़ी की भाँति रातें लंबी हो जाती हैं, उनका अन्त ही नहीं होने आता। कहलाइ कै=पीड़ित होकर।

(४७)

दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमंकि...इ०=सूर्य, बिजली के समान, अपनी एक चमक-मात्र दिखला कर अस्त हो जाता है, वह इतनी जल्दी अदृश्य हो जाता है कि सरोवरों के कमल तक खिलने नहीं पाते !

(४८)

अराति=शत्रु। सीत पार न परत है=सर्दी से छुटकारा नहीं मिलता है। धन=१ धन राशि २ युवती। और की कहा है......परत है=शीत का ऐसा आतंक है कि सूर्य देव भी उसके आने पर धन राशि में आ जाते हैं (सूर्य के धन राशि में आने पर सर्दी अधिक पड़ती है; 'धन के पन्द्रह मकर पचीस' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है)। जब सूर्य ऐसे प्रतापी की यह गति है तो आपको तो निश्चय ही धन-विहीन (अपनी प्रेमिकाओं से विलग) न रहना चाहिए। आपको हमसे अवश्य मिलना चाहिए।

(४९)

मारग-सीरष=मार्ग-शीर्ष, अगहन मास। नीर समीरन तीर सम...... इ०=तीर के समान शीतल वायु के लगने से जल से बहुत बर्फ बन जाती है—पानी जम कर बर्फ हो जाता है। जन-मत सरसतु सार यहै=लोक-मत में इसी सिद्धान्त की वृद्धि होती है अर्थात् लोगों में यही विचार प्रचार पाता है। तपन=धूप। तूल=रूई। धन=स्त्री।

(५१)

बुखार=चारों ओर दीवार से घिरा हुआ कोठा जिसमें अन्न रक्खा जाता है, भांडार। पूर्वीय प्रान्तों में इसे प्रायः 'बखार' अथवा 'बखारी' कहते हैं किंतु बरेली आदि जिलों के आसपास 'बुखारी' के रूप में इसका प्रचार बराबर पाया जाता है। तुषार के बुखार से उखारत है=शिशिर बर्फ के भांडारों को उखाड़े डाल रहा है अर्थात बहुत बर्फ पड़ रही है। होत सून=शून्य हो जाते हैं। ठिरि कै=ठिठर कर। द्यौस=दिवस। बड़ाई=प्रशंसा। सहस-कर=सूर्य। सीत तैं सहस-कर......इ०=शीत से भयभीत होकर सहस्र-कर कहलाने वाले

सूर्य ऐसे भाग जाते हैं मानो वे सहस्त्र-चरण हों। तात्पर्य यह कि इतने प्रतापी होने पर भी सूर्य अत्यंत शीघ्रता पूर्वक अस्त हो जाते हैं।

(५२)

रवि करत न दाह, जैसौ अवरेखियत है=सूर्य में जिस उद्दंड ताप का होना प्राय: माना जाता है वैसा ताप अब उसमें नहीं रह गया है। माघ मास में उसकी किरणें पहले की सी प्रचंडता लिए हुए नहीं रहती हैं। छिन सौं न तातैं तनकौ बिसेखियत है =दिन बात कहते ग़ायब हो जाता है इसी से एक क्षण से अधिक, थोड़ी देर के लिए भी, विशेष रूप से प्रतीत नहीं होता। केवल क्षण भर ही दिन का अस्तित्व रहता है। कलप=कल्प; ४,३२०,०००,००० वर्ष का समय, जिसके व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है। सोए न सिराति=घंटों सोते रहने पर भी समाप्त होने नहीं आती। क्यौंहू= किसी प्रकार।

(५३)

पाइ=१ किरण १ पैर। पदमिनी=इस शब्द के श्लिष्ट होने के कारण इस कवित्त की प्राय: सभी पंक्तियों के दोहरे अर्थ निकलते हैं। एक ओर कमलिनी के विरह का वर्णन है दूसरी ओर विरहिणी नायिका का चित्रण है। सेनापति ऐसी पदमिनी कौं दिखाई नैंक......साध न बुझाति है=जिस कमलिनी ने माघ मास की सारी रात सूर्य के ध्यान में ही व्यतीत कर दी, उसे, निर्दय सूर्य, केवल थोड़े समय के लिए दर्शन देकर पुन: अस्त हो जाता है। कमलिनी को सूर्य के दर्शन इतने क्षणिक होते हैं कि वह पूर्ण रूप से विकसित ही नहीं होने पाती। प्रिय के दर्शन पाने पर उसका मन कुछ तो प्रसन्न होता है तथा कुछ अप्रसन्न क्योंकि प्रियतम (सूर्य) पुन: अंतर्ध्यान हो जाता है। कमलिनी की इस स्थिति को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो प्रिय के दर्शन के लिए उसके हृदय में अपार उत्साह भरा है।

विशेष :—विरहिणी के पक्ष में भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है।

(५४)

थिर-जंगम=स्थावर तथा जंगम। ठिरत है=ठिठर जाता है, सर्दी के कारण शरीर सिकुड़ जाता है। पैयै न बताई=वर्णित नहीं की

जा सकती। तताई=गरमी। आतताई=जुल्म करने वाला। छिति-अंबर घिरत है=पृथ्वी तथा आकाश, चारों ओर बर्फ छा जाती है। करत है ज्यारी......बैर सुमिरत है=हेमंत के आतंक से धूप अपने वास्तविक प्रखर स्वरूप को नहीं बनाए रह सकती, वह इतनी मंद पड़ जाती है जैसे चाँदनी। केवल चंद्रिका के रूप में ही वह अपने हृदय के साहस ('ज्यारी') को किसी प्रकार बनाए रहती है और बारंबार अपने वैरी (हिम) के वैर का स्मरण करती है, जिसके कारण उसकी ऐसी हीनावस्था हो गई है। छिन आधक फिरत है=सूर्य चंद्रमा का स्वरूप धारण कर दक्षिण की ओर भाग जाते हैं (सूर्य दक्षिणायन हो जाते हैं)। वे उत्तर की ओर जाने का साहस नहीं करते क्योंकि उत्तर में हिम का पर्वत (अर्थात् हिमालय) है। दक्षिण में भी वे केवल आधे क्षण रहते हैं। उन्हें, वहाँ भी, अधिक ठहरने का साहस नहीं होता।

(५५)

ताप्यौ चाहैं बारि कर........ऐसे भए ठिठराइ कै=लोग आग जला कर अपने हाथों को सेंकना चाहते हैं क्योंकि वे सर्दी के कारण बिलकुल ठिठर गए हैं, एक तिनका भी उठाने में समर्थ नहीं हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो वे अपने हैं ही नहीं, किसी दूसरे के हैं क्योंकि यदि वे अपने होते तो उनसे, इच्छानुसार, काम तो लिया जा सकता। दिनकर=सूर्य। गयौ घाम पतराइ कै=धूप हलकी पड़ गई है, उसका तेज जाता रहा। मेरे जान सीत के सताए सूर......छपाइ कै=सूर्य शीत ऋतु द्वारा इतने त्रस्त हो गए हैं कि उन्होंने अपनी किरणों को समेट कर आकाश में छिपा रक्खा है।

(५६)

भयौ झार पतझार=डालों के पत्ते एकदम गिर पड़े हैं। रही पोरी सब डार........सरसति है=वन की लताओं के पत्ते गिर पड़े हैं, पीली डालें वसंत रूपी प्रियतम के वियोग की सूचना दे रही हैं। निरजास (सं० निर्यास)=वृक्षों से आप से आप निकलने वाला रस। आसपास निरजास, नैंन नीर बरसति है=लताओं के तनों से जो गोंद बह रहा है वही मानो विरहिणी की अश्रु-वृष्टि है। मानहु बसंत-कंत......इ०=बन की लता मानो वसंत रूपी प्रियतम के दर्शनों के लिए तरस रही है।

(५८)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ३० ।

(६०)

चौरासी=आभूषण विशेष जो हाथी की कमर में पहनाया जाता है। चैरासी समान........बिराजति है=स्त्री कामदेव के मस्त हाथी के समान जान पड़ती है। जिस प्रकार हाथी की कमर में चौरासी शोभित होती है उसी प्रकार स्त्री की कमर में क्षुद्रघंटिका शोभायमान है। साँकर ज्यौं पग-जुग घुँघरू बनाई है=दोनों पैरों की घुँघरू हाथी के पैरों में पड़ी हुई जंजीर के समान जान पड़ती हैं। कुंभ=हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग। उच्च कुच कुंभ मनु=ऊँचे कुच मानो दोनों कुंभ हैं। चाचरि=होली के अवसर पर होने वाले खेल तमाशे तथा शोर-गुल। चोप करि=उत्साह पूर्वक। चपैं=दवाने से। चरखी=एक प्रकार की आतशबाजी जो छूटने के समय खूब घूमती है। मस्त हाथियों को डराने के लिए यह प्रायः उनके सामने छुटाई जाती है। सेनापति धायौ........चरखी छुटाई है=होली के अवसर पर नायिका को अपनी ओर दौड़ता हुआ देख, उसे कामदेव का मस्त हाथी समझ कर, प्रियतम ने उत्साह पूर्वक उसकी ओर पिचकारी चलाई। पिचकारी के चलने से ऐसा जान पड़ा मानो हाथी के सामने चरखी छुटाई गई हो।

(६१)

ओज=कान्ति। रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै=प्रिय का फेंका हुआ गुलाल नायिका के वक्षस्थल पर ऐसे शोभित हो रहा है मानो वह नायिका का अनुराग है जो झलक रहा है (अनुराग का वर्ण लाल माना जाता है)।

(६२)

मकर=माघ मास। पियरे जोउत पात=पत्ते पीले दिखलाई पड़ते हैं। माहौठि=महावट, जाड़े की झड़ी। सेनापति गुन यहै........इ०=माघ मास की सर्दी सभी को दुखदाई है। उसमें गुण केवल यही है कि मानिनियों का मान भंग हो जाता है। प्रेमी तथा प्रेमिका का पारस्परिक संमिलन हो जाता है।

चौथी तरंग

रामायण वर्णन

(१)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० १

(२)

कंज के समान सिद्ध-मानस-मधुप-निधि=कमल के समान सिद्ध पुरुषों के मन रूपी भौंरे की निधि। निधान=आश्रय। सुरसरि-मकरंद के=गंगा रूपी मधु के। भाजन=पात्र। रिषिनारी ताप-हारी=अहल्या का संताप दूर करने वाले, उसे शाप-मुक्त करने वाले। भरन=पालन करने वाले। सनकादि=ब्रह्मा के पुत्र। सरन=आश्रय।

(३)

भव-खंडन=जन्म-मरण के दुःख को नष्ट कर देने वाले अर्थात् मुक्ति देने वाले।

(४)

पंचबान=कामदेव। और ठौर झूँठौ बरनन एतौ सेनापति=लोग बहुधा कहा करते हैं कि राम करोड़ों सूर्यों से अधिक द्युतिमान् हैं, कामधेनु से भी अधिक दानी हैं......इत्यादि; किंतु इन बातों में कोई तथ्य नहीं क्योंकि राम इन सबसे भी बहुत बढ़ कर हैं।

(५)

दीपति-निधान=प्रकाश के आधार। भान=सूर्य। उकति=उक्ति। जुगति=युक्ति। जैसे बिन अनल....तीनि लोक तिलक रिझाइयै=जिस प्रकार दीपक में तेल के स्थान पर केवल जल भर कर तथा उस दीपक को अग्नि से बिना जलाए ही कोई व्यक्ति प्रकाश के भांडार सूर्य को रिझाना चाहे, उसी प्रकार सेनापति तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ राम को काव्य की कुछ उक्तियों तथा चमत्कारों द्वारा रिझाना चाहते

हैं। तात्पर्य यह है कि राम को काव्य की कुछ उक्तियों द्वारा प्रसन्न करने का प्रयत्न वैसा ही है जैसा सूर्य को जल का दीपक दिखा कर मोहित करना।

(७)

सारंग-धनुष कौं=शिव के धनुष (पिनाक) को। धाम=घर, आश्रय। रूरौ=सर्वोत्तम। पूरन पुरुष=माया से निर्लिप्त ब्रह्म।

(८)

चारि हैं उपाइ=राजनीति में शत्रु पर विजय पाने की चार युक्तियाँ—साम, भेद, दंड और दान। चतुरंग संपति=चार प्रकार की संपत्ति—भूमि, पशु (गोधन), विद्या तथा धन। चारि पुरुषारथ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। आगर=खान। उजागर=प्रसिद्ध। चारि सागर=क्षीर, मधु, लवण और जल। चारि दिगपाल=पूर्व में इन्द्र, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर तथा दक्षिण में यम, ये चार दिशाओं के पालन करने वाले माने जाते हैं।

(९)

पाँचौ सुरतरु=मन्दार, पारिजातक, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन*। लोकपाल=दिक्पाल—इन्द्र पूर्व का, अग्नि दक्षिण-पूर्व का, यम दक्षिण का, सूर्य दक्षिण-पश्चिम का, वरुण पश्चिम का, वायु उत्तर-पश्चिम का, कुबेर उत्तर का और सोम उत्तर-पूर्व का तथा ऊर्द्ध का ब्रह्मा और अधो का अनंत। बारह दिनेस=बारह राशियों के सूर्य।

(१०)

चापवान=धनुर्द्धारी। उपधान=सहायक। गाजत=गरजते हैं, शासन करते हैं।

(११)

नरदेव=राजा। ते=उस। सुधरमा=देव-सभा। विसेखियै=विशेष रूप से प्रतीत होती है।

(१२)

धरषित=अपमानित।

---

* पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥
(अमरकोश—प्रथम कांड, स्वर्ग वर्ग, श्लोक ५०)

(१५)

अगन=न चलने वाले, स्थावर। गगन-चर=देवता आदि आकाश मार्ग से चलने वाले। सिद्ध=एक प्रकार के देवता जिनका स्थान भुवर्लोक कहा गया है। चख, चित, चाहति हैं=नेत्रों से देखती हैं तथा चित्त से चाहती हैं (प्रेम करती हैं)। चन्द्रसाला=सब से ऊपर की कोठरी।

(१६)

हहरि गयौ=काँप गए। धीरत्तन मुक्किय=अपने शरीर के धैर्य को छोड़ दिया। धुक्किय=नीचे की ओर धँस गया। अक्खि=आँख। पिक्खि नहिं सकइ=देख नहीं सकती। नक्खिन लग्गिय=नष्ट होने लगे। उद्दंड=प्रचंड। चंड=बलवान्। निर्घात=बिजली की सी कड़क।

(१७)

नाकपाल=देवता। बानक=सज-धज। वनक=वर, दूल्हा। बानक बनक आई=सज-धज के साथ राम के समीप आई। झनक मनक=आभूषणों की झनकार करती हुई।

(१८)

ऐन=अयन, घर। इंदु=चंद्रमा। मानौं एक पतिनी के व्रत की.. ...अरपन की=राम से बढ़कर एक पत्नी में अनुरक्त रहने वाला दूसरा नहीं है तथा सीता पातिव्रत धर्म पालन करने में सर्वश्रेष्ठ हैं। दोनों ने स्वयंवर के अवसर पर एक दूसरे को अपना तन-मन अर्पण कर दिया। राम-सीता का मिलन देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो एकपत्नी-व्रत तथा पातिव्रत धर्म की दोनों सीमाएँ मिल रही हैं।

(१९)

मा जू महारानी कौं......इ०=कंकण खोलते समय सखियाँ राम से परिहास कर रही हैं। वे कहती हैं कि तुम अपनी माताओं तथा पिता को यहाँ बुलाओ और उनसे सलाह लो तब शायद यह कंकण खुल सके। अरुंधती के पिय=वशिष्ठ, जो कि सप्तर्षि मंडल का एक नक्षत्र है। इसके समीप के तारे का नाम अरुंधती है।

(२०)

वारि फेरि पियैं पानी=स्त्रियाँ बहुधा पानी की धार पृथ्वी पर डालती हुई किसी प्रिय व्यक्ति की परिक्रमा सी करती हैं तथा पुनः बचे हुए पानी को थोड़ा

सा पी लेती हैं। इसका अभिप्राय यह होता है कि उस प्रिय व्यक्ति के जितने कष्ट हों वे सब उसे छोड़ कर पानी पीने वाले व्यक्ति के आ जायँ। बलाइ लेत= "किसी का रोग दुःख अपने ऊपर लेना......स्त्रियाँ प्रायः बच्चों के ऊपर से हाथ घुमाकर और फिर अपने ऊपर ले जाकर इस भाव को प्रकट करती हैं।" अपने ऊपर हाथ घुमाने के पश्चात् वे प्रायः एक बार ताली बजाती हैं। झाँई=परछाईं। विवि=दो।

(२१)

अगार=घर। भौन के गरभ=गृह के बीच अर्थात् आँगन में। छबि छीर की छिटकि रही=विविध रत्नों तथा वस्त्रों आदि की शुभ्र छटा चारों ओर फैल रही है, ऐसा जान पड़ता है मानो चारों ओर दूध ही दूध है। सुरति करत........इ०=राम-सीता को इस प्रकार आमोद-प्रमोद करते हुए देख कर लोगों को क्षीर-सागर का स्मरण हो आता है क्योंकि क्षीर-सागर के समान ही यहाँ पर भी मणियों की शुभ्र-छटा फैल रही है।

(२४)

कुहू=अमावस्या। पून्यौं कौं बनाइ........बिगारि कै=सीता के मुख से टक्कर लेने के लिए ब्रह्मा पूर्णिमा का चंद्रमा बनाते हैं किंतु जब पूर्ण-चंद्र भी सीता के मुख के समान नहीं हो पाता तो वे अमावस्या के व्याज से उसे बिगाड़ डालते हैं और पुनः प्रयत्न करना प्रारंभ कर देते हैं।

(२५)

विशेष :—देवी भागवत के अनुसार शारदा विष्णु की पत्नी थीं।

(२६)

कोटि=धनुष का सिरा, यहाँ पर धनुष। निछत्रिय=क्षत्रिय विहीन। छिति=पृथ्वी। छोह भरयौ=क्रोध से पूर्ण। लोह=फरसा, परशुराम का अस्त्र। निरधार=निर्मूल, निर्वंश। परत पगनि, दसरथ कौं न गनि=पैरों पड़ते हुए दशरथ की तनिक भी चिन्ता न कर। जमदगनि-कुमार=परशुराम।

(२७)

छाँड़ी रिषि-रीति है......कहनेऊ की=परशुराम ने मुनियों का सा आचरण छोड़ दिया है, कहने-सुनने के लिए भी ऋषियों की सी कोई बात नहीं

रक्खी है। सुधि-बुधि भनेऊ की = उन्हें यह भी खबर नहीं कि वे क्या कह रहे हैं; क्रोध के आवेश में जो जी में आता है कहते चले जा रहे हैं। बिरद = कीर्त्ति। अपनेऊ = अपने। जामदग्नि = जमदग्नि के पुत्र परशुराम। ज्यारी = साहस, हृदय की दृढ़ता। जिरह = लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच। आज जामदग्नि...... जनेऊ की = हे परशुराम! आज यदि तुम्हें यज्ञोपवीत रूपी कवच का साहस न होता तो तुम को राम की महान् शक्ति का एक ही घड़ी में परिचय मिल जाता। तुम्हारा यज्ञोपवीत जिरह का काम कर रहा है क्योंकि तुम्हें ब्राह्मण समझ कर राम तुम पर अस्त्र नहीं छोड़ेंगे और इसी कारण तुम्हारा साहस बढ़ गया है।

(२८)

झंझा = तेज़ आँधी जिसके साथ वृष्टि भी हो। पवमान = पवन। झंझा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि = तेज़ आँधी तथा पवन को रोक कर उनके अभिमान को चूर्ण कर देते हैं। पब्बय = पर्वत। किलीक = कितनी, बहुत अधिक। ऐसे = इन विशेषताओं वाले। तऊ = तिस पर भी।

(२९)

काम-जस धारन कौं = कर्त्तव्य परायण होने का यश धारण करने के लिए अर्थात् लोगों को कर्त्तव्य की महत्ता बतलाने के लिए। पन्नगारि-केतु = विष्णु जिनके राम अवतार थे।

(३०)

पिक्खि = देख कर। थप्पि = स्थापित कर, ठहरा कर। पग्ग-भर = पैर का भार। मग्ग = मार्ग में। कित्ति = कीर्त्ति। बुल्लिय = वर्णन करते हैं। जलनिधि-जल उच्छलिय = समुद्र का जल उछलने लगा। सब्ब = सर्व, सब। दब्बिय = दबी। छित्ति = पृथ्वी। भुजग-पत्ति = शेषनाग। भग्गिय सटकि = धीरे से खिसक गए। कमठ = कच्छप। पिट्ठि = पीठ।

(३१)

बरिवंड = बलवान्। गिद्धराज = जटायु। जाया = स्त्री। कपट की काया = रामायण के अनुसार जब राम माया-मृग को मारने चले तो सीता जी अग्नि में प्रविष्ट हो गईं और उनके स्थान पर मायात्मक सीता बना दी गईं। रावण इसी नक़ली सीता को हर ले गया था।

(३२)

जुहारि=प्रणाम कर। संसै=संशय। निरवारि डारि=दूर कर। वर=वल। खोलत पलक......इ०=जितनी शीघ्रता से नेत्र खोलते ही आँखों की पुतली सूर्य के प्रकाश को देख लेती है उतनी ही शीघ्रता से हनूमान समुद्र के पार हो गए।

(३३)

एते मान=इतने परिमाण से, इतनी शीघ्रता पूर्वक। छाँह छीरध्यौ न छ्वाई=हनूमान गगन-पथ में इतने ऊँचे से निकल गए कि समुद्र में उनकी छाया तक न छू गई। झाँई=प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि। परयौ बोल की सी झाँई......इ०= जितनी शीघ्रता पूर्वक किसी के वचनों की प्रतिध्वनि होने लगती है उतनी ही शीघ्रता पूर्वक हनूमान समुद्र के पार पहुँच गए।

(३५)

अंतक=अन्त करने वाला, यमराज। झरफ=लपट। पै न सीरे होत ससि कै=चंद्रमा की शीतलता द्वारा भी शीतल नहीं होते। आगम बिचारि राम-बान कौं......निकसि कै=हनूमान ने लंका को जला दिया जिससे भीषण लपटें निकलने लगीं। ऐसा मालूम होता था मानो निश्चित समय से पहले ही राम के वाणों का आगमन समझ कर वड़वानल समुद्र से निकल कर भागा हो; यह सोच कर कि राम क्रुद्ध होकर समुद्र पर वाण चलाएँगे, बड़वानल पहले ही निकल भागा हो।

(३६)

तपनीय=सोना। पयपूर=समुद्र। सीत माँझ उत्तर तैं........आसरे रहत है=लंका को हनूमान ने ऐसा जलाया कि आज कल भी उसकी आँच दक्षिण में हुआ करती है! शीत ऋतु में सूर्य उत्तर को छोड़ कर दक्षिण की ओर आ जाता है (दक्षिणायन हो जाता है) क्योंकि उत्तर में हिमालय की वर्फ़ के कारण वह त्रस्त हो जाता है। विवश होकर उसे दक्षिण की ओर जाना पड़ता है क्योंकि दक्षिण में लंका के जलने की आँच के सहारे ही वह अपना अस्तित्व वनाए रख सकता है।

(३७)

नाचैं हैं कवंध........इ०=घमासान युद्ध होने के कारण लोगों के शिर कट-कट कर गिर रहे हैं और रुंड इधर-उधर उछल रहे हैं। वरजत=मना करते हैं। तरजत=डाँटते हैं। लरजत=काँपते हैं।

(३८)

धूम-केत=पुच्छल तारा जिसके दिखलाई देने पर किसी बड़े अशुभ की आशंका की जाती है। सीता कौं संताप=हनूमान की पूँछ में लिपटे हुए वस्त्र ऐसे जल रहे हैं मानो सीता के सारे कष्ट भस्मीभूत हुए जा रहे हों। खलीता=थैली। पलीता="बररोह को कूट कर बनाई गई बत्ती जिससे बंदूक या तोप के रंजक में आग लगाई जाती है"।

(३९)

पूरबली=पहले की। भयौ न सहाइ जो सहाइ की ललक मैं=जिस समय सहायता की प्रबल अभिलाषा थी उस समय जिस विभीषण ने सहायता न दी अर्थात् जो सेतु बाँधने के अवसर पर नहीं आया। बैरी बीर कै मिलायौ=अपने शत्रु (विभीषण) को भाई की भाँति मिला लिया। खलक=संसार।

(४०)

ओप=दीप्ति, कान्ति। नामन कौं=नमाने के लिए, नीचा दिखलाने के लिए। बंध=बंधन। दलन दीन-बंध कौं=दीन व्यक्तियों की दीनता के बंधन को नष्ट करने के लिए। सत्यसंध=सत्य-प्रतिज्ञ रामचंद्र। कीने दोऊ दान=विभीषण को लंका देकर राम ने एक दान तो दिया ही किंतु इसी दान द्वारा एक और दान भी उन्होंने दे दिया। विभीषण के लंकाधीश बन जाने से रावण के हृदय में एक नई चिंता उत्पन्न हो गई। अभी तक तो उसे अपने विपक्षी राम का ही सामना करना था किंतु अब उसका भाई भी उसका वैरी हो गया।

(४१)

सिख=शिखा। पजरे=जला दिया। गयौ सूरजौ समाइ कै=राम के बाणों की अग्नि के सामने सूर्य दिखलाई तक नहीं पड़ते थे। वे उसी अग्नि में विलीन हो गए। सफर=बड़ी मछली। नद-नाइकै=समुद्र को। तए=तवा। तची=तपी। बूँद ज्यौं तए की तची……छननाइ कै=जिस प्रकार तवा पर तपाए जाने पर जल-बिंदु छनछना कर राख हो जाता है उसी प्रकार कच्छप की पीठ पर समुद्र जल कर राख हुआ जाता था।

(४२)

बरुन=जल के अधिपति। कर मीड़ै=हाथ मलता है; पश्चाताप करता है। धानी=स्थान, जगह (जैसे राजधानी)। पजरत पानी धूरि-धानी भयौ जात है=समुद्र का जल जल रहा है और वह धूल का स्थान हुआ जा रहा है।

(४३)

पारावार=समुद्र। नभ झैं गयौ झरनि=आग की लपट की ताप के कारण आकाश काला पड़ गया। रहे है=रहे थे। जेई जल-जीव बड़वानल के त्रास भजि... जाइ कै=जल के वे विभिन्न प्रकार के जीव, जो बड़वानल से त्रस्त होकर समुद्र के शीतल जल में आकर ठहरे थे, वे अब राम के बाणों की भीषण अग्नि से घबरा कर, बड़वानल को बर्फ समझ कर, उसमें जा पड़े हैं। बाणों की अग्नि के सामने उन्हें बड़वानल तो बर्फ सा शीतल लग रहा है।

(४४)

झंपिय=उछल रहा है। पिक्खि=देख कर। अहिपति=शेषनाग। बिघाधर=एक प्रकार की देवयोनि।

(४७)

सार-तन=मजबूत शरीर वाले।

(४८)

छीरधर=समुद्र। असनि=बाण। हलहल=थरथराते हुए।

(४९)

मंदर के तूल......फूल ज्यौं तरत हैं=मंदराचल पर्वत के समान जिनकी जड़ें पाताल के मूल तक पहुँचती हैं, ऐसे पर्वत जल में रूई तथा फूल के समान तैरते हुए दिखाई देते हैं।

(५०)

पेड़ि तैं=समूल, जड़ सहित। आटियत है=तोपते हैं। जैतवार=जीतने वाले, विजयी। अजुगति=अप्राकृतिक घटना।

(५१)

अमन=शान्ति। फूलि=प्रसन्न होकर। ऊलि=उछल कर। धराधरन के धकान सौं=पर्वतों के धक्कों से। धुकत=गिरते हुए। पिसेमान (फा० पशेमान)=लज्जित। सुर=देवता।

(५५)

कपि-कुल-पुरहूत = कपियों के कुल के इन्द्र, कपियों में सर्वश्रेष्ठ। कहलि रह्यौ = आकुल हो रहे हैं। कुंडली टहलि गए = शेषनाग खिसक गए। चकचाल = चक्कर।

(५६)

सूल-धर हर = त्रिशूल धारण करने वाले शिव। धरहरि = रक्षक। प्रहस्त = रावण का एक सेनापति।

(५७)

धराधर = पर्वत। धराधर राज कौं धरन हार = पर्वतों के राजा कैलाश को धारण करने वाला (उठाने वाला) रावण।

(५८)

हाँते = पृथक्, अलग। सारदूल = बाघ।

(५९)

तामस = क्रोध। मंडल = सूर्य के चारों ओर पड़ने वाला घेरा। मंडल के बीच........ समूह बरसत है = क्रोध से तमतमाया हुआ राम का मुख सूर्य के समान है। कानों तक प्रत्यंचा खींच लेने के कारण गोलाकार धनुष सूर्य का मंडल जान पड़ता है। शीघ्रता पूर्वक बाण चलाते हुए राम को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकाश का भांडार सूर्य अपने मंडल में उदित होकर किरणों की वर्षा कर रहा है।

(६०)

कोप ओप ऐन हैं अरुन-नैन = राम के अरुण नेत्र क्रोध के कारण दीप्ति अथवा कान्ति के आगार हो रहे हैं। संबर-दलन मैंन तैं बिसेखियत है = राम की छवि शंबर का दलन करने वाले कामदेव से भी अधिक है। अंग ऊपर कौं = शिर। संगर = संग्राम।

(६१)

फौक = किसी वस्तु का सार निकल जाने पर अवशिष्ट नीरस अंश, सीठी। जिनकी पवन फौक = पवन तो राम के बाणों के वेग का बचा हुआ अंश है। जितनी तेजी थी वह तो राम के बाणों में आ गई; कुछ बचा-खुचा अंश पवन को भी मिल गया। पोहैं = छेदते हैं। वपु = शरीर। भाल = तीर का फल। निकर = समूह। धाम = ज्योति। भाल मध्य निकर दहन दिन-धाम के = दिन की ज्योति

को नीचा दिखाने वाली ज्योति जिनके फल की नोक में रहती है। दनुज-दल-दारन=राक्षसों की सेना को नष्ट करने वाले।

(६२)

जुद्ध-मद-अंध दसकंधर के महा बली......बितारि कै=युद्ध के मद में अंधे रावण के महा बली वीरों ने महा वीर वानरों को तितर-बितर कर दिया। अध-चंद=अर्द्ध चंद्र के आकार का बाण। मारतंड=सूर्य।

(६३)

मेरु="जपमाला के बीच का वह बड़ा दाना जो अन्य समस्त दानों के ऊपर होता है। इसी से जप का प्रारंभ होता है और इसी पर उसकी समाप्ति होती है।" गन=शिव के गण। दर-बर=दल-बल, फौज। भुव=पृथ्वी। गनन की आली=शिव के गणों की पंक्ति। कपाली=शिव।

(६५)

भासमान=द्युतिमान्। चार=गुप्त दूत। गिरि भुव अंबर मैं रावन समानौ है=रावण के प्रबल आतंक से सब इतना डरते थे कि उसके युद्ध-स्थल में गिर पड़ने पर भी किसी को यह साहस नहीं होता था कि यह कह दे कि रावण पराजित होकर मारा गया। लोगों को यह शंका थी कि यदि रावण अभी जीवित होगा तो उनकी दुर्दशा कर डालेगा। केवल सरस्वती ने अपने श्लिष्ट वचनों द्वारा रावण की मृत्यु का समाचार कहा—१ पृथ्वी पर गिर कर रावण आकाश में समा गया अर्थात् मर कर स्वर्ग चला गया २ पर्वत, पृथ्वी तथा आकाश में रावण समाया हुआ है अर्थात् सर्वत्र ही रावण का आतंक फैला हुआ है।

(६७)

लूक=आग की लपट। पिलूक=इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। जगा-ज्योति=जगमगाती हुई ज्योति।

(७०)

जामदगनि=जमदग्नि के पुत्र परशुराम। जामवंत="सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह रीछ था। रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इसने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसी की कन्या जांबवती

के साथ श्री कृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इसने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी"।

(७२)

भाँति ह्वै न जानी = अयोध्या के लोग सर्वदा सुखी रहे; दुर्भांति का उन्हें अनुभव ही नहीं हुआ। रजाइ = आज्ञा।

(७३)

कौंन तारौ धरै.........इ० = इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है।

(७४)

नहीं कविताई कछू हेतु न धरति है = राम-कथा तो स्वयं ही सूर्य के प्रकाश के समान देदीप्यमान है, हमारी कविता की अपेक्षा उसे नहीं है। आप = स्वयं। खर-दूषन = रावण के दो भाई जिन्हें राम ने मारा था। अखर = अक्षर। दूषन सहित = सदोष।

(७६)

देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५५।

पाँचवीं तरंग

रामरसायन वर्णन

(१)

निरधार=निश्चय। पूरन पुरुष=ब्रह्म। हृषीकेस=विष्णु का एक नाम।

(३)

बंधु भीर आगे......इ०=अपने संबंधियों के सामने अपने कष्टों को निवेदन करना व्यर्थ है क्योंकि उनकी सहानुभूति केवल मौखिक होती है। उनके सामने तो मौन रहना ही ठीक है। सारंग-धरन=सारंग नामक धनुष धारण करने वाले विष्णु।

(४)

मन लोचत न बार बार= मन में बारंबार विभिन्न साँसारिक वस्तुओं के लिए ललचाते नहीं हैं। हम भौतिक सुखों के लिए लालायित नहीं होते। रूखे रूख=सूखे वृक्ष। दूखे दूरजन सौं न डारत बचन है=दुखाए अथवा कष्ट पहुँचाए जाने पर दुष्टों से याचना नहीं करते। जगत-भरन=संसार का निर्वाह करने वाले। बारिद-बरन=मेघ वर्ण वाले।

(६)

लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत जाकौं=जिसके सूर्य और चंद्रमा रूपी दोनों नेत्र शोभायमान हैं।

(७)

दानि जाता को सुपति कौं=कौन ऐसी सुन्दर प्रतिष्ठा वाला दानी उत्पन्न हुआ है? अर्थात् कोई नहीं हुआ।

(८)

कुपैंड़े=कुमार्ग को। पैंड़े परे=पीछे पड़े। चित चीते=मन में विचारे हुए, मनवांछित। रिषि-नारी=अहल्या।

(११)

रमनी की मति लेहु मति=स्त्री की इच्छा मत कर। करम करम करि करमन कर=विभिन्न सांसारिक कर्मों को क्रम क्रम से कर। बिराम=अन्त, अवसान। अभिराम=रम्य, प्रिय। बिसराम=विश्राम।

(१२)

जरा=वृद्धापा। चितहिं चिताउ=चित्त को सावधान करो। आउ लोहे कैसौ ताउ=लोहा जब खूब तपाया जाता है तभी उसे इच्छानुकूल मोड़ा जा सकता है। लोहे का ताव ठंढा होने पर फिर यह बात नहीं हो सकती। आयु लोहे के ताव के समान है। जिस प्रकार लोहे का ताव थोड़े समय बाद ठंढा हो जाता है उसी प्रकार जीवन भी थोड़े ही समय बाद समाप्त हो जाता है; जिस प्रकार लोहे को देर तक तपाने के बाद ताव बन पड़ता है उसी प्रकार पूर्व-संचित कर्मों के उदय होने पर ही मनुष-जीवन प्राप्त होता है। अतएव इस क्षणिक जीवन में जो कुछ बन पड़े शीघ्र ही कर लेना चाहिए। लेहु देहु करि कै, पुनीत करि लेहु देह=अच्छी बातों को ग्रहण कर तथा बुरी बातों को छोड़ कर अपने शरीर को पवित्र बना लो। अवलेह=चाटने वाली औषधि। जीभै अवलेह देह सुरसरि-नीर कौं=गंगा जल रूपी अवलेह का सेवन करो क्योंकि इससे हृदय के समस्त विकार नष्ट होते हैं।

(१३)

को है उपमान ?=सुदर्शन चक्र की समता वाला दूसरा कौन है ? भासमान हू तैं भासमान=सूर्य से भी अधिक द्युतिमान्। अमर अवन=देवताओं का बचाव अर्थात् देवताओं की रक्षा करने वाला। दल दानव दवन=दानवों के दल को दमन करने वाला। मन पवन गवन=मन तथा पवन के समान तीव्र गति से जाने वाला। चाइ=प्रबल इच्छा, अभिलाषा।

(१४)

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि=सांसारिक झंझटों से व्याकुल होकर, थके हुए व्यक्ति के समान, गंगा रूपी तीर्थ के किनारे जा बसो अर्थात् गंगा सेवन करो। दारा=स्त्री। नसी=नष्ट हो गई है, मर गई है। हिए कौं हेतु बंध जाइ=अपने हित अथवा भलाई की युक्ति निकालो। रामैं मति सोचौ अकुलाइ कै=स्त्री के रूप पर मुग्ध होकर उसकी चिंता में मत व्याकुल हो।

(१५)

प्रसाद=कृपा, अनुग्रह। गहर=विलंब।

(१६)

आगि करि आस-पास=पंचाग्नि ताप कर (पंचाग्नि="एक प्रकार का तप जिसमें तप करने वाला अपने चारों ओर अग्नि जलाकर दिन में धूप में बैठा रहता है")। धारना=यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योग के अंग माने जाते हैं। धारणा "मन की वह स्थिति है जिसमें कोई भाव या विचार नहीं रह जाता, केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है। उस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है; उसमें किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न इंद्रियाँ विचलित होती हैं। यही धारणा पीछे स्थायी होकर 'ध्यान' में परिणत हो जाती है"। समीर=प्राण-वायु। जाकी सब लागै पीर......इ०=सेनापति को सांसारिक दुःख छू तक नहीं जाते। उनके जीवन की जितनी आपत्तियाँ हैं उनको भक्तवत्सल राम अपने ऊपर ले लेते हैं; सेनापति को उनका अनुभव तक नहीं होता।

(१७)

ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ=जिस प्रकार भगवान् के दर्शन मिलेंगे मैं उसी प्रकार यत्न करूँगा। कंथा=गुदड़ी। जतीन के=यतियों के। बहिराऊँ=बहलाऊँगा।

(२१)

उतीरन=वे फटे-पुराने वस्त्र जो उतार कर रख दिए गए हों, जिनका व्यवहार अब न होता हो। छाप=शंख, चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव लोग विविध अंगों पर छपवा लेते हैं। गुंज=घुँघची, बीरबहूटी।

(२३)

हेतु=प्रीति, अनुराग। जानि बड़ी सरकार कौं=यह समझ कर कि मैं महाराज रामचंद्र के दरबार का आदमी हूँ, मेरी पहुँच वहाँ तक भी है। पाइपोस (फा० पापोश)=जूता। बरदार (फा०)=वहन करने वाला, ढोने वाला।

(२४)

असन=भोजन। हेतु सन=प्रीति से। चौकी=रखवाली, पहरा। गरुड़-केतु=विष्णु।

(२५)

सुभग धाराधर सुंदर=सुन्दर बादल के समान सुखद। करुनालय=करुणा के आलय अथवा भांडार।

(२६)

इकौसे=एकांत, अलग।

(२७)

सरन=आश्रय। त्रास लछ मन के=मन के लाखों भय अथवा कष्ट।

(२८)

अनबात=कटु वचन। सुख पीन=सुख से संपन्न।

(३१)

दार=काठ। सून=प्रसून, पुष्प। राखु दीठि अंतर, कछू न सून अंतर है=प्रतिमा को ढकने वाले पुष्पों के नीचे कुछ नहीं है। यह तेरा भ्रम है जो तू समझता है कि पुष्पों के नीचे भगवान् की मूर्त्ति विराजमान है। यदि तू ब्रह्म को खोजना चाहता है तो अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बना। वहीं तुझे ब्रह्म का आसन दिखलाई पड़ेगा। निरंजन=माया से निर्लिप्त ब्रह्म। कही=सीख। देहरे=मंदिर।

विशेष :—अन्तिम पंक्ति में यति-भंग दोष है।

(३२)

ती=स्त्री। रथ=शरीर।

(३३)

कमलेच्छन=विष्णु। पाइक=सेवक। मलेच्छ=म्लेच्छ।

(३४)

गाह=ग्राह। कतराहि मति=भव-सागर को बचा कर निकल जाने की चेष्टा मत कर। कुंजर=गज। धरहरि=रक्षा।

(३५)

जोष=स्त्री। अजहूँ न उह रत है=तू आज भी उस (परमात्मा) में अनुरक्त नहीं है। घुनच्छर="ऐसी कृति वा रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय, जिस प्रकार घुनों के खाते खाते लकड़ी में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न वा लकीरें बन जाती हैं"।

(३६)

कुलिस=वज्र। करेरे=कठोर। तोरा=पलीता, जिसकी सहायता से तोड़ेदार बंदूक़ छुटाई जाती है। तमक=तीव्रता। तरेरे=क्रोधपूर्ण दृष्टिपात करते हुए। दरेरे कै=रगड़ कर, चूर्ण कर। कलमष=पाप। बर करुना बरष हैं=उत्तम करुणा की वर्षा करने वाले हैं। अनियारे=नुकीले।

(३८)

नकवानी=हैरानी। जगबंद=जगद्वंद्य, सारा संसार जिसकी पूजा करे।

(३९)

प्रान-पत ताने—प्राणों की पति अथवा मर्यादा को ताने हुए अर्थात् किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा किए हुए। सँघाती=साथी। गाढ़ मैं=संकट में। गरुड़ध्वज=विष्णु। बारन=गज, हाथी। कमला-निवास=विष्णु, जिनके हृदय में लक्ष्मी का निवास है।

विशेष :—'प्रान-पत ताने'—यद्यपि इस वाक्य-खंड का भावार्थ स्पष्ट हो जाता है किंतु उक्त प्रयोग ज़रा असाधारण है। दिए हुए पाठांतरों में से 'प्रान पर तायें' तो बिलकुल ही अस्पष्ट है। 'प्रान पति ताने' तथा 'प्रान पत ताने' में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

(४०)

जानि=ज्ञानी। जौब=जौ+अब। जौब रावरे मन टिकै=अब यदि हमारी युक्ति आपके मन को जँचे अथवा उचित प्रतीत हो तो उस पर विचार कीजिए। ओप=कान्ति। श्रीबर=लक्ष्मी के पति विष्णु। छीबर=मोटी छींट का कपड़ा। रोवत मैं श्रीबर........उपटि कै=द्रौपदी ने रोते रोते विष्णु को 'श्रीबर' कह कर पुकारा किंतु रोने के कारण शुद्ध उच्चारण न हो सका और मुख से 'छीबर' निकला, मानो इसी कारण द्रौपदी के शरीर से छींट का वस्त्र निकलता ही चला आता है।

(४१)

बास मैं=निवासस्थान में। जगन्निवास=परमात्मा। वा समैं=उस संकट के समय। दिखाई प्रीति बास मैं=वस्त्र के मिस अपनी प्रीति सूचित की, वस्त्र को बढ़ा कर अपना स्नेह प्रदर्शित किया।

(४२)

पति लागी पतता नहीं=पतियों को अपने 'पति-पन' का थोड़ा भी ध्यान न रहा, पति होते हुए भी उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन करके द्रौपदी की रक्षा

न की। 'पतता' शब्द कवि का गढ़ा हुआ है। पीतबास=पीला वस्त्र अर्थात् पीतांबर धारण करने वाले कृष्ण।

(४३)

पति=प्रतिष्ठा, मर्यादा। बर=बल। मंदर मथत छीर-सागर के छीर जिमि=द्रौपदी के शरीर से श्वेत वस्त्र की साड़ी निकलती चली आती है, ऐसा जान पड़ता है मानो मंदराचल पर्वत चीर-सागर के दुग्ध को मथे डालता हो। छीर=छोर, साड़ी का सिरा। चीर=वस्त्र।

(४५)

उतंग=उच्च, श्रेष्ठ। उत्तमंग=उत्तमांग, उत्तम अंग वाली। अगाऊ= पेशगी, समय के पहले ही।

(४६)

सदन उषित रहु=अपने घर में जम कर रहो। पुरंदर=इन्द्र। खटकै= चिंता उत्पन्न करती है।

(५०)

अछत=रहते हुए, सम्मुख, सामने। भानु-सुत=सूर्य के अंश से उत्पन्न सुग्रीव।

(५१)

दुरित=पाप। खूँट=ओर, तरफ। कालकूट=भयंकर विष। अपाइ= अनरीति, अन्यथाचार।

(५२)

चरनोदक=चरनो का जल। चप=दबाव। जम-दुंद=यमराज द्वारा किए गए उत्पात अथवा उपद्रव। बेनी=चोटी। बेनी मैनका की गूँद......इ०= गंगा-जल पान करने से तुझे स्वर्ग मिल जायगा और तब तुझे वहाँ पर मेनका की चोटी गूँथने का अवसर मिलेगा। तात्पर्य यह कि तुझे स्वर्ग में अप्सराओं का साहचर्य मिलेगा।

(५३)

मर्‌यौ हो=मरा था। मगह=मगहर। जनश्रुति के अनुसार मगहर में मरने वाला व्यक्ति अगले जन्म में गधा होता है। कीनौ गर-जोरि और नारकीन बीच घेरि........पाप काज के=यमराज के दूतों ने उस पापी को अन्य

रात-दिन पाप करने वाले पापियों के बीच घेर कर एक साथ रक्खा। ताही के करकै......सुर साज के=उस पापी के नरक चले जाने पर उसके संबंधी उसकी ठठरी को गंगा में नहलाने के लिए ले गए (शव के जलाने के पहले गंगा-स्नान आवश्यक माना जाता है)। किंतु गंगा-जल को स्पर्श करती हुई वायु के लगते ही देवता लोग वायुयान सजाकर हाजिर हुए अर्थात् उस पापी के सब पाप कट गए और उसके स्वर्ग जाने की तैयारी होने लगी। साँकरैं कटाइ......जमराज के=यमदूतों को तुरंत दौड़ा कर तथा उस यमराज के क़ैदी की बेड़ियों को कटा कर देवता लोग उसे नरक से छुटा कर ले चले।

(५४)

सुरसरि=गंगा। सुर=देवता। सरि=बराबरी। दाता याही कै......सुभ काज के=शुभ कार्य अथवा उत्तम फल देने वाली इसी गंगा की धारा द्वारा लोग मुक्त हो जाएँगे। ओक=आश्रय। थोक=समूह। नसैं=नष्ट हो जाते हैं। दोक जल-कन चाखैं=जल की दो बूँदों के चखने से। ओक=चुल्लू।

(५५)

मोह-सर सरसाने=मोह रूपी सरोवर में वृद्धि प्राप्त किए हुए, मोह के वातावरण में पले हुए। पैंडो=मार्ग। अटकरियै=अन्दाज़ लगाइए, अनुमान कीजिए। राम-पद-संगिनी=गंगा विष्णु (जिनके कि राम अवतार हैं) के चरणों से निकली हैं।

(५७)

मघ=मघा नक्षत्र में, माघ मास में। मघवा=इन्द्र। समन=दमन। सो न दूजियै=वह अद्वितीय है, वैसी दूसरी नहीं है। बारि=जल। दानवारि=दानवों के वैरी अर्थात् देवता। नै करि=विनम्र होकर। विनै=विनय। सुर-सिंधु=सुरसरिता, गंगा। रन=समुद्र का (यहाँ पर जल का) छोटा सा खंड। सुर-सिंधुरन=देवताओं के हाथी (ऐरावत आदि)। कूल-पानि=किनारे का जल। त्रिसूल-पानि=शंकर।

(५८)

हरि-पद पाँउ धारै=विष्णु के पद पर पैर रखती है अर्थात् विष्णु की पदवी प्राप्त करती है। पतितों का उद्धार करने में विष्णु की बराबरी करती है। काकौं भगीरथ नृप........इ०=गंगा के अतिरिक्त और किसके लिए भगीरथ ने तप द्वारा अपने शरीर को जलाया था? भगीरथ ने इतनी घोर तपस्या गंगा की

प्राप्ति के लिए ही की थी। तातैं सुरसरि जू की......इ०=ऐसी गुणवती होने के कारण ही गंगा 'सुरसरि' कहलाती है।

(५९)

अरथ=हेतु, निमित्त। बिरथ ह्वै=रथ को त्याग कर। काहे कौं बिरथ...... इ०=यदि गंगा इतनी महत्वपूर्ण न होती तो भगीरथ अपना राजसी ठाट-बाट छोड़ तपस्या कर अपने शरीर को व्यर्थ में क्यों जलाते ?

(६०)

अरंग=विघ्न-बाधाएँ। ईस=शिव। सेनापति जिय जानी......इ०= शिव के आधे अंग में पार्वती जी का क़ब्ज़ा है। अवशिष्ट आधे अंग में विष, सर्प तथा अन्य भयंकर विघ्न-बाधाओं का साम्राज्य है। ऐसी विषम परिस्थिति में शिव के शरीर का थोड़ा सा भाग भी बाक़ी न बच रहता, यदि उनके शिर पर सुधा से भी सहस्र गुने प्रभाव वाला गंगा जी का जल न होता।

(६१)

पावै राज बसु=कुबेर का राज्य पाता है। दुधार=दूध देने वाली।

(६३)

गाइन=गायक। अलापत हो=अलापता था। लागे सुर दैन=गायक के सुर में सुर मिलाने लगे। अलापिहौं अकेलौ=मैं स्वयं आलाप भरूँगा। 'सुरनदी जै'=गंगा की जय। गरुड़-केतु=विष्णु। धाता=विधाता, ब्रह्मा।

(६४)

लहुरी=छोटी। ताँति=धनुष की डोरी। भौंर=तेज़ पानी में पड़ने वाले चक्कर। फटिका=गुलेल की डोरी के बीचोबीच रस्सी से बुन कर बनाया हुआ वह चौकोर हिस्सा जिसमें मिट्टी की गोली रख कर चलाई जाती है। पानि=१ जल २ हाथ। कोटि=१ धनुष का सिरा २ करोड़ों। कलमष=१ काले (सं० कल्माष) २ पाप। गुलेला=मिट्टी का छोटा सा गोला जो गुलेल से फेंका जाता है। बलूला= बुदबुद। कलोल=तरंग। गिलोल=गुलेल।

(६५)

नीर-धार=जल की धारा। निरधार निरधार हू कौं=निश्चय ही निराश्रय व्यक्ति को। अधार=अवलंब, आश्रय। सन्निधान=समीप। भगवान मानी भव हूँ=स्वयं शिव ने इसे पूज्य माना है। कामधेनु हीन=कामधेनु जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचती। जाकौं देखैं बारि......इ०=जिसके जल को देखने से दीन व्यक्ति फिर कभी दरिद्री नहीं होता है।

(६६)

कछुव न छीजै = कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता, किसी प्रकार की कमी नहीं होती। हरिपुर की नसैनी = बैकुंठ जाने की सीढ़ी। बिसुन-पदी = गंगा। जाह्नवी = (जान्हवी) गंगा। नबी = पैगंबर, रसूल।

(६७)

कहा जगत आधार ? = अंन (अन्न)। कहा आधार प्रान कर ? = तन। कहा बसत बिधु मध्य ? = एन अथवा एण ('एण' काले रंग के मृग को कहते हैं; कस्तूरी-मृग)। दीन बीनत कह घर घर ? = कन (कण)। कहा करत तिय रूसि ? = मान। कहा जाचत जाचक जन ? = धन। कहा बसत मृगराज ? = वन। कहा कागर कौं कारन = सन (प्राचीन समय में 'कागर' या कागज़ सन से बनाया जाता था)। धीर बीर हरषत कहा ? = रन (रण)। चारि बेद गावत कहा ? = 'अंत एक माधव सरन' (अन्त में विष्णु ही सब के आश्रय-स्थान हैं)।

विशेष :—इस छंद से चित्रालंकारों का वर्णन प्रारंभ होता है। उक्त छंद कमलबद्धोत्तर का उदाहरण है। इसमें कुल दस प्रश्न हैं। अन्तिम प्रश्न का उत्तर 'अंत एक माधव सरन' है। इसी उत्तर में अन्य नौ प्रश्नों के उत्तर भी हैं। प्रत्येक उत्तर का अन्तिम वर्ण दसवें प्रश्न के उत्तर का अन्तिम वर्ण (अर्थात् 'न') रहता है। इसमें (अर्थात् 'न' में) दसवें प्रश्न के उत्तर के पहले, दूसरे, तीसरे......आदि वर्णों को जोड़ देने क्रमशः पहले, दूसरे तथा तीसरे......आदि प्रश्नों के उत्तर (अर्थात् अंन, तन, एन...आदि) मिल जाते हैं*। उक्त कमलबद्धोतर को ऊपर दिए हुए चित्र में चित्रित किया गया है।
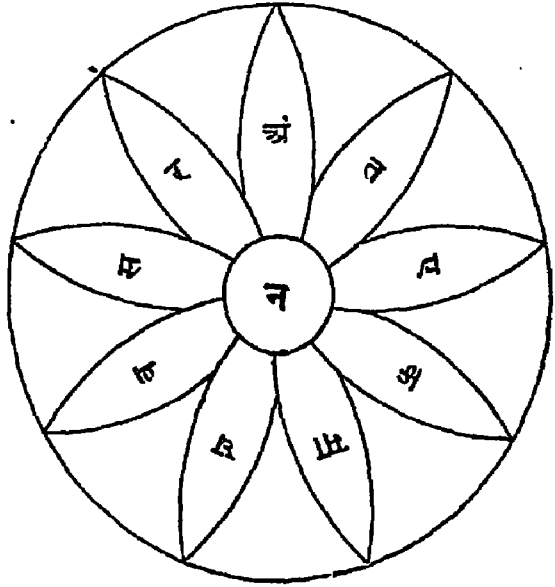
* "अच्छर पढ़ो समस्त को, अन्त वरन सों जोरि।
कमलवन्ध उत्तर वहै, व्यस्त समस्त वहोरि॥"
काव्यनिर्णय (चित्रालंकार वर्णन, दोहा २४)

(६८)

को मंडन संसार ?=सील (शील अथवा सदवृत्ति ही सांसारिकों को आभूषित करती है)। गीत मंडन पुनि को है ?=ताल (गायक के गीत का सौंदर्य ताल के कारण और भी अधिक हो जाता है)। कहा मृगपति कौं भच्छ ?=पल (मांस)। कहा तरुनी मुख सोहै ?=तिल। को तीजौ अवतार ?=कौल (कोल)। कवन जननी-मन-रंजन ?=बाल (बालक)। को आयुध बलदेव हत्थ दानव-दल-गंजन ?=हल (बलराम जी कृष्ण के बड़े भाई थे। हल तथा मूसल इनके अस्त्र माने जाते हैं)। राज अंग निज संग पुनि कहा नरिंद राखत सकल ?=बल (शक्ति)। सेनापति राखत कहा ?='सीतापति कौं बाहु बल' (सेनापति को राम के बाहु-बल का भरोसा है)।

(६९)

को पर नारी पीउ ?=जार (उपपति)। करन हंता पुनि को है ?=नर (अर्जुन)। को विहंग पुनि पढ़इ ?=कीर। कौंन गृह पंकज कौं है ?=सर (सरोवर)। को तरु प्रान निधान=जर (जड़)। कवन वासी भुजंग मुख ?=गर (विष)। को हरषत घन देखि ?=मोर। कवन बाढ़त तुसार दुख ?=दर (ईख)। आदान दान रच्छन करन को कृपान धारै समर ?=कर (हाथ)। सेनापति उर धरत कह ?='जानकीस जग मोद कर' (सेनापति राम को हृदय में धारण करते हैं जो संसार को प्रमुदित करने वाले हैं)।

विशेष :—'नर'—"देवी भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया था जिनके गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से हरि और कृष्ण योगाभ्यास करते थे और नर-नारायण हिमालय पर कठिन तपस्या करते थे। उस समय इंद्र ने डर कर इनकी तपस्या भंग करने के लिए काम, क्रोध और लोभ की सृष्टि की और उन तीनों को नर-नारायण के सामने भेजा, परंतु नर-नारायण की तपस्या भंग नहीं हुई। तब इंद्र ने कामदेव की शरण ली। कामदेव अपने साथ वसंत, रंभा और तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को लेकर नर-नारायण के पास पहुँचे।

उस समय अप्सराओं के गाने आदि से नर-नारायण की आँखें खुलीं। उन्होंने सब बातें समझ लीं और इंद्र को लज्जित करने के लिए तुरंत अपनी जाँघ से एक बहुत सुंदर अप्सरा उत्पन्न की जिसका नाम उर्वशी पड़ा। इसके उपरांत उन्होंने इंद्र की भेजी हुई हज़ारों अप्सराओं की सेवा करने के लिए उनसे भी अधिक सुंदर हज़ारों दासियाँ उत्पन्न कीं। इस पर सब अप्सराएँ नर-नारायण की स्तुति करने लगीं। इन अप्सराओं ने नारायण से यह भी वर माँगा था कि आप हम लोगों के पति हों। इस पर उन्होंने कहा था कि द्वापर में जब हम अवतार लेंगे तब तुम राजकुल में जन्म लोगी। उस समय तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तदनुसार नारायण तो श्रीकृष्ण और नर अर्जुन हुए थे।"

(७०)

चर अचर अयन = जो स्थावर तथा जंगम सबका आश्रय-स्थान है। सस-धर गन दरसन = जो शिव के गणों को दर्शन देने वाला है। गगन-चर = देवता।

विशेष :—यह छंद 'अमत्त' का उदाहरण है जिसमें बिना मात्रा वाले शब्द रक्खे जाते हैं :—

"बिन मत्ता वरणहिं रचैं, इ उ ए कछु नाहिं।
ताहि अमत्त बखानिये, समझौ निज मन माहिं॥"

('काव्य प्रभाकर')

(७१)

जी मैं दरद न छक्यौ......काटै तैं हरे हरे = इस पंक्ति का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं है। इसको गति भी बिगड़ी हुई है। किसी भी पोथी के पाठ द्वारा इस दोष का परिहार नहीं होता है। कदाचित् इसका भावार्थ इस प्रकार है—तू नाना प्रकार के अहंकारों से छका हुआ है (पूर्ण है), तेरे हृदय में थोड़ी भी कसक नहीं है, तू कितने ही हरे हरे वृक्षों को मकान आदि बनाने के लिए काट डालता है। पाइ नर तन भयौ राम सौं रत न वर = मानव-शरीर पाकर भी तू राम में भली प्रकार अनुरक्त न हुआ। हेतु = प्रीति। और न जुगति जासौं होति आजु गति = तेरी मुक्ति के लिए आज और कोई दूसरी युक्ति नहीं है (अर्थात् हरि-भक्ति द्वारा ही तेरा मोक्ष हो सकता है)।

(७२)

बरती रहि कै = उपवास करके। साध = इच्छा, अभिलाषा। विषै की कतार = विषय-वासानाओं की पंक्ति (अर्थात् समूह)। करि हटतार = हरताल

लगा कर, नष्ट कर। करतार=१ "लकड़ी, काँसे आदि का एक बाजा जिसका एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं" २ सृष्टि-कर्त्ता।

(७३)

इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है।

विशेष :—७३ वें छंद से लेकर ८० तक नियमाक्षर शब्द-रचना के उदाहरण दिए हुए हैं। इन छंदों द्वारा कोई चित्र नहीं बनते हैं। इनके पढ़ने में एक प्रकार की विचित्रता जान पड़ती है इसी से इन्हें चित्रालंकार कहते हैं (चित्र=विचित्र)। भिखारी दास ने इन्हें "बानी को चित्र" कहा है :—

"प्रश्नोत्तर पाठान्तरो, पुनि बानी को चित्र।
चारि लेखनी चित्र को, चित्र काव्य है मित्र॥"*

७३ वें छंद में यह विशेषता है कि उसमें केवल एक ही अक्षर ('ल') प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार ७४ वें छंद में केवल दो अक्षर ('र' तथा 'म') प्रयुक्त हुए हैं।

(७४)

रामा=स्त्री। रारि=झगड़ा, व्याधि। रमा=सीता। मार=कामदेव।

अर्थ :—रे (मूर्ख !) (तू) स्त्री में रमण करता है (अनुरक्त रहता है), (किंतु) (तेरे) रोम रोम में व्याधियाँ (भरी हुई हैं); (तुझे उचित है कि) (तू) सीता (तथा) राम में अनुरक्त हो, (और) रे (मनुष्य !) कामदेव को मार (कामदेव का भली प्रकार दमन कर)।

(७५)

लीला=रहस्यपूर्ण व्यापार। लोने=सुन्दर। नलिन=कमल। लोल=चंचल। निलै=आश्रय-स्थान। नौल=नवल, सुन्दर। लौ=आशा, कामना।

अर्थ :—सुन्दर कमल (के) समान लीला स्त्री (के) नेत्रों में लीन है (अर्थात् स्त्री के नेत्र सुन्दर कमल-दल के समान चंचल हैं); चंचल (नेत्र) लाली के आश्रय (हैं) (नेत्र बहुत लाल हैं), (तथा) सुन्दर प्रियतम (की) लौ (में) लीन (रहते हैं) (अर्थात् नेत्रों को प्रिय के दर्शनों की कामना सदा बनी रहती है)।

---

* दे॰ काव्यनिर्णय (चित्रालंकार वर्णन—दोहा संख्या ४)।

(७६)

अर्थ :—(यदि) मुनियों (का) मन कामदेव (को) मानता है (कामदेव के वश में हो जाता है) (तो) नियम ('नेम') मौन (हो जाता है) (नियम भंग हो जाते हैं) (तथा) नाम नम जाता है (मिट जाता है); (यह देख कर विशेष आश्चर्य न करना चाहिए क्योंकि) मानिनी के नेत्र (बड़े) नामी हैं; मन-चाही बात कर डालते हैं, (वे) मानो मीन (हैं) । (मानिनी के नेत्रों को देख कर मुनियों की तपस्या भंग हो जाना स्वाभाविक ही है) ।

(७७)

सुरसरी = गंगा । संसौ = संशय, आशंका । सास = साँस, निश्वास । रस-रास = आनंद का भांडार ।

अर्थ :—हे शूरवीर (व्यक्ति !) (तू) गंगा (का) स्मरण कर (गंगा-सेवन कर), (क्योंकि) साँस (का) संशय (है) (अर्थात् साँस का क्या ठिकाना, आई आई, न आई न आई); (तू) संसार से क्रोध (पूर्वक) रुष्ट होकर उस आनंद (के) भांडार (परब्रह्म का) स्मरण कर (मायात्मक जगत् से उदासीन होकर ब्रह्म का ध्यान कर) ।

(७८)

दादनी = वह रक़म जिसे चुकाना हो । यह शब्द फ़ारसी 'दादन' से बना है जिसका अर्थ 'देना' होता है । यहाँ पर इसका प्रयोग दान के अर्थ में हुआ है । दानौ-दंदन = देवता, यहाँ पर राम । दादि दै = प्रशंसा करके ।

अर्थ :—दानी (व्यक्ति) (ने) नित्य दान देकर (अपना) दाना दाना दे दिया (अर्थात् उसके पास जो कुछ था वह उसने बाँट दिया); (यह देख कर) राम (ने) (उसकी) प्रशंसा कर (उसे) दाना दाना दे दिया (राम ने उसकी दानशीलता देख कर उसे उसकी सारी संपत्ति फिर से दे दी) ।

(७९)

रूरी = सुन्दर । हेरि = चितवन ।

अवतरण :—दूती कृष्ण को नायिका पर अनुरक्त कराने के लिए नायिका की प्रशंसा कर रही है ।

अर्थ :—हे हरि ! (मैं तो) (इसकी) सुन्दर चितवन देखने पर हार गई (मैं तो मुग्ध हो गई हूँ), (तू भी) हार जायगा (तू भी इस पर मुग्ध हो

जायगा; नाना प्रकार के हीरों (द्वारा) हार (बनाया जाता) है (अर्थात् ऐसे तो तू ने अनेक हीरों के हार देखे होंगे), (किंतु) हे हरि ! (इस स्त्री रूपी) हीरे को देख (यह स्त्री रूपी हीरा उन हारों के हीरों से कहीं बढ़कर है) ।

विशेष :—इस छंद का अर्थ दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है । कृष्ण को लक्ष्य कर दूती नायिका से कह रही है कि हरि को देख कर मैं हार गई, तू भी उन पर मुग्ध हो जायगी; संसार में हीरों के अनेक हार देखे जाते हैं किंतु हे सखी ! जरा इस हरि रूपी हीरे को तो देख । यह उन हीरों से बहुत बढ़कर है ।

(८०)

रति=प्रीति । तारे=नेत्र । तंत्री=वे बाजे जिनमें बजाने के लिए तार लगे हुए हों जैसे वीणा । रूरी=श्रेष्ठ । ररै=रट लगाए हुए है । तीर=समीप ।

अवतरण :—दूती कृष्ण से रूठी हुई नायिका की दशा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ :—(हे कृष्ण !) (तुम्हारे) नेत्र (रूपी) बाणों (से) रेती जाने पर (विद्ध होने पर) तुम्हारी प्रीति (में) (वह) रात से अनुरक्त है; तुम्हारी नायिका वृक्ष (के) समीप वीणा से (भी) श्रेष्ठ (मधुर ध्वनि से) (तुम्हारे नाम की) रट लगाए हुए है (अर्थात् यद्यपि वह रात को तुम से रूठ कर चली गई किंतु फिर भी तुम्हारे कटाक्षों का उस पर इतना असर हुआ कि वह घर वापस न जा सकी । तुम्हारे घर के समीप ही एक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर तुम्हारा नाम जपती रही) ।

(८१)

सपरे=स्नान करने पर । सुरसरि=गंगा ।

अर्थ :—अब स्नानादि करने पर गंगा शिव, केशव (तथा) ब्रह्मा के लोक पहुँचा देती हैं (जीवन्मुक्त कर देती हैं) । अवश होने पर (सब प्रकार से हताश हो जाने पर) गंगा शिव के (भी) समस्त विधानों को उलट देती हैं (पीड़ितों की सहायता करने में शिव की आज्ञा का भी उल्लंघन कर देती हैं) ।

(८२)

मानी=जिसने मान किया हो, रूठा हुआ व्यक्ति । ती=स्त्री । छन=क्षण । तीर=बाण । मार=कामदेव । गुमानी=अभिमानी । तीछन=तीक्ष्ण ।

अर्थ :—नायिका (ने) मार्ग (में) रूठे हुए (नायक) को पकड़ कर (अर्थात् उसे लक्ष्य कर) (एक) क्षण (में ही) (नेत्र रूपी) तीर छोड़ा; (उस कटाक्ष का नायक पर ऐसा प्रभाव हुआ मानो) अभिमानी कामदेव (ने) कुपित होकर तीक्ष्ण बाण छोड़ा (हो)।

(८३)

अर्थ :—(तू) सुख से (सहज में ही) प्रतिष्ठा ('पति') नहीं प्राप्त कर सकेगा ('पाइहै')। विभिन्न प्रकार की भक्तियों को मन में जान ले (अर्थात् यदि तू सुख चाहता है तो पहले नवधा भक्ति से परिचय प्राप्त कर); सेनापति (कहते हैं कि) मैं जानता हूँ, (तू) भक्ति पूर्वक झुकने में ही सुख पाएगा (भगवान् को प्रणाम करने में ही सच्चा सुख है)।

(८४)

खंड=टुकड़ा। परि=परे। मधु=१ मिठाई २ एक दैत्य जिसे विष्णु ने मारा था।

अर्थ :—सीता रानी (के) प्रिय का नाम मिठाई (के) टुकड़ों (से) परे (है) अर्थात् राम-नाम मिठाई से कहीं अधिक मधुर है); सीता रानी (के) प्रिय का परिणाम मधु (नामक दैत्य) (का) नाश (करना) है (अर्थात् विष्णु का प्रयोजन मधु का नाश करना था)।

(८५)

कहरन तैं=कष्ट द्वारा पीड़ित होने से।

अर्थ :—हे नरक-हरण ! (अर्थात् लोगों को मुक्त कर स्वर्ग भेजने वाले भगवान् !) सेवक नरों को (सेवा करने वाले मनुष्यों को) तुम (ही) कष्ट द्वारा पीड़ित होने से बचाओ ; हे करुणा के भांडार ! मेरे ऊपर दया करने (में) क्यों उदासीन हो (अर्थात् तुम तो करुणा के भांडार होते हुए भी हम पर करुणा नहीं करते हो)।